अर्थशास्त्र का स्वरूप और महत्व

अर्थशास्त्र का स्वरूप और महत्व :
—एक निबंध

[AN ESSAY
ON
THE NATURE & SIGNIFICANCE OF ECONOMIC SCIENCE]

अर्थशास्त्र का स्वरूप और महत्व

— एक निबन्ध —

लेखक

लिओनेल रॉबिन्स

लंदन विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक

अनुवादक

जगदीशचन्द्र वर्मा

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की मानक ग्रन्थों की प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

प्रकाशक

साहित्य संगम, आगरा

© भारत सरकार

प्रथम संस्करण 1966

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की मानक-ग्रन्थों की प्रकाशन-योजना के अंतर्गत इस पुस्तक का अनुवाद और पुनरीक्षण वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की देखरेख में किया गया है और इस पुस्तक की 1000 प्रतियाँ भारत सरकार द्वारा क्रय की गयी हैं।

प्रकाशक :
साहित्य संगम
प्रसाद पारिजात, सिटी स्टेशन रोड, आगरा–3

मुद्रक :
दी एजुकेशनल प्रेस,
बांके विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा–3

प्रस्तावना

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य-सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा-संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'अर्थशास्त्र का स्वरूप और महत्व' नामक पुस्तक आयोग द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक श्री लिओनेल रॉबिन्स, अनुवादक श्री जगदीशचन्द्र वर्मा तथा पुनरीक्षक श्री शिवकुमार वर्मा हैं। आशा है भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

नि. हा. ... [signature]

अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय,
भारत सरकार, नई दिल्ली

मूल अंग्रेजी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका

इस निबंध का पहला संस्करण कुछ समय पहले समाप्त हो चुका है परंतु अभी तक इसकी माँग जारी है। प्रकाशक ने इसे फिर से मुद्रित करने का निश्चय किया है। इस अवसर का लाभ उठाते हुए मैंने पहले संस्करण के प्रकाशन के बाद होने वाले अनुभव के आधार पर इसमें कुछ परिवर्तन और संशोधन किए हैं जो बहुत वांछनीय हो गए थे।

इस प्रकार के संशोधन करते समय मैंने इस निबंध की मुख्य विचारधारा में कोई सारवान परिवर्तन करना आवश्यक नहीं समझा है। छठे अध्याय में तुष्टिगुण की व्यक्तिगत तुलनाओं के वैज्ञानिक औचित्य के संबंध में जिन बातों को अस्वीकार किया गया है लोगों ने उनकी बड़ी आलोचना की है। मैं इनके संबंध में या किसी भी अन्य बात के लिए दुराग्रह नहीं दिखाना चाहता परंतु मैं ऐसे लोगों से निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं उनके तर्कों से तनिक भी सहमत नहीं हूँ। मेरी यह धारणा है कि विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न तुष्टिगुणों का समुच्चयन या तुलना करते समय तथ्यों संबंधी निर्णयों के बजाय मूल्यों संबंधी निर्णय करने पड़ते हैं और ऐसे निर्णय किसी भी वास्तविक विज्ञान के क्षेत्र के बाहर की वस्तु हैं। मेरे आलोचकों ने जो कुछ कहा है मैं उससे यह नहीं मान सकता कि मेरी यह धारणा गलत है। इस दृष्टि से विषय को थोड़ा सा और स्पष्ट करने के लिए कुछ अनुपूरक कथनों के अतिरिक्त मैंने इस अध्याय में कोई परिवर्तन नहीं किए हैं। मैं आशा करता हूँ कि मेरे आलोचक (जिनमें से कुछ लोग यह मान बैठे थे कि मैं वास्तव में बहुत झगड़ालू हूँ) इसको अमित्रतापूर्ण उपेक्षा नहीं मानेंगे। मैं उनको यकीन दिलाता हूँ कि मैं स्वयं अपने विचारों के प्रति पूर्णतया निश्चित नहीं हूँ। परंतु इनमें से कुछ लोगों द्वारा मेरी इस धारणा तथा मेरे कुछ अन्य प्रसिद्ध साध्यों को "रॉबिन्सियन अर्थशास्त्र" की संज्ञा दिए जाने के बावजूद भी मैं समझता हूँ यह विद्या मेरी दी हुई नहीं है, और जिन प्रसिद्ध लेखकों ने इन विचारों का प्रतिपादन किया है उनसे मुझे यह विश्वास होता है कि कम से कम इस मामले में, मेरी अपनी धारणाओं ने मुझे पथभ्रष्ट बनाने का यत्न नहीं किया है।

दूसरी ओर मेरे बहुत से आलोचकों ने मेरे तर्कों से कुछ ऐसे व्यावहारिक निष्कर्ष निकालने की कोशिश की है जिनका खंडन करने वाला मैं सबसे पहला

व्यक्ति हूँ। यह कहा गया है कि क्योंकि मैंने अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों, जैसे अर्थशास्त्र और नीति-शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र की सीमाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित करने का प्रयत्न किया है इसलिए मैं इस मत का समर्थन करता हूँ कि "अर्थशास्त्री को अपने विषय से बाहर किसी और क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए"। उन कार्यों के बावजूद भी जिनका मुझे डर था और जो बहुत बदनाम हो चुके हैं यह कहा गया है कि मैंने यह मत प्रस्तुत किया है कि "अर्थशास्त्रियों को सभी संभव रास्तों को बताने के अतिरिक्त जिन पर अमल किया जा सकता है, तथा इनका सूक्ष्म और संयत विश्लेषण और विवेचन प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इनको कार्यान्वित करने के बारे में और किसी प्रकार का भाग नहीं लेना चाहिए।" मेरे मित्र श्री लिडले फ्रेजर ने एक लेख "हौऊ डू वी वांट इकोनोमिस्ट्स टू बीहेव" द्वारा मेरे ऊपर यह प्रभाव डालने का प्रयत्न किया है कि मुझे अर्थशास्त्रियों से अधिक सामाजिक आचरण की आशा करनी चाहिए। जब इतने लोगों ने मेरी बातों को गलत समझा है तो मैं समझता हूँ इसमें मेरा ही दोष है कि मैं क्यों अपने विचारों में इतनी स्पष्टता नहीं ला पाया हूँ। वस्तुतः मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने ऊपर उद्धृत की गई बात से बिल्कुल उलट बात कही है और अपनी ओर से मैंने उस पर पूरा बल देने का यत्न किया है। पाँचवें अध्याय के अनुभाग 6 की एक पादटिप्पणी में मैंने स्पष्ट रूप से कहा है कि "मैं अनुमान लगाने में अत्यधिक सतर्कता के प्रयोजन से नहीं बल्कि अपने कथन को अधिक सही बनाने की दृष्टि से इस बात पर बल दे रहा हूँ" और मैंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि "अर्थशास्त्री अन्य समाजशास्त्रियों से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।" इसी प्रकार छठे अध्याय के अनुभाग 5 में मैंने यह कहा है कि "इस सबका तात्पर्य यह नहीं है कि अर्थशास्त्रियों को नीतिशास्त्र संबंधी प्रश्नों से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए, चूँकि वनस्पतिशास्त्र का सौंदर्यशास्त्र से कोई संबंध नहीं होता इसलिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि बगीचे के विन्यास के संबंध में अपना कोई मत नहीं रखना चाहिए। परंतु इसके विपरीत हम चाहते हैं कि अर्थशास्त्रियों ने इन विषयों का बहुत समय तक तथा व्यापक रूप में मनन किया हो क्योंकि इसी प्रकार से वे उन समस्याओं के निश्चित उद्देश्यों के अभिप्रेत अर्थों को समझ सकेंगे जो उनके सामने सुलझाने के प्रयोजन से रखी जाती हैं, इसमें मैं केवल एक बात और जोड़ सकता हूँ कि मैं श्री फ्रेज़र के इस कथन से पूर्णतया सहमत हूँ कि "यदि कोई अर्थशास्त्री केवल अर्थशास्त्र का ज्ञान रखता हो और उसमें भी अधिक प्रतिभाशाली न हो—और अपने बारे में यह धारणा करना कि हम सचमुच प्रतिभाशाली हैं कितनी मूर्खता होगी—तो उसे केवल एक कूपमंडूक ही समझना चाहिए।" मैं इस बात से भी सहमत हूँ कि अकेला अर्थशास्त्र जीवन की बहुत सी महत्वपूर्ण समस्याओं का कोई हल नहीं बन

सकता। मैं मानता हूँ कि केवल अर्थशास्त्र की शिक्षा एक अधूरी शिक्षा है। मैं बड़ी देर तक ऐसी संस्थाओं में अध्यापन कार्य करता रहा हूँ जिनमें ऐसी बातों को एक शिक्षाशास्त्रीय स्वयंसिद्धि माना जाता है कि अगर मैं किसी बात पर बल नहीं देता हूँ तो इसका कारण यह है कि मैं यह पूर्वधारणा कर लेता हूँ कि इस बात को प्रत्येक व्यक्ति पहले ही स्वीकार कर चुका है। मैंने जिस बात पर बल दिया है वह यह है कि विभिन्न विषयों के अनेक प्रकार के साध्यों को अलग-अलग रखना चाहिए ताकि हम प्रत्येक कदम पर यह जान सकें कि हम किस आधार पर फैसला कर रहे हैं। मैं यह नहीं मानता कि इस बात में श्री फ्रेज़र से मेरा कोई वास्तविक मतभेद है।

ठीक इसी तरह मैं यह कहना चाहूँगा कि मेरी इस बात का यह अर्थ निकालना भी सरासर गलत होगा कि क्योंकि मैंने आर्थिक परिवर्तनों को आँकने के लिए तथाकथित मात्रिक संबंधों के पीछे अनेक प्रकार की रूढ़िगत मान्यताओं के बारे में विचार करने पर बल दिया है इसलिए मैं इस प्रकार की 'प्रक्रिया' के विरुद्ध हूँ। मुझे यह एक बहुत महत्वपूर्ण बात दिखाई देती है कि राष्ट्रीय आय या राष्ट्रीय पूंजी जैसे समुच्चयों की गणना करते समय हमें स्पष्ट रूप से यह मान लेना चाहिए कि हम ऐसी पूर्वधारणाएँ कर रहे हैं जो वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित न होकर अनिवार्यतया रूढ़ हैं। परंतु जैसा कि मैंने इस निबंध में (पृष्ठ 52 और पृष्ठ 56) बल देकर कहा है कि इसका कतई यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि यदि हम अपनी प्रक्रिया में निहित सभी बातों के प्रति सचेत हों तो इस प्रकार की गणनाओं के बारे में किसी प्रकार की आपत्ति की जा सकती है। इसके विपरीत यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि भूत-काल में इस प्रकार की बातों का पर्याप्त अध्ययन नहीं किया गया है और भविष्य में इन विषयों के बहुत बढ़ने की काफी आशा की जा सकती है। फिर भी वस्तुतः इस बात को मान लेने में, और इस विचार में कोई विरोधाभास नहीं है, कि हमें प्रत्येक कदम पर यह जान लेना चाहिए कि हम कहाँ पर केवल तथ्यों को दर्ज कर रहे हैं और कहाँ पर मनमाने मापदंडों से इनका मूल्यांकन कर रहे हैं। क्योंकि इन बातों में प्रायः भ्रम होता रहता है इसलिए मैं अब भी इस बात पर बल देता हूँ कि इन दोनों के अंतर को जान लेना अनुचित नहीं होगा।

परंतु इस निबंध के कुछ भाग ऐसे भी हैं जिनको दोहराना बहुत आवश्यक हो गया था। मैं अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों की प्रकृति के अध्याय से कभी संतुष्ट नहीं हुआ हूँ। जहाँ तक मैं समझता हूँ इस मामले में कोई मूलभूत परि-वर्तन नहीं हुआ है परंतु फिर भी मैं यह सोचता हूँ कि कुछ आधुनिक आविष्कारों के महत्व का यथासंभव स्पष्ट चित्रण करने की उत्सुकता के कारण मैं कुछ स्थानों पर पूरा बल नहीं दे पाया हूँ और मैंने तर्कशास्त्र के कुछ शब्दों का शिथिलता-

पूर्वक प्रयोग कर दिया है जो मेरे निबंध के प्रसंग से बाहर भ्रांति का कारण बन सकते हैं। सच तो यह है कि कई आलोचकों ने मेरे ऊपर कोरा पांडित्य प्रदर्शित करने का लांछन लगाया है और कई आलोचकों ने मुझे "व्यवहारवादी" ठहराया है। इससे मुझे यह भ्रम हो गया है कि शायद मैं इन दो चरम सीमाओं के बीच वस्तुस्थिति को अधिक स्पष्ट नहीं कर पाया हूँ। इसलिए मैंने इस अध्याय के अधिकांश भागों को दुबारा लिखा है और मैंने इसको बढ़ाकर इसमें कुछ अधिक जटिल विषयों को भी शामिल कर दिया है, जैसे "शुद्ध तर्कनापरक आचरण" का क्या तात्पर्य है, आदि बातें। पहले संस्करण में इनको मैंने इसलिए छोड़ दिया था ताकि निबंध का कलेवर अधिक न बढ़ जाए किंतु मुझे यह आंशका हो रही है कि इससे प्रस्तुत पुस्तक का यह भाग दुरूह और विवादास्पद बन गया है। यद्यपि मैं इसकी त्रुटियों से भलीभाँति परिचित हूँ तथापि अपने पहले प्रयास की तुलना में मुझे इसी में संतोष का अनुभव होता है कि मैं ऐसे विषयों पर केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही अपने विचार व्यक्त करूँ। पाँचवें अध्याय का पहला अनुभाग भी दुबारा लिखा गया है और मैंने दूसरे अनुभाग में भी कुछ नए पैरे जोड़े हैं जिनमें मैंने पिछले अध्याय में उल्लिखित गुणात्मक नियमों और सांख्यिकीय विश्लेपण के नियमों की तुलना और महत्व पर आस्था रखने के कारणों को थोड़े विस्तार से बताया है। मैंने चौथे और पाँचवें अध्याय में भी कुछ छोटे छोटे अनुभाग जोड़े हैं जिनमें स्थैतिक और गत्यात्मक अर्थशास्त्र के परस्पर संबंधों और आर्थिक विकास के सिद्धातों की संभावनाओं पर चर्चा की गई है— ये ऐसे विषय हैं जिनके बारे में पर्याप्त अनावश्यक भ्रांति फैली हुई दिखाई देती है। मैं आशा करता हूँ कि मैंने जो परिवर्तन किए हैं वे मेरे मित्रों प्रोफ़ेसर एफ़० ए० फॉन हेय, डा० पी० एन० रोज़नटाइन रोडन, और डा० ए० डब्ल्यू० स्टेनियर को भी स्वीकार्य होंगे। मैंने इन लोगों की सलाह और समालोचना से इन कठिन विषयों के बारे में बहुत कुछ सीखा है जिसके लिए मैं इनका बड़ा आभारी हूँ। परंतु इस पुस्तक में जो भी भूलें हुई हैं उनके लिए उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

मुझे इस बात की बड़ी चिंता रही है कि प्रोफ़ेसर आर० डब्ल्यू० साऊटर ने मेरी पुस्तक के बारे में जो आक्षेप लगाए हैं उनका क्या किया जाए? मैंने प्रोफ़ेसर साऊटर के आक्षेपों को बड़ी दिलचस्पी और आदर से पढ़ा है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि उन्होंने मेरे रवैये को जिस प्रकार से "वस्तुवादी" बताया है मैं उससे तनिक भी सहमत नहीं हूँ। जहाँ तक उनके तर्कों के इस भाग का संबंध है उन्हें मेक्सवेबर का खंडन करना चाहिए मेरा नहीं, और मेरा विचार है मेक्सवेबर अब भी अकाट्य है। परंतु जहाँ तक उन्होंने स्थैतिक अर्थशास्त्र के प्रारंभिक और छोटे छोटे सामान्य नियमों की अधिक चिंता न करने के बारे में

तर्क दिए हैं मैं उनमें अधिकांश से सहर्ष सहमत हूँ। परंतु जहाँ पर उनका और मेरा मतभेद शुरू होता है वह उनकी यह धारणा है कि इस काम के लिए सूक्ष्म विश्लेषण और आवश्यक स्थैतिक आधार को व्यर्थ मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं आधुनिक गणितीय भौतिकी और खगोल विज्ञान से बहुत अधिक परिचित नहीं हूँ परंतु मुझे संदेह है कि उन्होंने जिन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से ऐसी अपील की है—क्या वे गणितीय अर्थशास्त्र के तरीकों के बारे में उनके मत से, जो प्रत्यक्षतः बहुत ही निम्न कोटि का है, सहमत होंगे? भले ही वे लोग यह महसूस करते हों कि अर्थशास्त्र के नियमों की सहायता से निकाले जाने वाले निष्कर्ष अभी बहुत ही प्रारंभिक स्थिति में हैं फिर भी वे कभी उनके विचारों से सहमत नहीं हो सकते। इस संबंध में प्रोफेसर नाइट द्वारा जो कुछ पहले कहा जा चुका है मैं उससे लगभग पूर्णतया सहमत हूँ।[1] मैं यह अनुभव करता हूँ कि जहाँ तक इस निबंध का संबंध है इसकी व्याख्या में अनवधानता से की गई एक या दो कटु उक्तियों से प्रोफेसर साऊटर को इतना क्रोध आ गया है कि वह वास्तव में मेरे तर्कों को बहुत ज्यादा गलत समझने लगे हैं। कदाचित् अन्यथा उन्हें ये तर्क इतने गलत न लगते। मुझे इस बात का बड़ा खेद है। परंतु मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इस संबंध में क्या कर सकता हूँ। एक दो स्थानों पर मैंने अपनी बातों को अधिक स्पष्ट करने का यत्न किया है परंतु ऐसी सभी भ्रांतियों से अपनी रक्षा करने का यह अर्थ होगा कि मुझे व्यक्तिगत रूप से इतनी क्षमा याचना करनी पड़ेगी कि यह निबंध जो पहले ही बहुत लंबा हो गया है, इनसे और भर जाएगा तथा यह बिलकुल अपठनीय बन जाएगा। मैं किसी के प्रति अशिष्टता नहीं दिखाना चाहता और मैं आशा करता हूँ, यदि मुझे इस समय हाथ में लिए गए बहुत से कामों से समय मिला तो मैं प्रोफेसर साऊटर से अवश्य यह निवेदन करूँगा कि मेरी यह धारणा निराधार नहीं है कि मुझे समझने में उन्हें गलतफ़हमी हुई है।

शेष भागों में मैंने बहुत थोड़े परिवर्तन किए हैं। मैंने कुछ ऐसी पाद-टिप्पणियों को निकाल दिया है जो अब असंगत हो चुकी हैं। इसी प्रकार मैंने कुछ गर्वोक्तियों को भी निकाल दिया है जो कि आजकल के मूड के अनुकूल नहीं हैं। परंतु सिवाय इस बात के कि मैं इसे नए सिरे से लिख डालूँ मेरे पास इस बात को छिपाने के लिए और कोई चारा नहीं है कि मैंने यह निबंध बहुत पहले लिखा था। चाहे यह बात लोगों को अच्छी लगे या बुरी मैं यह नहीं छिपाऊँगा कि इस पुस्तक के अधिकांश भागों की कल्पना और उनका प्रारूप प्रकाशन से

1 "इकोनोमिक साइन्स इन रिसेंट डिसकशन," अमेरिकन इकोनोमिक रिव्यू, भाग 24, पृष्ठ 225-238।

बहुत समय पहले तैयार कर लिया गया था और यद्यपि मैं सोचता हूँ कि अब इसे दुबारा लिखकर छपवाना चाहिए तथापि इसमें जितना समय लगेगा उसको देखते हुए मैं इतना श्रम करना ठीक नहीं समझता। अतः इसे एक बार फिर वैसे ही अपरिमार्जित और अपरिपूर्ण रूप में पाठकों के सामने रखने का साहस कर रहा हूँ।

दि लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स   लिओनेल रॉबिन्स
मई, 1935

मूल अंग्रेजी पुस्तक के पहले संस्करण की भूमिका

इस निबंध के दो उद्देश्य हैं। सर्वप्रथम, इसमें अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु से संबंधित बातों और इस विज्ञान के सामान्यीकरणों की प्रकृति का सूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास किया गया है। दूसरे, इसमें वास्तविक आर्थिक घटना-चक्र की व्याख्या करने और उसे राजनीतिक नीतियों का आधार बनाने की दृष्टि से इन सामान्यीकरणों की सीमाओं और महत्व पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। आजकल, पिछले 60 वर्षों से अर्थशास्त्र के सिद्धांतों में विकास के परिणामस्वरूप एक बार विचारणीय विषय का स्पष्ट उल्लेख कर देने के बाद, इन नियमों के कथन में कोई गहरा मतभेद होने की गुंजाइश नहीं रही है। फिर भी, क्योंकि सदा ऐसा स्पष्ट कथन करना असंभव है, इसलिए इनके बारे में अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ बनी हुई हैं और अर्थशास्त्रियों के कर्तव्यों और उनके कामों की प्रकृति और सीमाओं के बारे में बड़े गलत विचार फैले हुए हैं। इन सब कारणों से अब भी अर्थशास्त्र की प्रतिष्ठा पर प्रहार होता रहता है और इस विज्ञान का पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया जाता है। यह निबंध ऐसी भ्रांतियों को दूर करने के लिए लिखा जा रहा है। अर्थात् इसमें यह स्पष्ट करने का यत्न किया गया है कि अर्थशास्त्र में किन बातों की चर्चा होती है और इन चर्चाओं के फलस्वरूप उससे क्या-क्या आशाएँ करनी उचित होंगी। अतः एक ओर तो इस निबंध को विशुद्ध सैद्धांतिक पद्धतियों और पूर्वधारणाओं की टीका मानना चाहिए और दूसरी ओर इसे व्यावहारिक अर्थशास्त्र की पूर्वपीठिका मानना चाहिए।

इस निबंध के उद्देश्य के लिए केवल व्यापक विचारों पर ही ध्यान दिया जा सकता है। परंतु फिर भी मैंने इसमें सब जगह जहाँ तक हो सका है वास्तविकता से संपर्क बनाए रखने का प्रयत्न किया है। मैंने दार्शनिक सूक्ष्मताओं को सदा अपने क्षेत्र के बाहर की बात माना है और अपनी व्यावसायिक क्षमता से परे की वस्तु माना है। मैंने अपने साध्यों के प्रतिपादन के लिए विषय की सर्वश्रेष्ठ आधुनिक पुस्तकों में दी गई वास्तविक सामग्री को ही अपना आधार माना है। इस प्रकार की पुस्तक में, जो एक अर्थशास्त्री द्वारा दूसरे अर्थशास्त्रियों के लिए लिखी गई है, विशेष समस्याओं का सर्वमान्य समाधान प्रस्तुत करने के लिए मैंने निरन्तर अन्य पुस्तकों के उद्धरण देकर ही अपनी बात को सिद्ध करना

अच्छा समझा है। अर्थशास्त्र के स्वरूप, अर्थात् उसे कैसा होना चाहिए यह सिद्ध करने के लिए मैंने किसी कोरी कल्पना की सहायता लेने की कोशिश नहीं की है। साथ ही मैंने इस निबंध को संक्षिप्त रखने का भी प्रयास किया है। मेरा उद्देश्य एक दृष्टिकोण को सामने रख देना मात्र रहा है। मैंने उसकी विस्तृत चर्चा करने का प्रयत्न नहीं किया है। ऐसा करने के लिए मुझे बहुत सी ऐसी सामग्री को भी छोड़ देना पड़ा है जिसे मैंने मूलतः इकट्ठा किया था, परंतु संक्षिप्त रहने के लिए मैंने इसे छोड़ना वांछनीय समझा है। मैं आशा करता हूँ कि बाद में मैं अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के बारे में कोई सामान्य पुस्तक लिखूंगा और उसमें यहाँ पर उल्लिखित सिद्धांतों की और विस्तृत चर्चा कर सकूंगा।

इस पुस्तक में व्यक्त किए गए विचारों के लिए मैं मौलिकता का दावा नहीं करता। हाँ, मैं यह अवश्य निवेदन करना चाहूँगा कि एक दो स्थानों पर मैं कुछ सिद्धांतों के बारे में, जो आज तक स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं किए जा सके थे, अधिक सबल व्याख्याएँ दे सका हूँ। परंतु मुख्य रूप से मेरा उद्देश्य ऐसी प्रस्थापनाओं को, जो अधिकतर आधुनिक अर्थशास्त्रियों की सामान्य सम्पत्ति रहे हैं, यथासंभव सरल शब्दों में व्यक्त करता रहा है। इसके लिए मैं 'स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स' में अपने सहयोगियों और छात्रों के साथ होने वाली चर्चाओं के लिए उनका विशेष रूप से आभारी हूँ। बाकी के स्रोतों के लिए मैंने पाद-टिप्पणियों में आभार प्रदर्शित कर दिया है। इन सब लेखकों के प्रति मैं मुख्य रूप से सजग हूँ। परंतु मैं प्रोफेसर लुडविग वॉन माइज़िज़ की पुस्तकों और स्वर्गीय फिलिप विकस्टीड की पुस्तक 'कामनसेंस ऑफ़ पालिटिकल इकॉनामी' से ली गई सामग्री के लिए उनके प्रति विशेष आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि मैंने इन पुस्तकों का उद्धरणों में जितना प्रयोग किया है उससे इस बात का पर्याप्त अनुमान नहीं लगा सकता कि मैंने इनसे कितनी सामान्य सहायता ली है, इसलिए मैं इनका विशेष रूप से ऋण-भार प्रदर्शित करना चाहता हूँ।

दि लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स **लिओनेल रॉबिन्स**
फरवरी, 1932

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्रस्तावना	v
मूल अंग्रेजी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका	vii
मूल अंग्रेजी पुस्तक के पहले संस्कण की भूमिका	xiii

अध्याय 1

अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु

1.	विषय-प्रवेश	1
2.	अर्थशास्त्र की "भौतिकवादी" परिभाषा	3
3.	अर्थशास्त्र की "दुर्लभतावादी" परिभाषा	11
4.	अर्थशास्त्र और विनिमय अर्थव्यवस्था	15
5.	"भौतिकवादी" और "दुर्लभतावादी" परिभाषाओं की तुलना	19

अध्याय 2

उद्देश्य और साधन

1.	विषय-प्रवेश	22
2.	अर्थशास्त्र और उद्देश्य	22
3.	अर्थशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र	26
4.	अर्थशास्त्र और औद्योगिकी	29
5.	अर्थशास्त्र के सिद्धांत और आर्थिक इतिहास	34
6.	इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या	38

अध्याय 3

आर्थिक "मात्राओं" की सापेक्षता

1.	दुर्लभता का अर्थ	42
2.	आर्थिक कल्याण की संकल्पना	42
3.	भ्रष्ट मूर्तता का हेत्वाभास	45
4.	आर्थिक सांख्यिकी की परिभाषा	49
5.	काल-श्रेणियों का महत्व	54
6.	"उत्पादन-वितरण" और "संतुलनात्मक" विश्लेषणों की तुलना	58

अध्याय 4

अर्थशास्त्र के सामन्यीकरणों का स्वरूप

1. विपय-प्रवेश 66
2. आर्थिक विश्लेषण के आधार 66
3. अर्थशास्त्र के नियम और "ऐतिहासिक-सापेक्षवाद" 72
4. अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान 75
5. तर्कनापरक आचरण की पूर्वधारणा 85
6. अर्थमानव की काल्पनिक कथा 89
7. स्थैतिक और गत्यात्मक अर्थशास्त्र

अध्याय 5

अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण और वास्तविकता

1. अर्थशास्त्र एक विज्ञान के रूप में 94
2. पूर्ति और माँग के सांख्यिकीय नियम 95
3. संस्थावादियों का "मात्रिक अर्थशास्त्र" 100
4. अनुभवाश्रित अध्ययन के कार्य 103
5. आर्थिक नियमों की अपरिहार्यता 108
6. आर्थिक नियमों की सीमाएँ 113
7. आर्थिक विकास के सिद्धांत की संभावना 117

अध्याय 6

अर्थशास्त्र का महत्व

1. विषय-प्रवेश 121
2. ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण का नियम 121
3. संतुलन सिद्धांत की तटस्थता 127
4. अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र 131
5. अर्थशास्त्र का महत्व 135

अनुक्रमणिका 141

अध्याय 1

अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु

1. इस निबंध का उद्देश्य अर्थशास्त्र के स्वरूप और महत्व पर विचार करना है। अत: सर्वप्रथम हम अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु की सीमाएँ निर्धारित करने का प्रयास करेंगे—अर्थात् अर्थशास्त्र की एक ऐसी काम-चलाऊ परिभाषा देने का यत्न करेंगे—ताकि यह पता चल सके कि अर्थशास्त्र क्या है ?

किसी विषय की परिभाषा करना उतना सरल काम नहीं है जितना कि वह ऊपर से दिखाई देता है। पिछले डेढ़-सौ वर्ष से अर्थशास्त्रियों के प्रयत्नों से इस विषय के कुछ ऐसे सामान्यीकरणों की स्थापना हो चुकी है जिनकी पर्याप्त विशुद्धता तथा महत्व के बारे में कोई अनजान और मूर्ख व्यक्ति ही आपत्ति कर सकता है। परंतु इन नियमों के क्षेत्र और इनकी सीमाओं के बारे में अर्थशास्त्री आज तक एकमत नहीं हो सके हैं। अर्थशास्त्र के प्राय: सभी मानक ग्रंथों में मुख्य रूप से, थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ, इस विज्ञान के मुख्य सिद्धांतों का ही प्रतिपादन किया गया है। हाँ, जिन अध्यायों में इसके उद्देश्यों की चर्चा की गई है उनमें बड़ी विषमता दिखाई देती है, "हम सब अर्थशास्त्री एक ही विषय का प्रतिपादन करने की बात कहते हैं किंतु हम अभी तक यह निश्चय नहीं कर पाए कि यह प्रतिपाद्य वस्तु क्या है ?"[1]

1 कोई इसे अतिशयोक्ति न मान ले इसलिए मैं यहाँ पर अर्थशास्त्र की कुछ परिभाषाएँ दे देना चाहता हूँ। मैंने ये परिभाषाएँ आंग्ल-सेक्सन साहित्य से ली हैं क्योंकि, जैसा मैं बाद में दिखाऊँगा, अन्य भाषाओं के साहित्य की स्थिति पहले से ही काफी संतोषजनक है। "अर्थशास्त्र मनुष्य के जीवन के साधारण कार्यकलापों का अध्ययन करता है। इसमें मनुष्य और समाज के उन कार्यों का विवेचन किया जाता है जो उसके कल्याण के लिए अपेक्षित भौतिक-साधनों की प्राप्ति और उनके प्रयोग से घनिष्ठ संबंध रखते हैं।" (मार्शल, प्रिंसिपल्स, पृष्ठ 1) "अर्थशास्त्र ऐसा विज्ञान है जो आर्थिक घटनाचक्र का कीमतों की दृष्टि से अध्ययन करता है।" (डेविनपोर्ट, इकोनॉमिक्स ऑफ़ एंटरप्राईज, पृष्ठ 25) "अर्थशास्त्र का उद्देश्य उन सामान्य कारणों की व्याख्या करना है जिन पर मनुष्य का भौतिक कल्याण निर्भर करता है।" (केनन, एलीमेंट्री पोलिटिकल इकोनॉमी, पृष्ठ 1)

खैर, यह कोई अप्रत्याशित और निंदनीय स्थिति नहीं है। जैसा कि मिल ने सौ वर्ष पहले कहा था "किसी विज्ञान की परिभाषा उसकी उत्पत्ति से पहले नहीं बल्कि सदा बाद में ही दी जाती है। यह एक नगर की प्राचीर की तरह होती है जो इसलिए नहीं बनाई जाती कि भविष्य में बनाई जाने वाली सभी इमारतें इसके अंदर रहें बल्कि केवल वर्तमान इमारतों के इर्द-गिर्द घेरा डालने के लिए बनाई जाती है।[2] वस्तुतः किसी भी विज्ञान के स्वरूप को देखने पर यही परिणाम निकलेगा कि जब तक इसका एक निश्चित अवस्था तक विकास नहीं हो जाता तब तक इसके क्षेत्र की परिभाषा करना नितांत असंभव है। क्योंकि किसी विज्ञान की एकरूपता उन समस्याओं की एकता में ही परिलक्षित होती है जिनका यह अनन्य रूप से समाधान करना है, और जब तक इसकी व्याख्या करने वाले सिद्धांतों का परस्पर संबंध स्थापित नहीं हो जाता तब तक इस एकता का पता नहीं चलता।[3] आधुनिक अर्थशास्त्र की उत्पत्ति विभिन्न व्यावहारिक और दार्शनिक क्षेत्रों में पृथक रूप से की गई जाँच से हुई है जैसे व्यापार-संतुलन संबंधी जाँच, ब्याज लेने की वैधता के बारे में चर्चा आदि।[4] हाल ही में इस विषय का यथेष्ट एकीकरण हो पाया है और इन विभिन्न जांचों में अंतर्निहित समस्याओं

"अर्थशास्त्र को मनुष्य के भौतिक कल्याण का विज्ञान कहना उसकी व्यापक परिभाषा करना होगा। अर्थशास्त्र उन सामान्य विधियों का अध्ययन है जिनके द्वारा अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मनुष्य परस्पर सहयोग करते हैं।" (बेवरिज, इकोनॉमिक्स एज़ ए लिबरल एजुकेशन, इकोनॉमिका, भाग 1, पृ० 3) प्रोफ़ेसर पीगू के शब्दों में "अर्थशास्त्र मनुष्य के आर्थिक कल्याण का अध्ययन करता है।" आर्थिक कल्याण की उन्होंने यों परिभाषा की है "आर्थिक कल्याण मनुष्य के कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदंड से आँका जा सकता है।" (इकोनॉमिक्स ऑफ़ वैलफेयर, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 1)। ऊपर दी गई परि भाषाओं से पता चलता है कि इनके अभिप्रेत अर्थों में कितना अधिक अन्तर है।

2 अनसैटल्ड क्वैश्चन्स ऑफ़ पालिटिकल इकोनॉमी, पृष्ठ 120।

3 "Nicht die '*sachlichen*' Zusammenhänge der 'Dinge' sondern die *gedanklichen* Zusammenhänge der *Probleme* liegen den Arbeitsgebieten der Wissenschaften zugrunde." (Max Weber, *Die Objectivität sozialwissenschaftlicher und sozialpolitischer Erkenntnis*, *Gesammelte Aufstäze zur Wissenschaftslehre*, पृष्ठ 166)

4 देखिये केनन, रिव्यू ऑफ़ इकोनॉमिक्स थीओरि, पृष्ठ 1–35 और शुंपीटर, *Epochen der Methoden-und Dogmengeschichte*, पृष्ठ 21–38।

के तादात्म्य का पता चला है। इससे पूर्व यदि कभी इस विज्ञान के अंतिम स्वरूप का पता लगाने का यत्न भी किया जाता तो उसमें असफलता के सिवाए और कुछ हाथ न लगता। अतएव ऐसा प्रयास करना समय खोना मात्र होता।

परन्तु जब कोई विज्ञान एकीकरण की स्थिति तक पहुँच जाता है तब उसकी सीमाओं को निर्धारित करने का प्रयास समय खोना न होकर समय बचाना हो जाता है, क्योंकि इससे आगे विषय की तभी व्याख्या हो सकती है जब इसके उद्देश्यों का स्पष्ट निरूपण कर लिया जाता है। एकीकरण की स्थिति के बाद समस्याओं का ज्ञान कोरे विचार-विमर्श से नहीं होता अपितु उनका संकेत, सिद्धांत के ऐक्य में पाए जाने वाले अंतरालों और व्याख्या करने वाले सिद्धांतों की अपूर्णता से मिलता है। जब तक किसी व्यक्ति को इस ऐक्य का पूर्ण बोध नहीं हो जाता है तब तक वह ठीक दिशा में काम नहीं कर सकता है। निस्संदेह आधुनिक अर्थशास्त्री के सम्मुख सबसे बड़ा खतरा यह है कि वह असंगत बातों में न फँस जाए अर्थात् वह बहुत से ऐसे कामों में न लगा रहे जिनका उसके विषय की समस्याओं तथा उनको हल करने से कोई संबंध न हो।[5] इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि जिन केंद्रों में इस प्रकार के प्रश्नों का अंतिम रूप से समाधान हो रहा है वहाँ पर मुख्य सैद्धांतिक समस्याएँ बड़ी जल्दी से हल हो रही हैं। फिर भी यदि हमें इन समाधानों का पूरा-पूरा लाभ उठाना है और इस बात को भली भाँति समझना है कि व्यावहारिक जगत में अर्थशास्त्र का क्या प्रभाव पड़ता है तो हमें इसमें प्रतिपादित सामान्यीकरणों के कार्यक्षेत्र और उनकी सीमाओं की ठीक-ठीक जानकारी होना आवश्यक है। अतः हम अब शुद्ध अंतःकरण से ऐसी समस्या पर विचार कर सकते हैं जो प्रथम दृष्टि में नितांत शैक्षणिक समस्या दिखाई देती है। यह समस्या ऐसे सूत्र को खोजने की है जो अर्थशास्त्र की सामान्य विषय-वस्तु का वर्णन कर सके।

2. किंतु, अर्थशास्त्र की जो परिभाषा बहुत से लोगों को मान्य हो सकती है, कम से कम आंग्ल-सेक्सन देशों में, वह अवश्य ऐसी होनी चाहिए जो इसका संबंध "भौतिक कल्याण के कारणों" से जोड़ने वाली हो। केनन[6] और मार्शल[7] की परिभाषाओं में सामान्य रूप से यही तत्व पाया जाता है।[8] प्ररेटो की

[5] देखिए अध्याय 2, अनुभाग 5, विशेषतया इस संबंध में पृष्ठ 37 पर दी गई पादटिप्पणी और उसकी व्याख्या।

[6] वेल्थ, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 17।

[7] प्रिंसिपल्स, आठवाँ संस्करण, पृष्ठ 1।

[8] *Cours d'Economie Politique*, पृष्ठ 6।

परिभाषा में भी, जिसका दृष्टिकोण इन दोनों अंग्रेजी अर्थशास्त्रियों से अनेक बातों में सर्वथा भिन्न है, यही तत्व दिखाई देता है। जे० बी० क्लर्क[9] की परिभाषा में भी यही तत्व निहित है।

प्रथम दृष्टि में हमें यह मानना ही होगा, और कभी-कभी ऐसा दिखाई भी देता है कि हमारे पास एक ऐसी परिभाषा है जो सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए हमारे प्रतिपाद्य विषय का वर्णन कर सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि साधारण बोलचाल में 'अर्थशास्त्र' का 'भौतिक' अर्थों में ही प्रयोग किया जाता है। जब कोई व्यक्ति 'आर्थिक इतिहास[10] या 'आर्थिक और राजनीतिक हितों में संघर्ष' जैसे वाक्यांशों का प्रयोग करता है तो हम सोच में पड़ जाते हैं कि इन शब्दों का जन-साधारण के लिए क्या महत्त्व है? ऐसे संदर्भों में ही हमें "अर्थशास्त्र" या "आर्थिक" शब्दों की सूक्ष्मता का बोध होता है। निस्संदेह कुछ ऐसे विषय भी होंगे जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत तो आते हैं किंतु जिनका इस (भौतिकवादी) परिभाषा में समावेश नहीं हो सकता। आरंभ में हम यह कल्पना करके इन विषयों को छोड़ देंगे कि ये कुछ ऐसे सीमांत मामले हैं जो अर्थशास्त्र की कोई भी परिभाषा देने पर उसकी परिधि से बाहर रह सकते हैं।

वस्तुत: किसी परिभाषा की मान्यता की अंतिम परख इस बात पर निर्भर नहीं होती कि इसका साधारण बोलचाल में प्रचलित किन्हीं विशेष अर्थों के साथ प्रकट रूप से तालमेल बैठता है या नहीं बल्कि इसकी मान्यता इस बात पर निर्भर होती है कि क्या उसमें उस विज्ञान के सभी मुख्य सामान्यीकरणों की अंतिम विषय वस्तु का सही-सही वर्णन करने की क्षमता है या नहीं।[11] और जब हम इस परिभाषा को इस कसौटी पर कसते हैं तो हमें इसमें कई ऐसी त्रुटियाँ दिखाई देती हैं जिनको सीमांत या गौण कहकर नहीं टाला जा सकता। इनसे स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि उपर्युक्त परिभाषा से प्रस्तुत विषय के अधिकांश

9 इसेंशल्स ऑफ़ इकोनॉमिक थीओरि, पृष्ठ 5, इस संबंध में फिलोसिफी ऑफ़ वेल्थ, अध्याय 1 भी देखिए। इस अध्याय में नीचे दी गई कठिनाइयों को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है परंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि इनके बावजूद भी इस परिभाषा को अस्वीकार नहीं किया गया है। इसमें केवल 'भौतिक' (material) शब्द को नया अर्थ देने का प्रयास मात्र किया गया है।

10 इस शब्द के निर्वचन की मान्यता के लिए अध्याय 2 में किया गया विश्लेषण देखिए।

11 इस संबंध में कदाचित् एक भ्रम दूर कर देना अच्छा होगा जो इस प्रकार की शब्द-चर्चाओं में अक्सर पैदा हो जाता है। प्राय: यह कहा जाता है कि साधारण भाषा और वैज्ञानिक विश्लेषण दोनों में प्रयुक्त होने वाले

नियमों के क्षेत्र की पूरी तरह व्याख्या नहीं की जा सकती है।

आइए, हम सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के किसी भी प्रमुख विभाग को लेकर देखें कि वह कहाँ तक विचाराधीन परिभाषा के अंतर्गत आता है।

उदाहरण के लिए हम सब इस बात से सहमत होंगे कि 'मज़दूरी का सिद्धांत' आर्थिक विश्लेषण की किसी भी पद्धति का अभिन्न अंग रहा है। अब प्रश्न पैदा होता है कि क्या हमें किसी भी ऐसी मान्यता से संतोष हो सकता है कि मज़दूरी सिद्धांत के अंतर्गत जिन घटनाओं का उल्लेख किया जाता है उनके बारे में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि वे अधिकतर "मनुष्य के कल्याण के भौतिक पहलू से संबंधित हैं।"

'मज़दूरी' का सीमित अर्थ है "वह रकम जो मजदूर मालिक की देख-रेख में निर्धारित दरों पर काम करने के बदले पाता है।" किंतु इस शब्द का एक और व्यापक अर्थ भी है। आर्थिक विश्लेषण संबंधी पुस्तकों में प्रायः इसका इसी व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इस अर्थ के अनुसार मज़दूरी का तात्पर्य "लाभ को छोड़कर वेतन-उपार्जकों को होने वाली सब प्रकार की आय है।" अब यह बात सबको मालूम है कि कुछ मज़दूरी सीधे ऐसे कामों की कीमत होती है जिसका प्रत्यक्षतः भौतिक कल्याण से संबंध होता है, जैसे मल-नालियों की सफाई करने वाले लोगों को दी जाने वाली मज़दूरी। परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि कुछ मज़दूरी ऐसे कामों के लिए भी दी जाती है जिनका भौतिक कल्याण से दूर का भी संबंध नहीं होता, जैसे वाद्यवादक को दी जाने वाली मज़दूरी। परंतु फिर भी ये दोनों प्रकार की सेवाएँ खरीदी और बेची जा सकती

शब्दों की वैज्ञानिक परिभाषाएँ उन अर्थों से भिन्न नहीं होनी चाहिए जिन अर्थों में दैनिक बोलचाल में उन शब्दों का प्रयोग होता है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक नेक सलाह है और हम इस दलील को एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। निश्चय ही जब एक ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका व्यावसायिक जगत में कोई और अर्थ होता है तब बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। 'पूँजी' शब्द के अर्थ में इस प्रकार से भेद करने से जो कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं उनका प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अनुमान लगा सकता है। परंतु किसी शब्द का विज्ञान में प्रयोग करते समय उसमें अर्थों को अपनाना एक बात है और यह कहना दूसरी बात है कि विज्ञान की परिभाषा में प्रयुक्त शब्दों का वही शुद्ध अर्थ होना है जिस अर्थ में बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक परिभाषा करते समय शब्द के अर्थ का महत्व उस विज्ञान के सामान्यीकरणों की अंतर्वस्तु में निहित होता है। इसलिए केवल इन सामान्यीकरणों के संदर्भ में ही किसी विज्ञान की परिभाषा की जा सकती है। कोई दूसरी प्रक्रिया अपनाना असह्य हो जाएगा।

हैं और विनिमय के क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं। 'मज़दूरी का सिद्धांत' जितना पहले प्रकार की सेवाओं के लिए लागू होता है उतना ही दूसरे प्रकार की सेवाओं पर भी लागू होता है। यह सिद्धांत केवल उन कामों तक ही सीमित नहीं है जो अधिकतर मनुष्य के भौतिक कल्याण से संबंधित हैं—चाहे यह कुछ भी वस्तु हो।

यदि हम उन कामों की चर्चा करने के स्थान पर जिनके लिए मज़दूरी दी जाती है उन चीजों की चर्चा करें जिन पर मज़दूरी ख़र्च की जाती है तब भी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता। यह बात आग्रहपूर्वक कही जा सकती है कि 'मज़दूरी के सिद्धांत' को इसलिए अर्थशास्त्र में नहीं शामिल किया गया है क्योंकि जो कुछ मज़दूर करता है उससे दूसरों का भौतिक कल्याण होता है। यह सिद्धांत इसलिए अर्थशास्त्र में शामिल किया जाता है क्योंकि मज़दूर को जो कुछ मिलता है उससे उसका अपना कल्याण होता है। वस्तुत: यह तर्क भी बहुत देर तक नहीं ठहर सकता क्योंकि मज़दूर जहाँ अपनी आय से पाव रोटी खरीदता है वहाँ वह उससे सिनेमा का टिकट भी ख़रीद सकता है। अत: कोई भी 'मज़दूरी का सिद्धांत' जिसमें ऐसी 'अभौतिक' सेवाओं का उल्लेख नहीं होगा सदा अपूर्ण समझा जाएगा। इससे विनिमय-चक्र का तारतम्य बुरी तरह से टूट जाएगा और इस पर कभी भी सामान्य विश्लेषण का तकनीक पूरी तरह लागू नहीं किया जा सकेगा। वास्तव में किसी भी क्षेत्र में यादृच्छ सीमाएँ निर्धारित करके उस विषय के महत्वपूर्ण सामान्यीकरणों का अध्ययन करना असंभव है।

संभवतया किसी भी विचारवान अर्थशास्त्री ने, चाहे उसने अर्थशास्त्र के संपूर्ण क्षेत्र को, जिसका कि मज़दूरी सिद्धांत एक भाग है, सीमित बनाने के लिए कितना भी प्रयत्न क्यों न किया हो, 'मज़दूरी के सिद्धांत' को इस तरीके से परिसीमित करने का प्रयास नहीं किया है। हाँ, ऐसे प्रयत्न अवश्य किये गए हैं कि 'भौतिक कल्याण' से इतर उद्देश्यों के लिए आर्थिक विश्लेषण के नियमों को लागू न किया जाए। प्रोफ़ेसर केनन जैसे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री तक ने यह कहा है कि 'युद्ध का अर्थशास्त्र'[12] जैसा शीर्षक एक बड़ी भ्रांति है क्योंकि अर्थशास्त्र मनुष्य के भौतिक कल्याण के कार्यों से संबंधित है जब कि युद्ध का मनुष्य के भौतिक कल्याण से कोई सरोकार नहीं है। इसलिए 'युद्ध' कभी भी अर्थशास्त्र का विषय नहीं हो सकता। प्रोफ़ेसर केनन का यह अभिमत केवल एक ऐसे नैतिक सिद्धांत के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है जो इस बात पर प्रकाश डालता है कि एक अमूर्तज्ञान का किन-किन प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। यह बात अत्यन्त स्पष्ट है, और प्रोफ़ेसर केनन के अपने व्यवहार से भी यही सिद्ध होता है कि "भले ही अर्थशास्त्र इस बात पर प्रकाश डालता है

[12] देखिए केनन, एन इकोनॉमिस्ट्स प्रोटेस्ट, पृष्ठ 49।

कि एक अमूर्तज्ञान का किन-किन प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाना चाहिए किन्तु यह बात अत्यंत स्पष्ट है, और प्रोफेसर केनन के अपने व्यवहार से भी यही सिद्ध होता है कि यह बात मिथ्या है कि आधुनिक युद्धों का सफलता से संचालन करने के लिए अर्थशास्त्र उपयोगी नहीं होता। इसके विपरीत इस बात पर शंका की जा सकती है कि क्या आधुनिक युद्धों का संचालन करने वाले अर्थशास्त्र के बिना काम चला सकते हैं। यह बड़ी विचित्र बात है कि प्रोफेसर केनन की उक्त उद्घोषणा एक ऐसी पुस्तक में पायी जाती है जिसमें, युद्ध के लिए संगठित समाज की तात्कालिक और अत्यधिक जटिल समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिए, आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों का, अंग्रेजी भाषा की दूसरी पुस्तकों की अपेक्षा अधिक प्रयोग किया गया है।

आधुनिक अंग्रेजी अर्थशास्त्रियों की यह प्रवृत्ति रही है कि वे सदा अर्थशास्त्र का संबंध 'भौतिक कल्याण के कारणों' से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे हैं। किन्तु यह बात उस समय और भी विचित्र दिखाई देती है जब हम यह देखते हैं कि इन सबने मिलकर उत्पादिता की एक अभौतिक परिभाषा स्वीकार कर ली है। आप सबको स्मरण होगा कि एडम स्मिथ ने श्रम के परिणाम को देख कर उसके मूर्त या अमूर्त होने के आधार पर 'उत्पादक और अनुत्पादक श्रम' में किस प्रकार से भेद किया है। उन्होंने समाज के श्रेष्ठ वर्गों जैसे, राजकर्मचारियों के श्रम को अनुत्पादक श्रम की संज्ञा दी है और यह कहा है कि इसका कोई मूल्य नहीं होता है तथा इससे कोई स्थायी वस्तु या बिक्री योग्य वस्तु नहीं बनती जो इस श्रम के बाद भी बनी रहे—उदाहरणार्थ राजा और उसके अधीन काम करने वाले सभी न्यायिक और सैनिक कर्मचारी अनुत्पादक श्रमिक होते हैं—इसी श्रेणी में कुछ गंभीर एवं महत्वपूर्ण और कुछ हलके-फुलके दोनों प्रकार के व्यवसायों के व्यक्ति भी आते हैं, जैसे, पादरी, वकील, डॉक्टर, सब प्रकार के साहित्यकार, खिलाड़ी, मसखरे, गवैये, संगीतज्ञ, नर्तक इत्यादि।"[13]

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने, और इनमें प्रोफेसर केनन सबसे अग्रणी हैं,[14] उत्पादिता की इस संकल्पना को अपर्याप्त मानकर तिलांजलि दे दी है।[15]

13 वेल्थ ऑफ नेशन्स, (केनन संस्करण), पृष्ट 315।

14 थीओरीज़ ऑफ़ प्रोडक्शन एंड डिस्ट्रीब्युशन, पृष्ठ 18-31 तथा रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक थीओरि, पृष्ठ 49-51।

15 यह भी तर्क दिया जा सकता है कि यह प्रतिक्रिया बहुत दूर पहुँच गईहै। स्मिथ के वर्गीकरण में जो भी दोष रहे हों उसका 'पूँजी' सिद्धांत में विशेष महत्त्व है। खेद है कि इसे आजकल सदैव स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है। (देखिए टासिग, वेजिस एंड केपिटल, पृष्ठ 132–151)।

जब तक गायकों और नर्तकों की माँग रहेगी, चाहे यह माँग व्यक्तिगत हो या सामूहिक, तब तक उनकी सेवाओं को उत्पादक ही माना जाएगा। परंतु प्रश्न यह है कि इस माँग से क्या पैदा होता है? भौतिक कल्याण? कैसे? क्योंकि इससे कुछ व्यक्तियों का मनोविनोद होता है और उनमें नया शक्ति-स्रोत खुल जाता है जिससे वे उत्पादन और संगठन के काम में जी-जान से जुट जाते हैं। यही न? इसी कारण लोग स्वांत: सुखाय कला इत्यादि में रुचि लेते हैं। वस्तुत: यह श्रम इसलिए उत्पादक है क्योंकि यह खरीदा और बेचा जा सकता है और इसका विभिन्न व्यक्तियों के लिए विशेष महत्व होता है। एडम स्मिथ और प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों के जमाने से आधुनिक सिद्धांतों में इतना भेद हो गया है कि यदि भौतिक पदार्थों का कोई मूल्य नहीं होता है तो उनके उत्पादन में लगे हुए श्रम को उत्पादक श्रम की संज्ञा न दी जा सकती। वास्तव में आज तो हम इससे भी आगे बढ़ चुके हैं। प्रोफ़ेसर फिशर तथा अन्य अनेक अर्थशास्त्रियों ने अंतिम रूप से यह सिद्ध कर दिया है[16] कि भौतिक पदार्थों से होने वाली आय को भी अंततोगत्वा उसका 'अभौतिक उपयोग' ही मानना पड़ेगा। इस संदर्भ में एक घरेलू नौकर या गवैये की सेवाएँ वैसी ही हैं जैसे मुझे अपने मकान से होने वाली आय। इनसे होने वाली आय अपने उत्पादन के क्षणों में ही नष्ट हो जाती है।

परंतु अगर इस तर्क को मान लिया जाता है तब क्या अर्थशास्त्र को 'भौतिक कल्याण संबंधी कारणों' का अध्ययन बताना भ्रामक नहीं होगा? किसी नर्तक की सेवाएँ उसकी-संपत्ति हैं। अर्थशास्त्र के नियम इनका मूल्य निर्धारित करने से उतना ही संबंध रखते हैं जितना कि वे रसोइए की सेवाओं के मूल्य निर्धारण से। अत: यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का संबंध चाहे किसी भी वस्तु से हो इसका 'भौतिक कल्याण संबंधी कारणों' से कोई औपचारिक संबंध नहीं है।

अर्थशास्त्र की इस परिभाषा के इतनी देर तक बने रहने के जो कारण हैं वे अधिकतर ऐतिहासिक हैं। यह परिभाषा प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों के प्रभाव का अंतिम चिह्न है। अंग्रेजी अर्थशास्त्री प्राय: अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु और पद्धति संबंधी प्रश्नों में अधिक दिलचस्पी नहीं लेते हैं, जिन दस पुस्तकों में यह परिभाषा मिलती है उनमें से नौ पुस्तकों में इसे किसी मीन-मेख के बिना पुरानी पुस्तकों में से लेकर ज्यों का त्यों रख दिया गया है। किंतु प्रोफ़ेसर केनन की पुस्तक में इसे स्थान देने के अधिक सकारात्मक कारण हैं। जिस तर्क प्रक्रिया के आधार पर इतनी पैनी दृष्टि रखने वाले मनीषी को यह परि- भाषा ठीक जँची उसकी खोज का प्रयत्न करने से हमारी काफ़ी ज्ञानवृद्धि हो सकती है।

16 नेचर ऑफ़ केपिटल एंड इनकम, सातवाँ अध्याय।

किसी परिभाषा का मूल कारण प्रायः उसके वास्तविक प्रयोग में ही ढूँढ़ा जाना चाहिए। प्रोफेसर केनन ने "दि फंडेमेंटल कंडीशंस ऑफ़ वेल्थ फॉर आइसोलेटिड मेंन एंड फॉर सोसाइटी"[17] शीर्षक से किसी मनुष्य और समाज की धनोपार्जन की आधारभूत परिस्थितियों की चर्चा के निकटतम सान्निध्य में अपनी परिभाषा का विकास किया है और इस चर्चा के दौरान ही उन्होंने यह बताया है कि कौन-सी वस्तु अर्थशास्त्रीय है और कौन-सी नहीं। प्रोफेसर केनन ने इसे संयोगवश ही अपनी पुस्तक में नहीं रख दिया है। यहाँ यह भी सुझाव दिया जा सकता है कि यदि अर्थशास्त्र का इस दृष्टि से विश्लेषण किया जाता है तो यह परिभाषा, जिसे हम भौतिकवादी परिभाषा भी कह सकते हैं, सबसे अधिक उपयुक्त दिखाई दे सकती है। अतः इसकी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए हमें थोड़ा और विस्तारपूर्वक विचार करना चाहिए।

प्रोफ़ेसर केनन एक ऐसे व्यक्ति के कार्यकलापों को लेकर अपना अध्ययन शुरू करते हैं जो समाज से बिल्कुल अलग-थलग है और फिर यह छानबीन करते हैं कि वह किन परिस्थितियों में धनोपार्जन कर सकता है, अर्थात् उसका भौतिक कल्याण किन बातों पर निर्भर है। ऐसी परिस्थितियों में कार्यकलापों को 'आर्थिक' और 'अनार्थिक' श्रेणियों में बाँटना—अर्थात् ऐसे कार्यकलाप जो भौतिक कल्याण की वृद्धि के लिए किए जाते हैं तथा ऐसे कार्यकलाप जो अभौतिक कल्याण की वृद्धि के लिए किए जाते हैं—किंचित उपयुक्त ही हैं। यदि राबिन-सन क्रूसो आलू की खुदाई करता है तो वह भौतिक या आर्थिक कल्याण के लिए काम करता है और यदि वह अपने तोते से बातें करता है तो उसके इस काम का अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं होता। यहाँ पर एक कठिनाई उपस्थित होती है परंतु हम इसकी बाद में चर्चा करेंगे। इस प्रसंग में प्रथम दृष्टि में एक बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे विभाजन में कोई अटपटी बात नहीं है।

परंतु कल्पना कीजिए कि क्रूसो बचा लिया जाता है और घर लौटने पर वह जीविकोपार्जन के लिए किसी रंगमंच पर जाकर फिर उसी तोते से बातें करने लगता है। निश्चय ही ऐसी स्थिति में हम इन वार्तालापों को आर्थिक कार्य-कलाप मानेंगे। क्रूसो चाहे अपनी आमदनी को आलुओं की खेती में लगाए या दर्शनशास्त्र के अध्ययन में, उसकी आमदनी और खर्च को मूलभूत आर्थिक श्रेणियों के अंतर्गत दिखाया जा सकता है।

प्रोफ़ेसर केनन यहाँ पर रुक कर यह नहीं पूछना चाहते कि क्या यह अंतर विनिमय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करने के लिए थोड़ा-बहुत लाभदायक है या नहीं ? यद्यपि अंततोगत्वा यहीं जाकर आर्थिक सामान्यीकरणों की अधिकतम

[17] यह वेल्थ पुस्तक के प्रथम संस्करण के दूसरे अध्याय का शीर्षक है।

व्यावहारिक उपयोगिता का पता चलता है। बल्कि वह इस बात की चिंता न करते हुए कि कोई समाज निजी संपत्ति और निर्बाध व्यापार के आधार पर संगठित है अथवा नहीं तुरंत एक संपूर्ण समाज के लिए 'धनोपार्जन की आधारभूत परिस्थितियों' पर विचार करना शुरू कर देते हैं। इस स्थान पर फिर उनकी परिभाषा बड़ी उपादेय दिखाई देती है। हम एक बार फिर सारे समाज के कार्यों को उनकी परिभाषा के अनुसार दो भागों में बांट सकते हैं। इनमें से कुछ कार्यों का संबंध भौतिक कल्याण से होता है और कुछ का इससे कोई संबंध नहीं होता है। उदाहरण के लिए हम इसी बात को ले सकते हैं कि एक साम्यवादी समाज की कार्यपालिका क्योंकर कुछ श्रम-काल रोटी कमाने के लिए नियत करती है और कुछ सर्कस आदि दिखाने के लिए।

परंतु यहां पर तथा पहले उदाहरण में क्रूसो की अर्थव्यवस्था के मामले में भी जो प्रक्रिया अपनाई गई है उस पर भारी आपत्ति की जा सकती है। मान लीजिए हम प्रोफ़ेसर केनन के 'आर्थिक' और 'अनार्थिक' शब्दों को क्रमशः 'भौतिक कल्याण' और 'अभौतिक कल्याण' के पर्याय मान लेते हैं। ऐसी स्थिति में हमें उनके साथ मिलकर यह भी मानना पड़ेगा कि जो समाज अपना अधिक समय भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति में लगाता है उसकी संपत्ति एक ऐसे समाज की तुलना में अधिक होगी जो अपना अधिकांश समय अभौतिक कार्यों में लगाता है। क्षण-भर के लिए हम ऐसा कह सकते हैं। किंतु इसके साथ ही हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 'आर्थिक' शब्द का पूर्णतया सामान्य अर्थों में प्रयोग करने के उपरांत भी समाज और व्यक्ति के सामने इन दो प्रकार के कामों के बीच चुनाव करने की आर्थिक समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है अर्थात् हमारे सामने यह समस्या रहती है कि खाली समय और वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्य और उत्पादन के अवसर दिए होने पर दिन के नियत 24 घंटों को इन दो प्रकार के कामों में कैसे बाँटा जाए। दूसरे शब्दों में 'आर्थिक' और 'अनार्थिक' कामों के लिए समय को बाँटने की आर्थिक समस्या हमारे सामने ज्यों की त्यों बनी रहती है। इस प्रकार उत्पादन सिद्धांत की मुख्य समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या का आधा भाग प्रोफ़ेसर केनन की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता।

अतः क्या यही तर्क इस परिभाषा का परित्याग करने के लिए पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है।[18]

18 इस परिभाषा में और भी कई दोष निकाले जा सकते हैं। दार्शनिक दृष्टि से 'भौतिक कल्याण' शब्द बड़ा ही भ्रामक है। इसके स्थान पर 'कल्याण के भौतिक कारण' शब्द रखे जा सकते हैं क्योंकि 'भौतिक कल्याण' मन की स्थितियों के विभाजन का द्योतक है जो वस्तुतः अवि-

3. परंतु फिर प्रश्न उठता है कि इसकी क्या परिभाषा की जाए ? वस्तुतः स्थिति इतनी निराशाजनक नहीं है। 'भौतिकवादी' परिभाषा की समीक्षा से हम एक ऐसे स्थान पर पहुँच चुके हैं जहाँ से हम एक ऐसी परिभाषा बनाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं जिसमें इस प्रकार की त्रुटियाँ नहीं रहेंगी।

हम एक बार फिर उस सरल से उदाहरण को लेते हैं जहाँ पर हमें यह परिभाषा अपर्याप्त दिखाई दी थी—अर्थात् जब एक अकेला मनुष्य अपने समय को वास्तविक आय कमाने और मनोविनोद के कामों में बाँटने की समस्या में उलझा हुआ था। हम अभी-अभी देख चुके हैं कि समय का विभाजन भी एक दृष्टि से अर्थशास्त्रीय विषय हो सकता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह विशेषता कहाँ से आती है ?

इसका उत्तर हमें ठीक उन परिस्थितियों में ढूँढ़ना चाहिए जिनके कारण ऐसा विभाजन करना आवश्यक होता है। इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है। सबसे पहले यह कि अकेला मनुष्य भी वास्तविक आय और मनोविनोद दोनों बातें करना चाहता है। दूसरे, उसके पास इतना समय नहीं है कि वह दोनों कामों को संतोषपूर्वक कर सके। तीसरे, यह कि वह अपने समय को या तो वास्तविक आय बढ़ाने में लगा सकता है या मनोविनोद के कामों में लगा सकता है। चौथे, यह कल्पना भी की जा सकती है कि कुछ अपवादों को छोड़कर उसकी वास्तविक आय कमाने और मनोविनोद के कामों के लिए समय के बँटवारे की इच्छा की तीव्रता भिन्न-भिन्न होती है। इन सब कारणों से उसको इन दोनों के बीच चुनाव करना पड़ता है। उसे एक स्थान से समय की बचत करके दूसरे काम के लिए समय निकालना पड़ता है। उपलब्ध समय और साधनों के बँटवारे का प्रश्न उसकी इच्छाओं से संबंध रखता है। यही उसका आर्थिक पहलू होता है।

यह उदाहरण अर्थशास्त्र के संपूर्ण अध्ययन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। एक अर्थशास्त्री की दृष्टि से मनुष्य का अस्तित्व चार आधारभूत बातों पर निर्भर है। उद्देश्य अनेक होते हैं। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समय और साधनों की कमी होती है तथा इन साधनों को वैकल्पिक कामों में लगाया जा सकता है। दूसरे, उद्देश्यों का भिन्न-भिन्न महत्व होता है। मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। वह सैकड़ों प्रकार की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ रखता है।

भाज्य हैं। इस अध्याय के प्रयोजन के लिए इन त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इस मुख्य प्रश्न पर ही ध्यान केंद्रित करना अच्छा समझा गया है कि क्या इस परिभाषा में उन सभी तथ्यों का समावेश हो जाता है जिनका वर्णन करने के लिए यह बनाई गई है।

उसमें कई सहज प्रवृत्तियाँ होती हैं जो उसे भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींचती रहती हैं। किन्तु इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसके पास बहुत सीमित समय होता है। बाह्य जगत उसे सब इच्छाओं की पूर्ति के लिए पूर्ण अवसर प्रदान नहीं कर सकता। जीवन अल्पावधिक है। प्रकृति कृपण है। हमारे साथियों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं। परंतु इसके उपरांत भी हम अपने जीवन में विभिन्न प्रकार के काम कर सकते हैं। नाना प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम अपने साधनों और दूसरे लोगों की सेवाओं से लाभ उठा सकते हैं।

उद्देश्यों की बहुलता का स्वत: अर्थशास्त्री के लिए कोई महत्व नहीं है। यदि मैं दो काम करना चाहता हूँ और दोनों काम करने के लिए मेरे पास पर्याप्त समय और साधन हैं और उस समय और साधन की मुझे किसी अन्य कार्य के लिए आवश्यकता नहीं है तब मेरे आचरण का कोई भी पहलू अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय नहीं बन सकता। मनुष्य के लिए निर्वाण ही एक मात्र उद्देश्य नहीं है। वह अपनी संपूर्ण इच्छाओं की पूरी तुष्टि करना चाहता है।

साधनों की कमी स्वत: आर्थिक घटनाचक्र का कारण नहीं बन सकती। यदि तृप्ति के साधनों का वैकल्पिक प्रयोग न हो सकता हो तो वे दुर्लभ होते हुए भी आर्थिक अध्ययन के अंतर्गत नहीं आ सकते। स्वर्ग से गिरा हुआ अमृत दुर्लभ हो सकता है किंतु यदि इसका विनिमय नहीं किया जा सकता या इसके उपयोग को स्थगित नहीं किया जा सकता तो उसे आर्थिक पहलू वाली किसी क्रिया का उद्देश्य नहीं माना जाएगा।[19]

और न ही दुर्लभ साधनों की वैकल्पिक प्रयोजनीयता आर्थिक घटनाचक्र के लिए, जिसका हम यहाँ पर विश्लेषण कर रहे हैं, एक अनिवार्य शर्त है। यदि किसी व्यक्ति के सामने दो उद्देश्य हों और उन्हें पूरा करने के लिए उसके पास एक ही साधन हो तथा उसके लिए दोनों उद्देश्य एक जैसे महत्व के हों तो उसकी स्थिति ऐसे गधे जैसी हो जाएगी जिसे कहानीकारों ने घास के बराबर आकर्षण वाले दो बंडलों के बीच कभी इधर कभी उधर लालायित होते हुए दिखाया है।[10]

19 इस शर्त के महत्व पर और बल देना उपयुक्त होगा। तकनीकी दृष्टि से समान साधनों को विभिन्न समयों में एक ही प्रकार के साध्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग करना साधनों का वैकल्पिक प्रयोग कहलाता है। जब तक इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं समझ लिया जाता तब तक एक अत्यंत महत्वपूर्ण किस्म की आर्थिक क्रिया की ओर ध्यान नहीं दिया जा सकता।

20 यह एक अनावश्यक सुधार प्रतीत हो सकता है। इस निबंध के पहले संस्करण में मैंने इसीलिए इसको छोड़ दिया था परंतु मूल्यों के सिद्धांत के विवेचन के लिए यह तथ्य बड़ा महत्वपूर्ण है कि साध्यों के भी अनेक सोपान होते हैं। इसलिए इसका यहाँ पर स्पष्टतया उल्लेख कर देना आवश्यक समझा गया है। देखिए अध्याय 4, अनुभाग 2।

परंतु जब उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समय और साधन सीमित होते हैं और इन साधनों को वैकल्पिक प्रयोजनों में लगाया जा सकता है तथा जब उद्देश्यों में उनके महत्व के अनुसार भेद किया जा सकता है तो ऐसी स्थिति में मनुष्य के सामने अनिवार्य रूप से चुनाव की समस्या उठती है। एक उद्देश्य को पूरा करने के लिए जितना भी समय लगाया जाता है तथा जो भी साधन अपनाये जाते हैं दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए उतने समय और उतने ही साधनों को तिलांजलि देनी पड़ती है। उसका एक आर्थिक पहलू होता है।[21] यदि मैं रोटी भी कमाना चाहता हूँ और सोना भी चाहता हूँ और मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं दोनों काम इच्छानुसार पूर्णतया कर सकूँ तब दोनों इच्छाएँ आंशिक रूप से अतृप्त रह जाएँगी। इसी प्रकार यदि मैं अपने सीमित-जीवन काल में दार्शनिक और गणितज्ञ दोनों ही बनना चाहता हूँ और मेरी ज्ञान अर्जन करने की गति बहुत धीमी है और मैं दोनों कामों को पूरी तरह सम्पन्न नहीं कर सकता तब मुझे दार्शनिक या गणितज्ञ बनने की अभिलाषा में से एक को या दोनों को थोड़ा-थोड़ा छोड़ना होगा।

मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी साधनों को सीमित नहीं कहा जा सकता। बाह्य जगत में अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो तुलनात्मक दृष्टि से इतनी अधिक हैं कि उनमें से कुछ वस्तुओं को एक उद्देश्य के लिए प्रयोग करने के बाद भी उनकी इतनी मात्रा बच जाती है कि उसे दूसरे उद्देश्यों के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'वायु' को ही लीजिए। हम सब इसमें साँस लेते हैं फिर भी यह समाप्त नहीं होती। ऐसी वस्तुओं को हम 'निःशुल्क वस्तुएँ' कह सकते हैं। कुछ बहुत ही विशेष परिस्थितियों को छोड़कर हमारे लिए 'वायु' की आवश्यकता ऐसी है कि हमें इसके लिए किसी प्रकार के समय और साधनों का त्याग नहीं करना पड़ता है। एक घनफुट 'वायु' का प्रयोग कर लेने से हमें किसी वैकल्पिक प्रयोजन के लिए उतनी वायु की कहीं कमी नहीं करनी पड़ती। हमारे आचरण के लिए 'वायु' की इकाइयों का

21 Cp. Schönfeld, *Grenznutzen und-Wirtschaftsrechnung*, p. l. Hans Mayer. *Untersuchungen zu dem Grundgesetze der wirtschaftlichen, Wertrechnung (Zeitschrift für Volkswritschaft und Sozialpolitik*, भाग 2, पृष्ठ 123.)।

पाठक को यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हमने 'समय' को किसी निरपेक्ष रूप से दुर्लभ नहीं माना है बल्कि इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करने के एक साधन के रूप में देखा है। क्योंकि एक अमूर्त संकल्पना के रूप में 'समय' के अभाव की चर्चा करना केवल एक आलंकारिक वर्णन मात्र होगा।

कोई महत्त्व नहीं है। यह कल्पना की जा सकती है कि संसार में ऐसे भी प्राणी हैं जिनकी इच्छाएँ इतनी सीमित हैं कि उनके लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ 'निःशुल्क' होती हैं और उनके लिए किसी वस्तु का विशेष महत्व नहीं होता है।

परंतु सामान्य रूप से मनुष्य को अनेक कार्यकलाप करने पड़ते हैं और उनको करने के लिए उसके पास समय या विशिष्ट साधनों की प्रचुरता नहीं होती। हमारे पास समय का सदा अभाव रहता है। एक दिन में केवल 24 घंटे होते हैं। अतः हमें सदा यह चुनाव करना पड़ता है कि हम किस काम के लिए कितना समय लगाएँ। इसी प्रकार दूसरों से मिलने वाली सेवाओं की भी कोई न कोई सीमा होती है। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारे पास सदा साधनों की कमी रहती है। मनुष्य एक स्वर्ग से नीचे धकेला हुआ प्राणी है, न तो वह स्वयं शाश्वत है और न ही उसके पास सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए असीम साधन ही हैं। हम जहाँ कहीं भी जाते हैं यही देखने में आता है कि जब हम एक वस्तु का चुनाव करते हैं तो दूसरी वस्तु से हाथ धोना पड़ता है, यद्यपि अन्य परिस्थितियों में हम इसे कदापि छोड़ना पसंद नहीं करेंगे। सब जगह मानवीय आचरण की यह विशेषता देखी जाती है कि मनुष्य विभिन्न महत्व वाले अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है परंतु उसके पास इन सबको पूरा करने के लिए साधनों की बहुत कमी है।[22]

यहीं पर अर्थशास्त्रीय विषयों की एकता दिखाई देती है अर्थात् यह पता चलता है कि मनुष्य दुर्लभ साधनों का प्रयोग करने के लिए कैसे आचरण करता है। हम पहले जो उदाहरण दे चुके हैं वे इस संकल्पना से पूर्णतया मेल खाते हैं। रसोइयों और नर्तकों दोनों की सेवाएँ माँग की तुलना में सीमित हैं और इनसे अन्य काम भी लिए जा सकते हैं। अतः इनके वेतन का प्रश्न पूर्णरूपेण हमारी वर्तमान परिभाषा के अंतर्गत आता है। युद्ध संबंधी अर्थशास्त्र की भी

[22] यहाँ पर 'उद्देश्य' शब्द की संकल्पना के बारे में किसी प्रकार का भ्रम या दुविधा नहीं होनी चाहिए। किसी वस्तु को प्राप्त करने की दिशा में किए जाने वाले विशेष प्रयास के अंतिम लक्ष्य के अर्थ में ही उद्देश्य शब्द का प्रयोग किया गया है। कभी-कभी जब यह कहा जाता है कि मनुष्य के सभी क्रियाकलापों का केवल एक ही उद्देश्य है—अधिकतम तुष्टि या अधिकतम उपयोगिता या कोई ऐसी अन्य वस्तु प्राप्त करना—तब इस शब्द का कुछ और ही अर्थ होता है। जिस अर्थ में हमने 'उद्देश्य' शब्द का प्रयोग किया है वह इस 'अंतिम उद्देश्य' तक पहुँचने का प्रयत्न मात्र कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि जब साधन दुर्लभ हों तब भी उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती। हमें साधनों की दुर्लभता और उद्देश्यों के सापेक्षिक महत्व के अनुसार कुछ उद्देश्यों को छोड़ना पड़ता है।

यही स्थिति है। युद्ध के संचालन के लिए दुर्लभ वस्तुओं और सेवाओं को अन्य कार्यों से हटाकर युद्ध के कामों में लगाना पड़ता है तभी युद्ध में सफलता प्राप्त की जा सकती है। अतः युद्ध संचालन के कार्य का भी आर्थिक पहलू होता है। एक अर्थशास्त्री इस बात का अध्ययन करता है कि दुर्लभ साधनों का कैसे प्रयोग किया जाएं। वह इस बात में रुचि रखता है कि कैसे भिन्न-वस्तुओं की दुर्लभता की मात्रा बदलने से उनके मूल्यांकन के अनुसार भी बदल जाते हैं। वह यह जानना चाहता है कि दुर्लभता की स्थिति में परिवर्तन आने से, चाहे ये परिवर्तन उद्देश्यों के बदलने के कारण हुए हों या साधनों के बदलने के कारण, इन अनुपातों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि "अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो दुर्लभ साधनों, जिनका वैकल्पिक प्रयोग हो सकता है, और उद्देश्यों के संबंध में मानवीय आचरण का अध्ययन करता है।[23]"

4. उपर्युक्त संकल्पना का गूढ़ विवेचन करना अत्यंत आवश्यक है। हमने अभी जिस संकल्पना को अस्वीकार किया है, उसके अनुसार अर्थशास्त्र भौतिक कल्याण के साधनों का अध्ययन समझा जाता है। इस संकल्पना को एक प्रकार की वर्गीकरण मूलक संकल्पना कहा जा सकता है। इसमें एक विशेष प्रकार के मानवीय आचरण की कल्पना की गई है जिनका भौतिक कल्याण के कामों से संबंध होता है। फिर इन्हीं को अर्थशास्त्र की विषय वस्तु कहा गया है। मनुष्य के अन्य प्रकार के आचरण इस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते। परंतु जो संकल्पना हम अब अपना रहे हैं वह विश्लेषणात्मक है। इसमें हम किसी विशेष प्रकार के मानवीय आचरण को चुनकर उसका अध्ययन नहीं करते बल्कि मनुष्य के आचरण के एक विशेष पहलू पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं जो साधनों की दुर्लभता के कारण उसके सम्मुख प्रस्तुत होता है।[24] इससे यह निष्कर्ष

[23] देखिए Menger, *Grundsätze der Volkewirtschaftslehret* lte Aufl., पृष्ठ 51-70 ; Mises, *Die Gemeinwirt schaft* पृष्ठ 98 *Seq*., Fetter, *Economic principles* अध्याय 1; Strigl, *Die ökonomischen Kategorien und die Organisation der Wirtschaft*, *passim* ; Mayer, पूर्वोद्धृत ।

[24] वर्गीकरण मूलक और विश्लेषणात्मक परिभाषाओं के अंतर के लिए देखिए इरविंग फिशर, सेंसिज़ ऑफ़ केपिटल (इकानॉमिक जर्नल, भाग 7 पृष्ठ 213)। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि हमारी परिभाषा में अर्थशास्त्र की संकल्पना में जो अर्थभेद किया गया है वह ठीक ऐसा ही है जैसा कि प्रोफेसर फिशर ने अपनी परिभाषा में पूँजी शब्द की संकल्पना में किया है। एडम स्मिथ, ने पूँजी को 'संपत्ति का एक रूप' बताया था जब कि प्रोफेसर फिशर इसे 'संपत्ति का एक पहलू' मानते हैं।

निकलता है कि जहाँ तक इस पहलू के अध्ययन का प्रश्न है वहाँ तक मनुष्य का किसी भी प्रकार का आचरण अर्थशास्त्र के सामान्य नियमों के अंतर्गत आ सकता है। हम यह नहीं कहते कि आलू का उत्पादन आर्थिक कार्य है और दर्शनशास्त्र का अध्ययन आर्थिक कार्य नहीं है। बल्कि हम तो यह कहते हैं कि जहाँ तक एक प्रकार का काम करने पर दूसरे प्रकार के काम का त्याग करना पड़ता है वहाँ तक निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि इसमें एक आर्थिक पहलू निहित है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र की और कोई सीमा नहीं है।

कुछ लेखकों ने जहाँ अर्थशास्त्र को भौतिक कल्याण के साधनों के अध्ययन का विज्ञान नहीं माना है वहाँ उन्होंने इस पर दूसरे प्रकार का प्रतिबंध लगा दिया है। उनका कहना है कि अर्थशास्त्र मनुष्य के आचरण के जिस पहलू से संबंधित है वह अनिवार्यतः एक प्रकार का सामाजिक आचरण है। इसे उन्होंने व्यक्तिगत विनिमय अर्थव्यवस्था की संस्थाओं की देन माना है। इनकी दृष्टि से मनुष्य का जो आचरण इस निश्चित अर्थ में सामाजिक आचरण की कोटि में नहीं आता है वह अर्थशास्त्र का विषय नहीं बन सकता। प्रोफेसर अमन (Amonn) ने इस संकल्पना की विशद व्याख्या करने के लिए असीम परिश्रम किया है।[25]

निस्संकोच यह स्वीकार किया जा सकता है कि हमारी इस परिभाषा के विस्तृत क्षेत्र में भी अर्थशास्त्रियों का ध्यान मुख्यतया विनिमय अर्थव्यवस्था की जटिलताओं पर ही केंद्रित रहता है। इसका कारण जानना हमारे लिए विशेष रूप से रुचिकर है। हम यहाँ पर जिन परिसीमाओं की चर्चा करेंगे वे अकेले मनुष्य के कार्यकलापों और विनिमय अर्थव्यवस्था में बँधे हुए मनुष्य के कार्यकलापों दोनों पर समान रूप से लागू होती है। परंतु अकेले मनुष्य के कार्यकलापों को लेकर उनका आर्थिक विश्लेषण करना अनावश्यक है। उसकी समस्याओं पर विचार करने के लिए हमें किसी विशेष चिंतन की आवश्यकता नहीं है। क्रूसो के आचरण का विश्लेषण किसी उच्च अध्ययन में भले ही सहायता दे सकता हो और उसके लिए अत्यन्त लाभदायक भी हो सकता है

25 देखिए *Objekt und Grundbegriffe der theoretischen National-okonomie*, 2 Aufl इस दृष्टि से पृष्ठ 110–125 और पृष्ठ 155–156 पर दी गई शुम्पीटर और स्ट्रिगल की आलोचना विशेष महत्वपूर्ण है। प्रोफेसर अमन के व्यापक विश्लेषण के लिए पूर्ण सम्मान रखने के उपरांत भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि वह इन दो लेखकों के रवैय्ये के कारण अपने मतभेद को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

परंतु क्रूसो की अपनी दृष्टि में यह स्पष्टतया उसकी दिलचस्पी से बाहर का विषय होगा। इसी प्रकार चारों ओर से 'बंद' साम्यवादी समाज की अर्थव्यवस्था की भी यही दशा है। एक अर्थशास्त्री की नज़र में ऐसे साम्यवादी समाज के कार्यकलापों और विनिमय अर्थव्यवस्था वाले समाज के कार्यकलापों की तुलना करना एक दिलचस्प विषय हो सकता है परंतु उस देश की कार्यपालिका के सदस्यों को अर्थशास्त्र के सामान्य नियम नीरस अथवा अरुचिकर लग सकते हैं। उनकी स्थिति क्रूसो के समान है। उनके लिए केवल यही आर्थिक समस्या होगी कि क्या उत्पादन साधनों को एक कार्य में लगाया जाए या दूसरे कार्य में। अब, जैसा कि प्रोफेसर माइज़िज़ ने कहा है कि यदि यह बात निश्चित हो कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण किसी केंद्रीय सत्ता के हाथ में है तब कीमतों और लागतों की व्यवस्था द्वारा प्रकट होने वाले व्यक्तिगत खिचाव और प्रतिरोध इस परिभाषा द्वारा हमारे विषय के अंतर्गत नहीं आते। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी स्थिति में कार्यपालिका द्वारा किए जाने वाले निर्णय अनिवार्य रूप से 'ऐच्छिक' होंगे।[26]

अर्थात् ये निर्णय उपभोक्ताओं और उत्पादकों के मूल्यांकन के आधार पर न होकर कार्यपालिका के अपने मूल्यांकन के अनुसार होंगे।

इससे चुनाव की समस्या एक दम सरल हो जाती है। जब मार्गदर्शन के लिए मूल्यों की कोई प्रणाली नहीं होती है तब उत्पादन को संगठित करने का काम सर्वोच्च संघटक के मूल्यांकन पर निर्भर करता है, ठीक इसी प्रकार जैसे कि मुद्रा अर्थव्यवस्था से असंबंधित किसी पितृसत्तात्मक संपदा की व्यवस्था कुल-पिता की इच्छा पर निर्भर करती है।

किंतु विनिमय अर्थव्यवस्था में स्थिति कहीं जटिल होती है। इसमें व्यक्तिगत निर्णयों का प्रभाव व्यक्ति की अपनी प्रतिक्रियाओं से बहुत दूर तक पहुँच जाता है। कोई व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा इतना ही समझ सकता है कि एक प्रकार से रुपया न ख़र्च करके दूसरे प्रकार से रुपया ख़र्च करने पर उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा। किंतु इस निर्णय का दुर्लभतामूलक संबंधों की समस्त कोटि, जैसे मजदूरी, लाभों, कीमतों, पूंजीकरण दरों और उत्पादन के संगठन आदि पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इसके विपरीत ऐसे सामान्यीकरण बनाने के लिए जो इन बातों को समझने में सहायता देते हैं

[26] देखिए माइज़िज़ '*Die Gemeinwirtschaft*' पृष्ठ 94–138। प्रोफेसर बोरिस ब्रुत्ज़कुस (Boris Brutzkus) ने 'इकोनॉमिक प्लैनिंग इन सोवियत रशिया' नामक पुस्तक में रूस में किए जाने वाले प्रयोगों की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली ऐसी कठिनाई के अनेक उदाहरण दिए हैं।

हमें काफी अमूर्त बौद्धिक प्रयास करना पड़ेगा। इस दृष्टि से विनिमय अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक विश्लेषण की बड़ी उपयोगिता है, यद्यपि किसी अलग-थलग अर्थव्यवस्था में इसकी कोई आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार एक पूर्णतया साम्य-वादी समाज के लिए भी कुछ साधारण सामान्यीकरणों को छोड़कर आर्थिक विश्लेषण की कोई उपयोगिता नहीं है। परंतु जहाँ सामाजिक संबंधों में व्यक्ति को स्वतंत्र निर्णय करने की इजाजत होती है वहाँ आर्थिक विश्लेषण का बहुत महत्व होता है।

परंतु यह कहना कि विनिमय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विश्लेषण का बहुत महत्व तथा उपयोगिता होती है एक बात है और यह कहना कि अर्थशास्त्र का विषय-क्षेत्र आर्थिक विश्लेषण तक ही सीमित है दूसरी बात है। दूसरे तर्क का अनौचित्य नीचे दिए गए दो तर्कों से पूर्णतया सिद्ध किया जा सकता है। पहले तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि विनिमय अर्थव्यवस्था से इतर व्यवस्था में भी उद्देश्यों के मुकाबले में मनुष्य का आचरण वैसे ही साधनों की दुर्लभता से परिसीमित होता है जैसे कि विनिमय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत। अतः उसे उन्हीं मूलभूत श्रेणियों के अंतर्गत रखा जा सकता है।[27] मूल्य-सिद्धांत के सामान्य नियम अकेले मनुष्य के आचरण पर या साम्यवादी समाज की कार्यपालिका पर वैसे ही लागू होते हैं जैसे कि वे विनिमय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत किसी मनुष्य के आचरण पर लागू होते हैं—भले ही पहले प्रसंग में वे अधिक प्रकाश डालने वाले न हों। विनिमय संबंध एक तकनीकी सुयोग मात्र है। वस्तुतः यह एक ऐसा सुयोग है जो अनेक प्रकार की दिलचस्प किंतु जटिल समस्याओं को पैदा करता है और फिर भी दुर्लभता के मुख्य तथ्य के अधीन है।

दूसरे यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि विनिमय अर्थव्यवस्था के परि-वर्तनों को इस प्रकार के संबंधों से आगे जाकर और चुनाव संबंधी उन नियमों के प्रवर्तन से अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है जो अकेले मनुष्य के आचरण पर विचार करते समय बनाए गए थे।[28]

[27] देखिए स्ट्रिगल, पूर्व-उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 23-28।

[28] प्रोफेसर केसल द्वारा किया गया क्रूसो संबंधी अर्थशास्त्र का खंडन, देखिए 'फंडेमेंटल थॉट्स' (पृ० 27) बड़ा खेदजनक दिखाई देता है क्योंकि केवल अकेले मनुष्य की परिस्थितियों पर विचार करते समय ही इस शर्त का महत्व स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि आर्थिक गतिविधियों के लिए दुर्लभ साधनों का अन्यत्र प्रयोज्य होना जरूरी है। ऊपर हमने इस बात पर विशेष बल भी दिया है। किसी भी प्रकार की सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में केवल आर्थिक उद्देश्यों की बहुतायत से ही ऐसी दुर्लभ वस्तुओं की उपेक्षा होने की संभावना होती है जिनका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होता है।

प्रोफेसर अमन इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार दिखाई देते हैं कि शुद्ध अर्थशास्त्र की ऐसी प्रणाली अर्थशास्त्र के एक गौण विज्ञान के रूप में लाभदायक हो सकती है परंतु वह इसे अर्थशास्त्र का मुख्य विषय मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका यह मत है कि अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र की परिभाषा में रखकर ही बनाई जानी चाहिए।' निश्चय ही उनका यह विचार सराहनीय है कि किसी विज्ञान की परिभाषा उसके विदित तथ्यों को देखकर ही बनाई जानी चाहिए तथा मनमानी सीमाएँ निर्धारित करने का यत्न नहीं करना चाहिए। परंतु उनसे एक प्रश्न पूछना अनुपयुक्त न होगा कि हम केवल रिकार्डो पर ही क्यों ध्यान केंद्रित करें? क्या यह बात स्पष्ट नहीं है कि रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में सबसे बड़ी यही कमी थी कि वे बाज़ार मूल्यों तक ही सीमित थे और उनमें व्यक्तिगत मूल्यांकन को कोई स्थान नहीं दिया गया था? इस संबंध में हाल में प्रतिपादित कुछ मूल्य-सिद्धांतों को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने इस बाधा को पार कर लिया है। सचमुच ही यह उनकी सबसे बड़ी सफलता है।[29]

5. अंत में हम फिर उस परिभाषा को लेते हैं जिसे हम अस्वीकार कर चुके हैं और यह देखना चाहेंगे कि जो परिभाषा हमने अब चुनी है उसकी तुलना में वह कैसी बैठती है। हो सकता है प्रथम दृष्टि में हमें इन दोनों परिभाषाओं के अंतर ठीक-ठीक समझ में न आ सकें। एक परिभाषा में मनुष्य के उस आचरण को अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के अंतर्गत रखने की संकल्पना की गई है

29 प्रोफेसर अमन द्वारा दी गई परिभाषा के बारे में ऊपर की जो आपत्तियाँ उठाई हैं उनसे पर्याप्त रूप से उन आपत्तियों की प्रकृति का पता चल जाना चाहिए जो अर्थशास्त्र को, 'फिनोमिनन फ्रौम दि स्टेंड प्वाइंट ऑफ़ प्राईस' (डेविनपोर्ट), 'मेंजिरिंग रोड आफ़ मनी' (पीगू) या 'दि साइंस ऑफ एक्सचेंज' (लेंड्री) इत्यादि बताने वाली परिभाषाओं के बारे में उठाई जा सकती हैं। प्रोफेसर शुंपीटर ने अपनी पुस्तक (*Wesen und Hauptinhalt*) में अविस्मरणीय ढंग से अति सूक्ष्म विवेचन करके यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि संभवतः मनुष्य के आचरण के सभी मूलभूत पहलुओं को, जो अर्थशास्त्र का विषय बन सकते हैं, विनिमय से संबंध जोड़ा जा सकता है। इस बात को तुरंत स्वीकार किया जा सकता है कि यह बात सही है कि इसमें एक ऐसा सत्य निहित है जो संतुलन सिद्धांत को ठीक तरह से समझने के लिए परम आवश्यक है। परंतु सामान्य रूप से 'विनिमय' शब्द का व्यापक अर्थ करना एक बात है और उसे संपूर्ण विषय की कसौटी मानना दूसरी बात है। इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि अर्थशास्त्र की यों भी परिभाषा की जा सकती है। परंतु इस बात पर निश्चय ही आपत्ति की जा सकती है कि क्या ऐसी परिभाषा हमारे प्रतिपाद्य विषय के अंतिम रूप पर अधिकतम प्रकाश डाल सकेगी?

जो उद्देश्यों और साधनों के बीच एक विशेष संबंध पर आधारित है जबकि दूसरी परिभाषा में मनुष्य के भौतिक कल्याण के साधनों को इसके अंतर्गत रखा गया है। साधनों की दुर्लभता और भौतिक कल्याण के साधन क्या ये दोनों वस्तुएँ न्यूनाधिक एक ही नहीं हैं ?

वस्तुतः ऐसी भ्रांति का आधार एक गलत तर्क है। यह सच है कि वस्तुओं की दुर्लभता मनुष्य के आचरण की एक सीमा निर्धारित करती है परंतु इसके साथ ही समय की कमी और दूसरों की सेवाओं का मिलना या न मिलना भी उतना ही महत्वपूर्ण कारक है। स्कूल के अध्यापकों और नालियों की सफाई करने वाले पुरुषों की सेवाएँ दुर्लभ होने से दोनों में एक आर्थिक पहलू निहित है। परंतु क्या इतना कहने से कि सेवाएँ वस्तुओं का रूपांतर या कोई ऐसी प्रक्रिया मात्र हैं क्या कोई व्यक्ति इस परिभाषा को उतना खींच सकता है कि इसमें अर्थशास्त्र का संपूर्ण क्षेत्र आ जाए ? यह बात केवल कुत्सित ही नहीं है बल्कि पथभ्रष्ट करने वाली भी सिद्ध हो सकती है। क्योंकि इस रूप में कोई परिभाषा भले ही सारे क्षेत्र को घेर ले किंतु वह उसकी व्याख्या नहीं कर सकती। क्योंकि भौतिक साधनों की भौतिकता से ही उन्हें आर्थिक वस्तुओं का दर्जा नहीं मिलता है बल्कि मनुष्य के मूल्यांकन से उनका संबंध ही उन्हें यह दर्जा दिलाता है। किन्हीं दी हुई इच्छाओं से उनका क्या संबंध है यही बात महत्वपूर्ण है न कि उनमें क्या तकनीकी विशेषता है। अतः अर्थशास्त्र की भौतिकवादी परिभाषा, जिस रूप में कि हम इसे जानते हैं, इस विज्ञान की गलत व्याख्या करने वाली है यदि यह हमें इसके क्षेत्र के बारे में निश्चित रूप में पथभ्रष्ट नहीं करती है तो भी यह इसकी प्रवृति और रूप पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालती है। इसको अस्वीकार करने के विरुद्ध कोई वैध कारण नहीं दिखाई देता है।

किंतु इसके साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हमने केवल एक परिभाषा को अस्वीकार किया है। हम उन वस्तुओं को नहीं अस्वीकार कर रहे हैं जिनका वर्णन करने के लिए यह परिभाषा बनाई गई है। जो लोग भौतिकवादी परिभाषा को मानकर चले हैं उनकी सभी बातें यहाँ पर प्रस्तुत की गई दूसरी परिभाषा में भी पूर्णतया समाविष्ट हो जाती हैं। प्रोफेसर केनन की पुस्तक में उल्लिखित सभी सामान्यीकरणों में से कोई भी ऐसा महत्वपूर्ण नियम नहीं है जो अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के बारे में दी गई 'दुर्लभ साधनों के निपटारों' वाली परिभाषा से मेल न खाता हो।

इतना ही नहीं प्रोफेसर केनन ने अपनी परिभाषा की व्याख्या के लिए जिस दृष्टांत को चुना है वह भी उनकी परिभाषा के लिए कहीं उपयुक्त बैठता है। वे कहते हैं कि अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत होंगे कि "क्या बेकन ने शेक्सपीयर के नाटक लिखे हैं" क्योंकि ऐसे प्रश्नों का अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। यदि

यह बात सार्वभौम रूप से स्वीकार कर ली जाती है तो इससे बीज लेखों में विश्वास करने वाले व्यक्तियों को जो परितोष होगा उसे हम आर्थिक तुष्टि नहीं कह सकते हैं—परंतु दूसरी ओर उन लोगों को यह बात माननी होगी कि यदि प्रतिलिप्यधिकार शाश्वत होता और बेकन और शेक्सपीयर के उत्तराधिकारियों में विवाद चल रहा होता तो यह प्रश्न निश्चित रूप से एक आर्थिक प्रश्न बन जाता।

परंतु यह दुविधा क्यों ?[30] इसलिए न कि प्रतिलिप्यधिकार की मिलकियत भौतिक कल्याण का कारण है? मगर हो सकता है कि इनकी सारी आय मिशनरी संस्थाओं में बाँट दी जाए। फिर हमारी नई परिभाषा के अनुसार इस प्रश्न में निश्चय ही एक आर्थिक पहलू है, क्योंकि यहाँ जिस प्रतिलिप्यधिकार कानून की कल्पना की गई है उससे ये नाटक पाठकों की माँग की तुलना में दुर्लभ बन जाते हैं। अतः जिसके पास उनका प्रतिलिप्यधिकार होगा वह एक ऐसे दुर्लभ साधन को हस्तगत कर लेगा जिसे अन्यथा कैसे भी वितरित किया जा सकता है।

30 वेल्थ, प्रथम संस्करण, अध्याय 1।

अध्याय 2

उद्देश्य और साधन

1. अब हम अर्थशास्त्र की एक ऐसी कामचलाऊ परिभाषा बना चुके हैं जिससे यह पता चल सकता है कि इसके अंतर्गत कौन-कौन से विषय आते हैं या इसका क्षेत्र कहाँ तक व्याप्त है। इसके बाद हम इस परिभाषा का गूढ़ विवेचन करना चाहेंगे। इसके लिए हम इस अध्याय में उद्देश्यों और साधनों के उस स्वरूप का अध्ययन करेंगे जो हमें अर्थशास्त्र के सिद्धांतों संबंधी पुस्तकों और आर्थिक इतिहास की पुस्तकों में दिखाई देता है और इससे अगले अध्याय में हम विभिन्न 'आर्थिक मात्राओं' का विवेचन करेंगे।

2. सर्वप्रथम हम उद्देश्यों के स्वरूप की परीक्षा करेंगे।[1]

हम ऊपर कह चुके हैं कि अर्थशास्त्र का मनुष्य के आचरण के उस पहलू से संबंध है जो दिए हुए उद्देश्यों को पूरा करने के लिए साधनों की कमी के कारण पैदा होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ तक उद्देश्यों के चुनने का प्रश्न है अर्थशास्त्र बिल्कुल तटस्थ है। जब तक किसी उद्देश्य की पूर्ति दुर्लभ साधनों पर निर्भर है वह एक अर्थशास्त्री के अध्ययन का विषय बन सकता है। अर्थशास्त्र का उद्देश्यों के औचित्य या अनौचित्य से कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र में यह मान लिया जाता है कि मनुष्य कुछ उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है अर्थात् उसके आचरण में ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं जिन्हें बड़ी आसानी से समझा जा सकता है और जिनकी परिभाषा भी की जा सकती है। इसके पश्चात् इस बात की जाँच की जाती है कि साधनों की दुर्लभता के कारण मनुष्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार करते हैं और इस दुर्लभता का उनके आचरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् इन अंतिम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दुर्लभ साधनों का किस प्रकार प्रयोग किया जाता है।

हमें स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिए कि कुछ उद्देश्यों को 'आर्थिक' उद्देश्य समझना पूर्णतया भ्रामक है। कुछ अर्थशास्त्री स्वभाववश 'आर्थिक

[1] निम्नलिखित अनुभागों में अर्थशास्त्र की एक वास्तविक विज्ञान के रूप में व्याख्या की गई है। क्या अर्थशास्त्र को एक आदर्श विज्ञान माना जाना चाहिए। इस प्रश्न की चर्चा के लिए देखिए आगे अध्याय 6 अनुभाग 4।

तृप्ति' की चर्चा करते हैं, परंतु ऐसा करना आर्थिक विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य नहीं है। हम तुष्टि को किसी कार्य का अंतिम फल मान सकते हैं किंतु यह स्वयं उस कार्य का अंग नहीं होती, जिसका हम अध्ययन करते हैं। 'आर्थिक-तुष्टि' की कल्पना असंभव है। यह एक अतिशयोक्तिपूर्ण कथन है। हम एक इस प्रकार के तुष्टि गुण का उदाहरण दे सकते हैं जो दुर्लभ साधनों की उपलब्धता पर निर्भर होता है और उस प्रकार की तुष्टि से सर्वथा भिन्न होता है जो मनुष्य की मानसिक स्थिति पर निर्भर होती है—जैसे गर्मी की छुट्टियों से होने वाली तुष्टि उस तुष्टि से बिल्कुल भिन्न है जो उनकी याद से स्फूर्त होती है। परंतु जैसा कि हम देख चुके हैं, साधनों की दुर्लभता व्यापक होती है। अतः थोड़ी-बहुत मात्रा में यह मनुष्य के सभी प्रकार के आचरण को प्रभावित कर सकती है। इसलिए हम इसे एक उपयोगी संकल्पना नहीं कह सकते हैं। दूसरे क्योंकि इसका हमारी परिभाषा के अभिप्रेत अर्थों से कोई तारतम्य नहीं है इसलिए संभवतया यही अच्छा होगा कि इसको यहीं पर छोड़ दिया जाए।

यहाँ एक बात और भी बता देनी ठीक होगी। अर्थशास्त्र के कुछ आलोचकों में यह धारणा काम कर रही है कि अर्थशास्त्री मुख्यतया एक विशेष प्रकार के निम्न कोटि के आचरण का ही अध्ययन करता है। यह धारणा एक गलतफहमी पर आधारित है। अर्थशास्त्री का उद्देश्यों के औचित्य या अनौचित्य से कोई संबंध नहीं होता है। उसका संबंध केवल वहीं तक सीमित होता है जहाँ तक कि दुर्लभ साधनों का इन उद्देश्यों की प्राप्ति पर प्रभाव पड़ता है। उद्देश्य अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। यदि हम उद्देश्यों की इस प्रकार की कोई परिभाषा कर सकते हों तो वे भौतिक भी हो सकते हैं और अभौतिक भी। यदि एक प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दूसरे प्रकार के उद्देश्यों का परित्याग करना पड़ता हो तो हम कह सकते हैं कि ऐसे चुनाव में एक आर्थिक पहलू निहित है।

उन लोगों की धारणाओं पर यकीन करने की बजाए जिन्हें यह भी नहीं पता कि आर्थिक विश्लेषण क्या है, यदि हम उस वास्तविक क्षेत्र पर विचार करें जहाँ आर्थिक विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है तो ये सब बातें बिल्कुल स्पष्ट हो जाएँगी। उदाहरण के लिए हम ऐसे विलासी व्यक्तियों के समाज को लेते हैं जो केवल आमोद-प्रमोद और ऐश्वर्य-भोग के काम-काजों में ही लगे हुए हैं या कुछ ऐसे बौद्धिक कार्यों में लगे हुए हैं जो विशुद्ध रूप से भौतिक कहे जा सकते हैं। अब स्पष्ट है कि आर्थिक विश्लेषण हमें ऐसी मूल संकल्पनाएँ प्रदान कर सकता है जिनकी सहायता से हम इस प्रकार के उद्देश्यों और उनकी पूर्ति के लिए उपलब्ध दुर्लभ साधनों के बीच परस्पर संबंध का अध्ययन कर सकते हैं। परंतु जैसा कि रसकिन, कारलाइल और इस प्रकार के कुछ अन्य आलोचकों ने कहा है कि आर्थिक विश्लेषण केवल

यहीं तक सीमित है यह बात सत्य नहीं। मान लीजिए ऊपर बताए गए कुत्सित समाज में साबानरोला अर्थात् धर्म-सुधारक जाते हैं और परिणामस्वरूप उनको अपने पहले कामों से घृणा पैदा हो जाती है। वे इंद्रिय सुखों से संबंधित उद्देश्यों को छोड़ देते हैं और सभी विलासी व्यक्ति तपस्वी बन जाते हैं। निश्चय ही आर्थिक विश्लेषण के नियम उन पर तब भी लागू होंगे। इस बदली हुई स्थिति में ऊपर दिए गए वर्णन में बताई गई मूल संकल्पना में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हाँ, अब केवल उनकी माँग सूचियाँ बदल जाएँगी। कुछ वस्तुएँ पहले की अपेक्षा दुर्लभ हो जाएँगी और कुछ अधिक मात्रा में मिलने लगेंगी। अंगूर वाटिकाओं का लगान कम हो जाएगा और तपस्वियों के लिए मठ बनाने के लिए पत्थर की खदानों का किराया बढ़ जाएगा। केवल इतना ही अंतर आएगा। प्रार्थना और अच्छे कामों के बीच समय के बँटवारे का उतना ही आर्थिक महत्व है जितना कि आमोद-प्रमोद और निद्रा के बीच समय के बँटवारे का। इस प्रकार अर्थशास्त्र जिसे कारलाइल ने तिरस्कार-पूर्ण भाषा में 'शूकर दर्शन' (Pig Philosophy) कहा है एक सर्वव्यापी दर्शन सिद्ध हो जाता है।

यहाँ यह बताना न्यायसंगत होगा, और हमें यह मानना होगा कि इस मामले में अपनी मुसीबतों के लिए कुछ सीमा तक अर्थशास्त्री स्वयं उत्तरदायी हैं। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं सभी अर्थशास्त्रियों का व्यवहार न्यूनाधिक रूप से आपत्तिजनक रहा है। उनकी परिभाषाएँ सदा भ्रामक रही हैं। वे अपने आलोचकों के सामने अनावश्यक रूप से विनयपूर्ण व्यवहार करते रहे हैं। यहाँ तक कि कुछ आधुनिक अर्थशास्त्री भी, जिन्हें अर्थशास्त्र के महत्व पर पूर्ण विश्वास है और जो यह जानते हैं कि अर्थशास्त्र का संबंध मानव कल्याण के अधिकतर भौतिक पहलू से है, अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धांतों पर चर्चा करते समय अपने भाषणों के प्रारंभ में यह लचर दलील प्रस्तुत करते रहे हैं कि अंततोगत्वा रोटी और मक्खन कलाकारों और संतों के जीवन के लिए भी उतने ही आवश्यक हैं जितने कि साधारण मनुष्य के लिए। वास्तव में ऐसे तर्कों की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती है। ऐसे तर्क उन लोगों के दिलों में भ्रम पैदा कर सकते हैं जो केवल भौतिकता को तुच्छ मानते हैं। इतना ही नहीं यदि कारलाइल और रसकिन उन महान अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किए गए विश्लेषण को समझने का प्रयास करते, जिनकी उन्होंने कटु आलोचना की है, तो उन्हें इस बात का ज्ञान हो जाता कि सामान्य आचरण का जो निर्वचन अर्थशास्त्र में किया गया है वह बहुत महत्वपूर्ण है, चाहे वे उन लेखकों द्वारा किए गए वर्णन से उत्तम वर्णन भले ही न कर पाते। किंतु उनकी आलोचनाओं से इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि उन्होंने कभी भी इसको समझने का प्रयत्न नहीं किया।

शायद वे ऐसा प्रयत्न करना ही नहीं चाहते थे। जिन लोगों ने यह विश्लेषण प्रस्तुत किया था उनके बारे में भ्रांतियाँ फैलाना इस काम की अपेक्षा बहुत सरल था। और एक ऐसे विज्ञान के बारे में, जो अपने अंततोगत्वा आशयों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक नहीं हुआ था, भ्रांति फैलाने के अवसर ढूँढ़ने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं थी।

परंतु यदि अर्थशास्त्र की निंदा करने वाले व्यक्तियों के पास अर्थशास्त्र को निम्नकोटि के आचरण से संबंधित होने का लांछन लगाने के लिए कोई आधार नहीं है तो अर्थशास्त्रियों के पास भी यह गर्व करने का कोई आधार नहीं है कि वे एक बहुत श्रेष्ठ विषय का विश्लेषण कर सकते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रोफेसर केनन ने युद्ध संबंधी अर्थशास्त्र के प्रति कैसा विरोधाभासी रवैय्या अपनाया है। और क्या हम सामान्य रूप से यह नहीं कह सकते कि इस मामले में प्रोफेसर केनन सेंट पीटर का थोड़ा बहुत अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं और उनके साथ ये शब्द दोहराते हुए दिखाई देते हैं "कभी नहीं, ईश्वर ऐसा कभी नहीं हो सकता : क्योंकि मेरे मुख से कभी भी कोई तुच्छ या गंदे शब्द नहीं निकले ?" 'वेल्थ'[2] पुस्तक के पहले अध्याय में वह अपने विषय से बाहर जाकर यह कहते हैं, "खरीद और बिक्री की क्रिया के कारण ऐसी अनेक वस्तुएँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अंतर्गत आ जाती हैं जो सामान्यतया उसमें सम्मिलित नहीं की जातीं और जिनको यहाँ पर सुविधा से नहीं रखा जा सकता है। इतिहास के आरंभ से ही ऐसी वस्तुओं का बड़े पैमाने पर व्यापार होता रहा है जिनका प्रयोग विषय-भोग के लिए होता है और जिन्हें कभी भी आर्थिक वस्तुओं की श्रेणी में नहीं रखा गया। एक समय, ऐसे कार्यों को करने के लिए, क्षमा-पत्र खुले आम बेचे गए थे जिन्हें धर्म और नैतिकता की दृष्टि से अपराध माना जाता है। ऐसे क्षमा-पत्र सदैव किसी न किसी आड़ में बेचे जाते हैं। परंतु किसी भी व्यक्ति ने ऐसी वस्तुओं को आर्थिक वस्तुएँ नहीं माना है।" निस्संदेह यह एक बड़ी आपत्तिजनक स्थिति है ? अर्थशास्त्री भी अन्य व्यक्तियों की भाँति, वेश्याओं की सेवाओं के बारे में यह मान सकता है कि नीतिशास्त्र की दृष्टि से अंतिम रूप में इनसे किसी का भला नहीं होता। किंतु इस बात से इन्कार करना तथ्यों के अनुकूल दिखाई नहीं देता कि ये सेवाएँ उस अर्थ में दुर्लभ नहीं कही जा सकतीं जिस अर्थ में हम दुर्लभ शब्द का प्रयोग करते हैं। और इस प्रकार यह कहना कदापि ठीक नहीं है कि वेश्याओं की सेवाओं का कोई आर्थिक पहलू नहीं है, तथा इन पर सामान्य विश्लेपण की उन मूल संकल्पनाओं के अंतर्गत विचार नहीं किया जा सकता जिनकी सहायता से हम कवियों के पारश्रमिक की घटबढ़ पर विचार करते

[2] प्रथम संस्करण, पृ० 15.

हैं। जहाँ तक क्षमापत्रों की बिक्री का संबंध है उनके बारे में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि आर्थिक इतिहास में इन दिलचस्प लेन-देनों के विषय में कभी कोई गंभीर आपत्ति नहीं उठाई गई है। क्या इन क्षमा-पत्रों की बिक्री से आय के वितरण पर या दूसरी वस्तुओं पर किए जाने वाले व्यय पर या उत्पादन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ा है या नहीं? हमें कभी भी इस निष्कर्ष के फल से बचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए कि दुर्लभ वस्तुओं के प्रभाव में आने वाला सभी प्रकार का आचरण अर्थशास्त्र के अंतर्गत आता है।

3. हम जिन अभिप्रेत अर्थों को प्रकाश में लाने का यत्न कर रहे हैं उनकी अवहेलना करने से, जिस प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं, उनका एक दिलचस्प उदाहरण सर जोसिहा स्टाम्प द्वारा लिखे गए निबंध 'एस्थेटिक एज़ एन इकोनॉमिक फैक्टर' में मिलता है।[3]

सर जोसिहा अनेक दूरदर्शी और विचारवान व्यक्तियों की भाँति, ग्रामों की सुरक्षा और पुराने स्मारकों के संरक्षण के लिए चिंतित दिखाई देते हैं। (यह निबंध एक ऐसे अवसर पर लिखा गया था जब कि उनकी रेलवे कंपनी यह निर्णय कर रही थी कि बरमिंघम् में एक रेलवे साइडिंग बनाने के लिए उसे सोलहवीं शताब्दी में बनाए गए स्ट्रेटफोर्ड हाऊस को नहीं गिराना चाहिए जिसका फ्रेम लकड़ी का था तथा शेष भाग ईंटों आदि का बना था)। किंतु साथ ही वह यह भी विश्वास करते हैं कि अर्थशास्त्र भौतिक कल्याण से संबंधित है।[4] इस प्रकार उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि "सौंदर्य के प्रति उपेक्षा करने से, अंत में आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन कम हो जाएगा जब कि इस ओर ध्यान देने से आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सकती है।"[5] कहने का तात्पर्य यह है कि सौंदर्य की उपासना से भौतिक कल्याण अपने आप प्राप्त हो जाता है। वह अपने पूरे जोर से समस्त व्यापारी संसार को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वह इस बात को सच मानें।

इस तर्क का जो आशय है उससे सहानुभूति रखना बड़ा सरल है। किंतु उसमें दिए गए तर्क पर विश्वास करना कठिन है। जैसे कि सर जोसिहा ने कहा है, यह बात बिल्कुल सच हो सकती है कि पुराने स्मारकों के अध्ययन और सौंदर्य की उपासना से व्यापक दृष्टिकोण पैदा होता है, उससे मनुष्य की बुद्धि उत्प्रेरित होती है और उसके तंत्रिका तंत्र (nervous system) को शांति प्राप्त होती है और इस सीमा तक, जहाँ तक कि कोई समाज इस प्रकार के कामों

[3] देखिए 'सम इकनॉमिक फेक्टर्स इन माडर्न लाइफ़' पृष्ठ 1-25।

[4] ".........मैं अर्थशास्त्र का प्रयोग भौतिक कल्याण से संबंधित विज्ञान के रूप में करता हूँ।" (पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृ० 3)।

[5] वही, पृष्ठ 4।

में दिलचस्पी लेता है, उसे दूसरे 'अधिक भौतिक' कार्यों में कुछ लाभ हो सकता है। परंतु यह कोरा आशावाद है जिसके पीछे कोई अनुभव का आधार नहीं है, और न ही प्रागनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसकी कोई संभाव्यता है या यह कल्पना की जा सकती है कि ऐसा अवश्य होता है। एक बात निश्चित है कि सौंदर्य संबंधी या नैतिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देने से अनिवार्य रूप से, क्षति-पूर्ति के रूप में भौतिक पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। प्रायः ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जब हमें रोटी या 'लिली' के फूल में से एक का चुनाव करना पड़ता है। एक को प्राप्त करने के लिए दूसरे को छोड़ना पड़ता है। यद्यपि हम अपने चुनाव के बारे में संतुष्ट हों फिर भी हम अपने आपको यह धोखा नहीं दे सकते कि यह वस्तुतः कोई चुनाव नहीं था तथा इसके पश्चात् हम अधिक रोटियाँ प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। यह भी सच नहीं कि जो लोग ईश्वर से प्रेम करते हैं उनके लिए सभी परिस्थितियाँ भौतिक साधन जुटा देती हैं। अतः हम यह नहीं कह सकते कि इस अर्थ में उद्देश्यों में समन्वय होता है। उद्देश्यों के चुनाव में जो संघर्ष होता है उसका पूर्ण साक्षात्कार अर्थशास्त्र के द्वारा होता है। अर्थ-शास्त्री वास्तव में दुखांत स्थिति दर्शाने वाला अर्थात् निराशावादी होता है।

वास्तव में हुआ यह है कि भौतिकवादी परिभाषा के कारण सर जोसिहा स्पष्ट रूप से यह नहीं समझ पाए कि अर्थशास्त्र और सौंदर्य-शास्त्र दो भिन्न विषय हैं।[6] सौंदर्य-शास्त्र विशेष प्रकार के उद्देश्यों से संबंधित होता है। सौंदर्य स्वयं एक उद्देश्य है। दूसरे उद्देश्यों की तरह उसकी प्राप्ति के लिए भी चुनाव करना पड़ता है। उद्देश्यों के औचित्य अनौचित्य से अर्थशास्त्र का कोई सरोकार नहीं होता। अर्थशास्त्र का उद्देश्यों से वहीं तक संबंध होता है जहाँ तक वे साधनों के प्रयोग को प्रभावित करते हैं। अर्थशास्त्र उद्देश्यों के तुलनात्मक मूल्यों को चुपचाप स्वीकार कर लेता है और यह पता लगाने का प्रयत्न करता है कि एक विशिष्ट प्रकार से आचरण करने से क्या परिणाम निकलेगा।

परंतु यह तर्क दिया जा सकता है कि क्या रुपया कमाने के उद्देश्य को ऐसा उद्देश्य नहीं माना जा सकता जो अन्य उद्देश्यों से प्रतियोगिता करता हो। और यदि ऐसी बात है तो क्या हम यह नहीं कह सकते कि आचरण का भी 'आर्थिक' उद्देश्य हो सकता है? यहाँ पर अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़े होते

6 यह कहना उपयुक्त होगा कि इसी निबंध में ऐसे पैरे भी हैं जो केवल इस विचार को सामने रखकर लिखवाए गए थे, विशेषतया 'उपभोग संतुलन' के बारे में पृष्ठ 14-16 पर व्यक्त किए गए विचार इसी प्रकार के हैं।

हैं। आचरण का एकमात्र उद्देश्य, रुपया कमाना होता है। इस मान्यता का आर्थिक विश्लेषण पर क्या प्रभाव पड़ता है इस बात की विस्तृत चर्चा हम बाद में एक दूसरे अध्याय में करेंगे। फिलहाल हम इतना ही कहना चाहेंगे कि यह आपत्ति रुपये के महत्व के बारे में भ्रांति होने के कारण की जाती है। अपने सामान्य अर्थों में धनोपार्जन तो बिक्री और ख़रीद से पैदा होने वाली एक बीच की स्थिति है। अपनी सेवाओं की बिक्री से या संपत्ति को किराए पर देकर धन कमाना अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं है। धन स्पष्टतया एक साधन मात्र है जिसकी सहायता से अंत में वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। धन की तलाश धन के लिए नहीं की जाती बल्कि किन्हीं दूसरी वस्तुओं पर ख़र्च करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है—चाहे इनसे तत्काल ही कोई वास्तविक लाभ हो या भविष्य में कोई वास्तविक लाभ होने वाला हो। इन अर्थों में रुपया कमाने का अभिप्राय ऐसे सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साधनों को हस्तगत करना है जिनको खरीदी जा सकने वाली वस्तुओं की सहायता से पूरा किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि धन इस रूप में केवल एक साधन मात्र है—विनिमय माध्यम है अथवा गणना का उपकरण है। स्थैतिक दृष्टि से समाज के लिए धन के अधिक या कम होने का कोई महत्व नहीं होता। व्यक्ति के लिए इसकी कमी-बेशी का वहाँ तक ही महत्व है जहाँ तक कि यह उसके अंतिम उद्देश्यों को पूरा कर सकता है। केवल कंजूस व्यक्ति अर्थात् विकृत मनोवृत्ति वाला व्यक्ति ही अतुल धन का संचय करना चाहता है। वस्तुतः हम इस प्रकार के व्यक्ति को कम महत्व देते हैं और यह मानते हैं कि धन की अधिकतर माँग इसको जमा करने के लिए न होकर अन्य वस्तुओं पर ख़र्च करने के लिए होती है। अर्थशास्त्री धन के माँग-वक्र को अक्ष के समानांतर सीधी रेखा न मान कर प्रथम अनुमान के रूप में इसे आयाताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbola) के आकार का मानते हैं।[7]

7 इस प्रसंग में देखिए 'विकस्टीड' 'दि कॉमनसेंस ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' पृष्ठ 155-157। यह इन्कार नहीं किया जाता कि वास्तविक आय को प्राप्त करने की शक्ति को हस्तगत करने का उद्देश्य स्वतः एक उद्देश्य हो सकता है और अगर ऐसा हो तो भी आर्थिक व्यवस्था पर इसका विभिन्न प्रकार से प्रभाव नहीं पड़ सकता। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के किसी उद्देश्य को 'आर्थिक' उद्देश्य कहना अनिवार्य रूप से आर्थिक विश्लेषण के कार्य-क्षेत्र का गलत अर्थ लगाना है। अर्थशास्त्र सभी उद्देश्यों को जैसे का तैसे स्वीकार कर लेता है। आधुनिक आर्थिक विश्लेषण द्वारा परिकल्पित सिद्धांतों के अनुसार उनका सापेक्ष महत्व प्रकट हो जाता है।

4. नीतिशास्त्र या सौंदर्यशास्त्र उद्देश्यों से संबंधित होते हैं परंतु इस रूप में अर्थशास्त्र के विषय में कल्पना नहीं करनी चाहिए। उत्पादन की तकनीकी कलाओं में अर्थात् उपलब्ध साधनों का प्रयोग करने के तरीकों में और अर्थशास्त्र संबंधी अध्ययन में भी स्पष्ट भेद करना समान रूप से महत्वपूर्ण है। इससे अनेक जटिल समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अतः इस पर, कुछ विस्तार से विचार करना अच्छा होगा।

अर्थशास्त्र और उत्पादन की तकनीकी कलाओं का संबंध ऐसा है जो उन अर्थशास्त्रियों के सामने सदा कठिनाइयाँ उपस्थित करता रहा है जो यह सोचते रहे हैं कि वे भौतिक कल्याण के कारणों की छान-बीन में लगे हुए हैं। यह स्पष्ट है कि उत्पादन की तकनीकी कलाओं का संबंध भौतिक कल्याण से होता है परंतु इन तकनीकी कलाओं और अर्थशास्त्र में जो अंतर है वह केवल उतना अंतर नहीं है जितना कला और विज्ञान में होता है। उत्पादन संबंधी तकनीकी कलाओं में पर्याप्त वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है परंतु अर्थशास्त्र में उसकी उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर भी यह एक समस्या बनी रहती है कि इन दोनों में भेद कैसे किया जाए? सर विलियम बेवरिज ने 'इकोनॉमिक्स एज़ ए लिबरल एजुकेशन' पर दिए गए अपने भाषण में इस कठिनाई को बड़े स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। "अर्थशास्त्र को मनुष्य के भौतिक कल्याण से संबंधित विज्ञान बताना इसकी बहुत व्यापक परिभाषा करना है। मकान का मनुष्य के भौतिक कल्याण से बड़ा संबंध होता है और मकान निश्चय ही एक भौतिक वस्तु है। किंतु यदि कोई व्यक्ति एक मकान बनाने के बारे में सोच रहा हो और यदि उसे यह फैसला करना हो कि इस मकान की छत गत्ते की बनाई जाए या किसी अन्य वस्तु की तो अर्थशास्त्र का इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। इस प्रश्न का भवन-निर्माण-कला से संबंध है।"[8] और न ही 'भौतिक कल्याण के कारणों' से पहले 'सामान्य' शब्द रखने से यह कठिनाई हल हो सकती है। अर्थशास्त्र तकनीकी कलाओं का समूह नहीं है और न ही यह अनेक तकनीकों में से सामान्य तत्वों को निकालकर बनाया गया कोई विज्ञान है। उदाहरण के लिए गति-विज्ञान के अध्ययन से अनेक ऐसे सामान्य नियम ढूँढ़े जा सकते हैं जो अनेक धंधों पर लागू होते हैं। किंतु इसका अर्थशास्त्र से कोई संबंध

8 'इकोनॉमिका' खंड 1, पृष्ठ 3, निस्संदेह यदि यह प्रश्न हो कि स्लेटों की छत बनाई जाए या टाइलों की और इस प्रश्न का फैसला इन दोनों वस्तुओं की तुलनात्मक कीमतों पर निर्भर हो तब निश्चय ही यह एक आर्थिक प्रश्न बन जाएगा। तकनीक से केवल कुछ ऐसी सीमाएँ निर्धारित हो जाती हैं जिनके बीच हम कोई चुनाव कर सकते हैं। देखिए आगे पृष्ठ 32।

नहीं होता। कुछ औद्योगिक मनोविज्ञानवेत्ताओं की आशाओं के बावजूद भी वह कभी अर्थशास्त्र में स्थान नहीं पा सकता। जब तक हम अर्थशास्त्र का 'भौतिक कल्याण के कारणों' से संबंध जोड़े रहेंगे तब तक अर्थशास्त्र और उत्पादन की तकनीकी कलाओं का संबंध पूर्णतया अस्पष्ट बना रहेगा।

किंतु हमने जो परिभाषा अपनाई है उसकी दृष्टि से यह संबंध पूर्णतया सुनिश्चित दिखाई देता है। इसके लिए उत्पादन की तकनीकी कलाओं को विभिन्न आर्थिक वस्तुओं की सापेक्ष दुर्लभता को प्रभावित करने वाले कारकों में श्रेणीबद्ध करना पड़ेगा।[9]

उदाहरण के लिए कपास-उत्पादन के तकनीक का एक विद्या के रूप में अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है किंतु विभिन्न उत्पादन-क्षमता वाली तकनीक तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों पर यह निर्भर करता है कि सूती कपड़ों के विभिन्न मूल्यों की संभाव्य प्रतिक्रिया क्या होगी और परिणामस्वरूप तकनीक के स्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इन सब बातों का अध्ययन अर्थशास्त्र के अंतर्गत आता है।

यहाँ तक तो स्थिति बिल्कुल सरल है। किंतु अब कुछ संभाव्य भ्रांतियों को दूर करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम दृष्टि में ऐसा दिखाई देता है कि जिस संकल्पना को हम अंगीकार कर रहे हैं उससे यह भय है कि कहीं ये भ्रांतियाँ दूर होने के साथ-साथ मूल तत्व भी न नष्ट हो जाए। तकनीक को केवल 'दित्त' मान लेने से क्या यह खतरा तो नहीं हो जाता कि हम अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु में से ठीक वे ही विषय बाहर निकाल देते हैं जिनका आर्थिक विश्लेषण पूरी तरह किया जा सकता है ? क्या उत्पादन एक तकनीकी विषय नहीं है ? और क्या उत्पादन का सिद्धांत आर्थिक विश्लेषण का केंद्र बिंदु नहीं है ?

यह आपत्ति उचित प्रतीत होती है परंतु वास्तव में इसमें एक बहुत बड़ी भ्रांति निहित है और यह एक ऐसी भ्रांति है जिसका यहाँ पर अंतिम रूप से निराकरण कर देना बड़ा आवश्यक है। हमने उत्पादन की तकनीकी कलाओं के बारे में

9 देखिए प्रोफेसर नाइट का हाल ही में प्रकाशित एक लेख 'इकोनॉमिक साइंस इन रीसेंट डिसकशन', (अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू, खंड 24, पृष्ठ 225 इत्यादि)"। इसमें उन्होंने, यह शिकायत की है कि मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि अर्थशास्त्र के संबंध में तकनीक केवल निश्चित आधार सामग्री मात्र है। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि शायद ऊपर दी गई पंक्तियाँ प्रोफेसर नाइट की नज़र में नहीं पड़ी हैं। इस संबंध में मैं निश्चय ही उनके विचारों से सहमत हूँ किंतु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि जो कुछ मैं ऊपर लिख चुका हूँ उसे मैं कैसे अधिक सशक्त भाषा में प्रकट कर सकता हूँ ?

जो रवैया अपनाया है उससे किसी भी तरह अर्थशास्त्र में उत्पादन के सिद्धांत[10] की वांछनीयता कम नहीं होती। क्योंकि उत्पादन के ढाँचे को प्रभावित करने वाली सभी बातें तकनीक संबंधी बातें ही नहीं होतीं। निस्संदेह तकनीक एक महत्वपूर्ण विषय है किंतु यही सब कुछ नहीं है। आधुनिक आर्थिक विश्लेषण की यह विशेषता है कि वह तकनीक को अपना उचित स्थान देता है। इस कथन की थोड़ी और व्याख्या की आवश्यकता है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आजकल सभ्यता को सबसे बड़ा ख़तरा उन लोगों से है जो प्राकृतिक विज्ञानों में प्रशिक्षित होने के कारण आर्थिक और तकनीकी विषयों में भेद करने में असमर्थ होते हैं।

आओ हम ऐसे एकाकी मनुष्य के आचरण पर विचार करें जो केवल एक दुर्लभ वस्तु के प्रयोग में व्यस्त है।[11] उदाहरण के लिए हम रॉबिनसन क्रूसो के आचरण को ले सकते हैं। मान लीजिए कि उसके पास लकड़ियों का एक सीमित भंडार है। उसके पास सभी कामों के लिए पर्याप्त लकड़ी नहीं है। वह उस समय कहीं से और लकड़ी भी प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में वह किन बातों के आधार पर उन लकड़ियों का प्रयोग करेगा?

अब यदि लकड़ियों का केवल एक ही बार और एक ही काम के लिए प्रयोग किया जा सके अथवा उसकी केवल एक ही बार और एक ही काम के लिए आवश्यकता पड़े और यदि हम यह मान लें कि रॉबिनसन के पास इस काम को करने के लिए पर्याप्त समय है तो यह बात बिल्कुल सत्य है कि ऐसी स्थिति में उस लकड़ी का मितव्ययी प्रयोग उसकी उत्पादन संबंधी तकनीकी जानकारी पर निर्भर करेगा। यदि वह उस लकड़ी को एक निश्चित परिमाण में जलाना चाहता है और अगर लकड़ी एक सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हो तो उसके आचरण का निर्णय अग्नि जलाने के तरीकों की जानकारी पर निर्भर करेगा। उसका आचरण शुद्ध रूप से तकनीकी विषयों से संबंधित होगा।

परंतु यदि उसे एक से अधिक कामों के लिए लकड़ी चाहिए अर्थात् यदि अग्नि जलाने के अतिरिक्त वह उस भूमि पर अपनी गुफा के इर्द-गिर्द एक बाड़ भी बनाना चाहता है और उसकी मरम्मत आदि के लिए भी लकड़ी बचाना चाहता है तो निश्चय ही उसके सामने एक नई तरह की समस्या पैदा होती है कि

10 भूतकाल में कभी-कभी इस सिद्धांत के बारे में यह कल्पना की गई थी कि इसका संबंध कुल धन से होता है। इसे मानना चाहिए या नहीं, यह एक दूसरी बात है। इस विषय पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे। देखिए आगे अध्याय 3, अनुभाग 6।

11 तुलना के लिए देखिए आस्वाल्ट की पुस्तक '*Vortrage über wirtschaftliche Grundbegriffe*' पृष्ठ 20-41।

वह कितनी लकड़ी आग जलाने के लिए रखे और कितनी बाड़ बनाने आदि के काम के लिए रखे। इन परिस्थितियों में भी आग जलाने और बाड़ लगाने की तकनीक अत्यन्त महत्वपूर्ण है परंतु उसकी यह समस्या शुद्ध रूप से तकनीकी समस्या नहीं होगी।[12] अथवा दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस लकड़ी के प्रयोग के बारे में उसके मन में जो प्रश्न उठेंगे वे शुद्ध रूप से तकनीकी प्रश्न नहीं होंगे। निश्चित सामग्री और उसके प्रयोग की तकनीकी संभावनाओं के निश्चित होने पर जो आचरण किया जाएगा वह परस्पर विरोधी मनोवैज्ञानिक आकर्षणों पर निर्भर होगा। अतः तकनीक और किफायत संबंधी समस्याएँ मूलतः भिन्न-भिन्न समस्याएँ हैं। प्रोफेसर मेयर के शब्दों में हम इसको यों व्यक्त कर सकते हैं "तकनीक संबंधी समस्याएँ तब उत्पन्न होती हैं जब उद्देश्य एक हो और उसको पूरा करने के साधन अनेक हों और किफायत संबंधी समस्याएँ तब उत्पन्न होती हैं जब उद्देश्य भी अनेक हों और साधन भी अनेक हों।"[13]

अब जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि वर्तमान संसार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हमारे अनेक उद्देश्य होते हैं और उनकी पूर्ति के लिए अधिकतर उपलब्ध साधनों का वैकल्पिक रूप से प्रयोग किया जा सकता है। यह बात केवल दुर्लभ वस्तुओं पर ही नहीं लागू होती। यह बात उत्पादन के अंतिम कारकों पर अधिक स्पष्ट रूप से लागू होती है। विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक साधनों और श्रम को अनगिनत प्रयोजनों के लिए काम में लाया जा सकता है। वस्तुओं के वर्तमान उपभोग को स्थगित करने की प्रवृत्ति से ऐसे प्राथमिक कारकों को विभिन्न प्रकार के उत्पादनों की पूँजीतंत्रीय प्रक्रिया में लगाया जा सकता है और इस कारण केवल वर्तमान तकनीक की जानकारी से यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि किसी वस्तु के उत्पादन में वस्तुतः कौन-सी विधि अपनाई जाएगी। इसके लिए हमें उत्पादकों और उपभोक्ताओं के अंतिम मूल्यांकनों का भी ज्ञान आवश्यक है। अर्थशास्त्र मनुष्य के आचरण के जिस पहलू का अध्ययन करता है वह एक ओर तो दिए हुए विभिन्न उद्देश्यों और दूसरी ओर भौतिक तथा तकनीकी संभाव्यताओं की पारस्परिक क्रिया से निर्धारित होता है। केवल ऐसे संसार में जहाँ सभी वस्तुएँ निःशुल्क होती हैं वहाँ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के तकनीकी प्रश्न एकमात्र निर्णायक हो सकते हैं। किंतु हमारी

12 कुछ पेरीटियन वक्रों की सहायता से इस को बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है। विकल्प उत्पादन वक्र दिए होने पर हमें तकनीकी संभावनाओं का पता लग सकता है। परंतु जब तक उपभोक्ता अनधिमान वक्रों का भी पता न हो तब तक समस्या को हल नहीं किया जा सकता।

13 देखिए हेंस मेयर की पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 5 और 6।

परिभाषा के अनुसार वैसे संसार में आर्थिक समस्याओं का कोई स्थान नहीं होता।

ये सब बातें बड़ी अमूर्त दिखाई देती हैं परंतु वास्तव में हम विचाराधीन मूलभूत प्रश्नों के अनुरूप सामान्य भाषा में केवल सर्वविदित तथ्यों को ही दुहरा रहे हैं। यदि हम अपने आप से यह ठोस प्रश्न पूछें कि अमुक-अमुक क्षेत्र में किसी वस्तु का जितना उत्पादन हो रहा है वह क्यों उतना है, उससे कम या अधिक क्यों नहीं है ? ऐसे प्रश्न का जो उत्तर दिया जाएगा वह ऐसी भाषा में नहीं दिया जाएगा जिससे प्रथमतः तकनीकी आशय निकलता हो। हमारे उत्तर में कीमतों और लागतों का उल्लेख होगा और, जैसा कि प्रथम वर्ष का प्रत्येक छात्र जानता है, मूल्यों और लागतों का संबंध सापेक्ष मूल्यांकन से होता है, केवल तकनीकी परिस्थितियों से नहीं होता। हम सबको अनेक ऐसी वस्तुओं का पता है जो तकनीक की दृष्टि से बड़ी आसानी से बनाई जा सकती हैं[14] फिर भी इस समय उनका उत्पादन व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक नहीं समझा जाता है। इसका क्या कारण है ? क्योंकि इसकी संभव कीमत को देखते हुए इस पर बहुत अधिक लागत आती है। फिर प्रश्न पैदा होता है इस पर क्यों इतनी लागत आती है ? तो इसका उत्तर दिया जाता है क्योंकि इसको बनाने की तकनीक अधिक विकसित नहीं है ? वस्तुतः ये सब बातें एक ऐतिहासिक प्रसंग में ही सही मालूम होती हैं। किंतु इससे इस आधारभूत प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता कि तकनीक निश्चित होने पर लागतें क्यों इतनी ऊँची होती हैं ? इसका उत्तर केवल अर्थशास्त्र की भाषा में ही दिया जा सकता है। लागतें मुख्य रूप से इसलिए अधिक होती हैं क्योंकि उनके उत्पादन के लिए उत्पादन कारकों को जो राशि देनी पड़ती है वह उस वस्तु से प्राप्त होने वाले संभाव्य मूल्य की तुलना में अधिक होती है। उत्पादन कारकों के मूल्य अनेक बातों पर निर्भर होते हैं। प्रतियोगिता की परिस्थितियों में इनके मूल्य उपभोक्ताओं द्वारा लगाए जाने वाले उन वस्तुओं के मूल्यों पर निर्भर होते हैं जिन्हें इन उत्पादन कारकों की सहायता से बनाया जा सकता है। और यदि उत्पादन लागत बहुत ऊँची है तो इसका यह अर्थ होता है कि इन कारकों का उपयोग अन्यत्र ऐसी वस्तुएँ बनाने के लिए किया जा सकता है जिनकी कीमतें अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। यदि किसी कारक की पूर्ति पर एकाधिकार हो तब ऊँची लागत का केवल यह अर्थ होता है कि उस कारक का नियंत्रण करने वाले एकाधिकारी ऐसी नीति का अनुसरण कर रहे हैं जिसके कारण उनके नियंत्रण में रहने वाले कुछ उत्पादन कारक अस्थायी रूप से निष्क्रिय हो जाते हैं। इस प्रकार हर स्थिति में इस प्रश्न का उत्तर ठीक

14 जैसे कोयले से मोटर का तेल बनाना।

वहाँ से शुरू होता है जहाँ पर तकनीकी स्थिति का वर्णन समाप्त होता है।

यह बात हमें फिर वहीं ले आती है जहाँ से हमने अपना अध्ययन शुरू किया था, यद्यपि इस बार हमें उसके अभिप्रेत अर्थों के बारे में अधिक जानकारी हो चुकी है। अर्थशास्त्री तकनीक का बतौर तकनीक नहीं अध्ययन करते हैं। वे उसमें केवल वहाँ तक ही रुचि रखते हैं जहाँ तक उससे यह पता चलता है कि उसका सापेक्ष दुर्लभता पर क्या प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार वस्तुओं के सापेक्ष मूल्यांकन से रुचि का पता चलता है उसी प्रकार उत्पादन कार्यों से तकनीक का पता चलता है। परंतु यह संबंध यहीं पर समाप्त हो जाता है। अर्थशास्त्र में यह अध्ययन किया जाता है कि दुर्लभ वस्तुओं का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है जब कि उत्पादन की तकनीकी कलाओं में वस्तुओं या मनुष्यों के आंतरिक गुणों का अध्ययन किया जाता है।

5. पूर्व पृष्ठों पर की गई चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु के अंतर्गत हम अनिवार्य रूप से कुछ संबंधों का अध्ययन करते हैं—अर्थात् एक ओर आचरण के संभाव्य लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों और दूसरी ओर तकनीकी तथा सामाजिक पर्यावरण में विद्यमान संबंधों का अध्ययन करते हैं। उद्देश्य स्वतः अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु के अंतर्गत नहीं आते और न ही तकनीकी और सामाजिक पर्यावरण स्वतः इसके अंतर्गत आते हैं। अर्थशास्त्री के लिए ये वस्तुएँ महत्वपूर्ण न होकर इनके परस्पर संबंध अधिक महत्व रखते हैं।

यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाता है तो आर्थिक इतिहास की, जिसे कभी-कभी वर्णनात्मक अर्थशास्त्र भी कहा जाता है, काफी विशुद्ध व्याख्या की जा सकती है। इस व्याख्या से इन विषयों और सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के बीच का अंतर बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है और इसके कारण इनमें पारस्परिक विरोध के सभी संभव आधार समाप्त हो जाते हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धांत की प्रकृति बिल्कुल स्पष्ट है। अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के अंतर्गत हम उद्देश्यों और साधनों के इन संबंधों के औपचारिक लक्ष्यार्थों का अध्ययन करते हैं और देखते हैं कि उनका अंतिम तथ्यों के स्वरूप के बारे में की गई विभिन्न मान्यताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है। आर्थिक इतिहास का स्वरूप भी कम स्पष्ट नहीं। इसके अंतर्गत हम उन मुख्य घटनाओं का अध्ययन करते हैं जो विभिन्न समयों में इन संबंधों की पुष्टि करती हैं। यह ऐतिहासिक रूप में इस बात की व्याख्या करता है कि 'दुर्लभता' किन-किन रूपों में हमारे सामने आती है। अर्थशास्त्र के सिद्धांत 'दुर्लभता' के रूपों का वर्णन करते हैं और आर्थिक इतिहास इसके तथ्यों का वर्णन करता है।

इस प्रकार आर्थिक सिद्धांत की भाँति आर्थिक इतिहास में भी हम घटनाओं को कुछ वर्गों में बाँट कर यह नहीं कह सकते कि ये घटनाएँ आर्थिक हैं और ये

घटनाएँ आर्थिक नहीं हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धांत की भाँति आर्थिक इतिहास का भी क्षेत्र सीमित करना कठिन है। इस विषय की आंतरिक विचारधारा का उल्लंघन किए बिना ऐसा नहीं कहा जा सकता कि कोई घटना-प्रवाह आर्थिक है अथवा नहीं। किंतु और किसी प्रकार के इतिहास की भाँति आर्थिक इतिहास में भी, घटना-प्रवाह का व्यापक वर्णन नहीं किया जा सकता।[15] आर्थिक इतिहास में उन घटनाओं के कुछ पहलुओं पर बल दिया जाता है—उसमें आर्थिक संबंधों के बदलते हुए जाल[16] का वर्णन किया जाता है। उसमें इस बात का भी वर्णन किया जाता है कि उद्देश्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के तकनीकी और सामाजिक अवसरों में परिवर्तन होने पर मूल्यों पर (आर्थिक अर्थ में) क्या प्रभाव पड़ता है।[17] यदि कोई सैद्धांतिक अर्थशास्त्री रूपों और अपरिहार्य संबंधों

15 "चुने हुए सिद्धांतों के बिना किसी प्रकार का इतिहास लिखना असंभव है।" इस संबंध में देखिए रिकर्ट की पुस्तक (*Kulturwissenschaft und Naturwissenschaft*) पृष्ठ 28-60 ।

16 तुलना कीजिए कनिंघम : "आर्थिक इतिहास किसी विशेष प्रकार के तथ्यों का इतना अध्ययन नहीं है जितना कि यह विशेष दृष्टिकोण से किया गया सब तथ्यों का अध्ययन है।" (ग्रोथ ऑफ इंगलिश इंडस्ट्री एंड कॉमर्स, खंड 1, पृष्ठ 8)

17 आर्थिक सिद्धांत और आर्थिक इतिहास के संबंध के लिए देखिए हेकशर की पुस्तक 'ए प्ली फार थीओरी इन इकोनॉमिक हिस्ट्री' (इकोनामिक हिस्ट्री खंड 1, पृष्ठ 525-535) ; क्लेपहेम की पूर्व उद्धृत पुस्तक 'दि स्टडी ऑफ इकोनॉमिक हिस्ट्री', माइज़िज की पुस्तक *(Soziologie und Geschichte* (*Archiv für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, जिल्द 61, पृष्ठ 465-512) । यह कहा जा सकता है कि आर्थिक इतिहास के स्वरूप का ऊपर जो वर्णन किया गया है वह इस संबंधप एक आदर्श चित्र उपस्थित करता है। यह उस विषय-सामग्री के अनुरूमें नहीं है जो आर्थिक इतिहास की एक औसत दर्जे की पुस्तक में पाई जाती है। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि पिछले ज़माने में आर्थिक सिद्धांत की भांति आर्थिक इतिहास में से भी सदैव बाहरी तत्वों को नहीं निकाला जा सका था। विशेषतया यह बात स्पष्ट है कि जर्मन ऐतिहासिक संप्रदाय के प्रभाव के कारण आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में सभी प्रकार के उन सामाजिक और नैतिक तत्वों का समावेश हो गया था जिनका वर्णन आर्थिक इतिहास में नहीं किया जा सकता, चाहे हम आर्थिक इतिहास की कितनी भी व्यापक परिभाषा क्यों न कर दें। यह सच है कि आर्थिक इतिहास और इतिहास के दूसरे पहलुओं की आर्थिक व्याख्या में (आर्थिक शब्द के ऊपर बताए गए अर्थ में) तथा आर्थिक इतिहास और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के अर्थों में इतिहास की 'आर्थिक

के छद्‌यम गिनतारे को घुमाते फिराते हुए यह धारणा बना लेता है कि सभी प्रकार की क्रियाएँ इसके अध्ययन-क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं तो आर्थिक इतिहासकार इतिहास की अन्य शाखाओं की अधीनता से मुक्त होकर यह विश्वास कर सकता है कि घटनाओं के बहुरंगी ताने बाने का कोई भी खंड ऐसा नहीं है जो उसके विषय से संबंधित न हो।

कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। सबसे पहले हम उस क्रांति को लेते हैं जिसे संक्षेप में हम 'धार्मिक सुधार' का आंदोलन कहते हैं। धर्मशास्त्र का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति की दृष्टि से यह आंदोलन धार्मिक विश्वासों और चर्च के संगठन पर प्रभाव डालने वाली एक महत्वपूर्ण घटना है किंतु राजनीतिशास्त्र का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति की दृष्टि से इसमें और ही बातें महत्वपूर्ण हैं। राजनैतिक संगठन में होने वाले परिवर्तनों, शासकों और जनता के बीच स्थापित होने वाले नए संबंधों और इसके फलस्वरूप होने वाले राष्ट्रीय राज्यों के प्रादुर्भाव आदि में वह अधिक रुचि लेता है। सांस्कृतिक-इतिहासकार के लिए यह घटना इस बात की द्योतक है कि इस समय कला के विषय-क्षेत्र और रूपों दोनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए तथा आधुनिक वैज्ञानिक जाँच की भावना स्वतंत्र हो गई। किंतु अर्थशास्त्र का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति के लिए यह घटना मुख्यतया इस बात की द्योतक है कि इस समय संपत्ति के वितरण, व्यापार के मार्गों, मछली की माँग, क्षमा-पत्रों की पूर्ति और कर-वाह्यता में परिवर्तन हुए हैं। आर्थिक इतिहासकार इस बात में रुचि नहीं रखता कि इससे मनुष्य के उद्देश्यों में और उनके साधनों में क्या परिवर्तन हुए। वह उन उद्देश्यों और साधनों में हुए परिवर्तनों में केवल उस सीमा तक ही दिलचस्पी रखता है जहाँ तक कि वे साधनों और उद्देश्यों के बीच उन संबंधों को प्रभावित करते हैं जो उसके अध्ययन-क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

दूसरा उदाहरण हम उत्पादन की प्रक्रिया में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों का लेंगे—जैसे भाप के इंजन का आविष्कार या रेल परिवहन की खोज। इस प्रकार की घटनाएँ और इनके साथ मनुष्य के उद्देश्यों में होने वाले परिवर्तनों के विभिन्न प्रकार के कई पहलू हैं। ये तकनीकी इतिहास, सभ्यता के इतिहास, कलाओं के इतिहास और इस प्रकार के अनगिनत इतिहासों के लिए रुचिकर हो

व्याख्या' में काफी गड़बड़ है (देखिए नीचे, अनुभाग 6)। किंतु मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि फ्लीटवुड और एडम स्मिथ से लेकर प्रोफेसर क्लेपहाम तक आर्थिक इतिहास की प्रमुख धारा में निरंतर रूप से आर्थिक इतिहास का स्वरूप वैसा ही पाया जाता है जिस रूप में यहाँ उसकी व्याख्या की गई है। उसका स्वरूप किसी अन्य व्याख्या के अनुरूप नहीं है।

सकती है। किंतु आर्थिक इतिहासकार को उनमें वहीं तक रुचि होती है जहाँ तक उनके कारण उसके विषय-क्षेत्र में क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त उसके लिए इनका और कोई महत्व नहीं है। भाप का इंजन प्रारंभ में ठीक-ठीक किस आकार का था और यह किन भौतिक सिद्धांतों के आधार पर बनाया गया था इन सबसे आर्थिक इतिहासकार को, आर्थिक इतिहासकार के नाते, कोई वास्ता नहीं है, यद्यपि भूतकाल में कुछ आर्थिक इतिहासकार इसमें अत्यधिक रुचि दिखाते रहे हैं। आर्थिक इतिहासकार के लिए यह महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे कुछ उत्पादित पदार्थों तथा उत्पादन के कुछ कारकों की पूर्ति और माँग पर प्रभाव पड़ा और जिन देशों में इसका प्रयोग शुरू किया गया वहाँ के मूल्यों और आय के ढाँचे पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

अत: 'वर्णनात्मक अर्थशास्त्र' अर्थात् आजकल के आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में भी मुख्य उद्देश्य सदा "दुर्लभ साधनों तथा वैकल्पिक उद्देश्यों के विशिष्ट संबंधों" की व्याख्या करना रहा है, यद्यपि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य रूप से प्राय: विशेष जाँच करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए मुद्रा के सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए हमें प्राय: अत्यन्त तकनीकी या कानूनी बातें जानने की आवश्यकता पड़ती है जैसे ओवर ड्राफ्ट जारी करने के तरीकों और कागजी मुद्रा जारी करने की विधियों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। बैंकर या वकील को मुख्य रूप से इन बातों का ध्यान रखना पड़ता है। यद्यपि एक अर्थशास्त्री के लिए इनका ठीक-ठीक ज्ञान अपने प्रयोजन के लिए बड़ा आवश्यक होता है तथापि इन बातों की जानकारी उसके मुख्य उद्देश्य की दृष्टि से गौण प्रकार की है। इस जानकारी की सहायता से वह यह दर्शाना चाहता है कि विनिमय माध्यमों की पूर्ति में परिवर्तन होने पर विशेष स्थितियों में क्या परिणाम होंगे? तकनीकी और कानूनी ज्ञान में उसे केवल वहीं तक रुचि होती है जहाँ तक उससे इस पहलू पर प्रकाश पड़ता है।[18]

[18] वस्तुत: इस प्रकार की बातों से पता चलता है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में विभिन्न उद्योगों को अलग-अलग लेकर अध्ययन करने से खतरा पैदा हो सकता है। हाल के कुछ वर्षों में अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उद्योगों के आधार पर अध्ययन करने की प्रवृत्ति को बड़ा बढ़ावा मिला है। अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए कृषि अर्थशास्त्र, परिवहन अर्थशास्त्र, खनन अर्थशास्त्र, आदि अनेक संस्थान बन गए हैं। निस्संदेह कुछ सीमा तक ये सब लाभदायक हैं। व्यावहारिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में श्रम का विभाजन अनिवार्य है। हम अभी बाद में देखेंगे कि ठोस तथ्यों की व्याख्या के लिए तब तक सिद्धांतों का सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि निरंतर रूप से इसे विशेष उद्योगों की बदलती हुई पृष्ठ-भूमि के तथ्यों से

6. अंत में हम यह देखेंगे कि इन बातों का इतिहास की 'भौतिकवादी' या 'आर्थिक' व्याख्या से क्या संबंध है ? क्योंकि हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है उससे कुछ ऐसे भेद निकाले जा सकते हैं जिनको सदा स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया जाता।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि यद्यपि भूतकाल में अर्थशास्त्र की ऐसी परिभाषाएँ की जाती रही हैं जिन्हें हम 'भौतिकवादी' परिभाषाएँ कह सकते हैं फिर भी इसकी विषय-वस्तु बिल्कुल भौतिकवादी नहीं है। हमने जिस परिवर्तित परिभाषा का सुझाव दिया है उससे इसकी विषय-वस्तु में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह परिभाषा केवल इसके वर्तमान क्षेत्र को अच्छी तरह समझने में सहायता करती है। अर्थशास्त्र का 'भौतिकवाद' कूट भौतिक-

---

अवगत न किया जाता रहे। परंतु जैसा कि अनुभव से ज्ञात हुआ है किसी उद्योग विशेष के बारे में किए गए अलग तथा स्वतंत्र अध्ययन बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। यदि हम उनके प्रति निरंतर सजग न रहें तो ये धीरे-धीरे अर्थशास्त्र के क्षेत्र को तकनीकी विषयों से भर देंगे। इससे अर्थशास्त्र का अध्ययन करने वाले व्यक्ति का ध्यान बँट जाता है और अर्थशास्त्र के नाम पर अनेक ऐसे सामान्यीकरण बन जाते हैं जिनका केवल तकनीकी महत्व होता है और यह बात अर्थशास्त्र के लिए बड़ी घातक होती है क्योंकि सभी उद्देश्यों की तुलना में साधन दुर्लभ होते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक व्यवस्था को संपूर्ण रूप में देखने पर ही सामाजिक संबंधों के आर्थिक पहलुओं पर प्रभाव डालने वाले तत्वों का पर्याप्त रूप से अध्ययन किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था में 'उद्योग' उद्योगों के लिए नहीं खोले जाते, वे इसलिए खोले जाते हैं क्योंकि उनका संबंध और उद्योगों के अस्तित्व से होता है। इन सबकी सफलता अथवा विफलता का ज्ञान संपूर्ण अर्थव्यवस्था के संबंधों को ध्यान में रखकर ही हो सकता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि केवल एक उद्योग या व्यवसाय से संबंधित अध्ययनों में सारभूत बातों से संपर्क मिटने का भय बना रहता है। ऐसा दिखाई दे सकता है कि उनका उद्देश्य तो कीमतों और लागतों का अध्ययन करना है परंतु वस्तुतः वे या तो केवल लेखाशास्त्र या अव्यवसायी टेक्नोलाजी का रूप धारण कर लेते हैं। यह तात्पर्य नहीं है कि इस भय के बने रहने के कारण इस प्रकार के अध्ययन बिल्कुल न किए जाएँ। आधारभूत बात यह है कि हमें इस भय का स्पष्ट रूप से ज्ञान होना चाहिए। अन्य स्थितियों की तरह इस स्थिति में भी उचित संतुलन बनाए रखना महत्त्वपूर्ण है। यदि विशेष ज्ञान की विभिन्न अनुसंधान संस्थाएँ न होतीं तो आज हमारा ज्ञान बहुत ही अकिंचन होता। किंतु यदि इन संस्थानों में काम करने वाले कार्यकर्ता अपने मन में यह स्पष्ट धारणा रखें कि कौन-सी बातें आर्थिक दृष्टि से संगत हैं और कौन-सी नहीं तो इससे अनेक भ्रांतियाँ दूर हो सकती हैं।

वाद था। वस्तुत: वह बिल्कुल भौतिकवादी नहीं था।

यह कहा जा सकता है कि इतिहास की 'आर्थिक' या 'भौतिकवादी' व्याख्या में भी ऐसी ही स्थिति थी और उसका नाम बदल देने मात्र से वह सिद्धांत आर्थिक विश्लेषण की आधुनिक संकल्पना के अंतर्गत आ जाएगा। किंतु स्थिति ऐसी नहीं है क्योंकि इतिहास की तथाकथित आर्थिक व्याख्या में केवल 'भौतिकवादी' शब्द ही नहीं जुड़ा हुआ है बल्कि इसकी विषय-वस्तु, आद्योपांत भौतिकवाद से भरी पड़ी है। इसकी यह धारणा है कि इतिहास की सभी घटनाएँ या कम से कम इतिहास की सभी प्रमुख घटनाएँ 'भौतिक' परिवर्तनों पर आधारित हैं। यहाँ 'भौतिक' शब्द का दार्शनिक अर्थ में प्रयोग नहीं किया गया है और इन घटनाओं को इसलिए भौतिक नहीं कहा गया है कि ये 'भौतिक जगत' में घटित हुई हैं और न ही ये मनोवैज्ञानिक अर्थ में इस कारण प्रयुक्त हुआ है कि मनोभाव शारीरिक परिवर्तनों के उप-तत्व मात्र होते हैं यद्यपि हो सकता है मार्क्स इन स्थितियों को स्वीकार कर लेता। यहाँ पर भौतिक शब्द के प्रयोग का यह अर्थ है कि उत्पादन के भौतिक तकनीक सभी सामाजिक संस्थाओं की संरचना को प्रभावित करते हैं और सामाजिक संस्थाओं में होने वाले सभी परिवर्तन उत्पादन की तकनीकों के परिवर्तनों के कारण होते हैं। इतिहास तकनीकी परिवर्तनों का उप-तत्व मात्र है। औज़ारों का इतिहास ही मनुष्य का इतिहास है।[19]

यह सिद्धांत ठीक हो या गलत परंतु यह निश्चय ही भौतिकवादी है और यह भी निश्चित है कि यह अर्थशास्त्र से जैसा कि हम उसे जानते हैं, व्युत्पन्न नहीं

[19] इसके बाद के विवरण में मैंने जिन भेदों का प्रयोग किया है वे डॉ० स्ट्रीगल द्वारा दिए गए वर्णन से मिलते-जुलते हैं (पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 158-161)। दोनों पुस्तकों में विभिन्न बातों पर बल दिया गया है। यह अंतर इस कारण है कि दोनों पुस्तकों का प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। डॉ० स्ट्रीगल यह सिद्ध करना चाहते हैं कि भौतिकवादी व्याख्या (*Datenanderung*) का आद्य-सिद्धांत है। इसलिए वह इसकी इस कमी को कोसते हुए दिखाई देते हैं कि इसमें उन परिवर्तनों को छोड़ कर, जो पूर्ति पक्ष में होने वाले परिवर्तनों से व्युत्पन्न होते हैं, अंतिम मूल्यांकनों में होने वाले परिवर्तनों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। और मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि आर्थिक विश्लेषण (जिस रूप में कि हम उसे जानते हैं) द्वारा की गई इतिहास की किसी भी व्याख्या और भौतिकवादी व्याख्या में क्या आधारभूत अंतर है। इसीलिए मैंने यहाँ पर इस बात की चर्चा छेड़ी है। मैं समझता हूँ जैसे मैं डॉ० स्ट्रीगल द्वारा दिए गए सादृश्य में कोई मीन-मेख नहीं निकालता चाहता वैसे डॉ० स्ट्रीगल भी मेरे तर्क पर कोई आपत्ति नहीं उठाएँगे।

हुआ। यह निश्चित रूप से इस बात पर बल देता है कि तकनीकी परिवर्तन केवल दुर्लभ संबंधों और सामाजिक संस्थाओं में ही सामान्य रूप से परिवर्तन नहीं करते—यह प्रस्थापना सर्वथा आधुनिक आर्थिक विश्लेषण के अनुरूप है—बल्कि इसका यह भी कहना है कि सामाजिक संबंधों में होने वाले सभी परिवर्तन तकनीकी परिवर्तनों के कारण होते हैं। यह मत एक समाजशास्त्रीय प्रस्थापना है तथा अर्थशास्त्र के सीमित क्षेत्र से बाहर की वस्तु है। इसका निश्चित रूप से यह तात्पर्य है कि उद्देश्यों और सापेक्ष मूल्यांकनों में होने वाले सभी परिवर्तन उत्पादन की तकनीकी संभावनाओं पर निर्भर होते हैं। अर्थात् इसका यह अभिप्राय है कि अंतिम मूल्यांकन केवल तकनीकी परिस्थितियों का उपपरिणाम होते हैं। यदि तकनीकी परिस्थितियाँ बदल जाती हैं तो लोगों की रुचि आदि भी बदल जाती है। यदि इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता तो रुचि आदि में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। माँग पक्ष में कोई ऐसे स्वतंत्र परिवर्तन नहीं होते। इसमें जो भी परिवर्तन होते हैं अंततोगत्वा उनका संबंध पूर्ति की तकनीकी मशीनों से होता है। दुर्लभता का कोई स्वतंत्र मनोवैज्ञानिक या शारीरिक आधार नहीं है। मनुष्य में कुछ भी आधारभूत गुण हों, चाहे वे उसे वंशगत रूप से प्राप्त हुए हों या उसने उनका स्वयं विकास किया हो, पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक ही जैसे तकनीकी पर्यावरण में रहने वाले लोगों की आदतें भी समान हो जाती हैं और उनकी संस्थाएँ भी एक जैसी होती हैं। यह बात गलत हो या ठीक हो और भले ही इसे कूट हेगलवादियों की बकवास कहा जाए या ऐसी वस्तुओं की गंभीर अंतर्दृष्टि का नाम दिया जाए जिनका वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण नहीं किया जा सकता, इनके बारे में यह बात सर्वथा सच है कि यह अर्थशास्त्र के किसी सिद्धांत में से नहीं निकली हैं। यह मनुष्य के उद्देश्यों के पीछे छिपे कारणों के बारे में एक सामान्य कथन है जिसका अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। इसको 'भौतिकवादी' कहना उपयुक्त दिखाई देता है। इसको 'आर्थिक' कहना सर्वथा भ्रामक है। इतिहास की व्याख्या के लिए भले ही अर्थशास्त्र एक महत्वपूर्ण उपकरण हो किंतु आर्थिक विश्लेपण में कोई ऐसी बात नहीं है जो यह प्रकट करती हो कि यदि हम 'आर्थिक' शब्द का 'तकनीकी भौतिकवाद' के पर्याय के रूप में प्रयोग करें तो इतिहास के सभी तथ्यों की 'आर्थिक' व्याख्या की जा सकती है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को इतिहास की आर्थिक व्याख्या कहा जाने लगा है क्योंकि यह माना जाने लगा है कि भौतिक कल्याण संबंधी बातें अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं। किंतु जब एक बार यह स्वीकार कर लिया जाता है कि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है तब भौतिकवादी व्याख्या एक अलग विषय बन जाती है। अर्थशास्त्र इसके सिद्धांतों की कोई पुष्टि नहीं करता। न ही यह किसी स्तर पर उन संबंधों

को मानता है जो भौतिकवादी व्याख्या में स्थापित किए गए हैं। अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्यों के सापेक्ष परिवर्तन ही आधारभूत सामग्री है।[20]

20 यहाँ पर यह तर्क दिया जा सकता है कि भौतिकवादी व्याख्या के विपक्ष में की गई पूर्वधारणाओं को सिद्ध करने के लिए आर्थिक विश्लेषण की पूरी जानकारी होनी बड़ी आवश्यक है। जब एक बार यह विदित हो जाता है कि तकनीकी परिवर्तन कैसे माँग पर सीधा प्रभाव डालते हैं तब तकनीकी परिवर्तनों और माँग पक्ष में होने वाले स्वतंत्र परिवर्तनों के बीच कोई आवश्यक संबंध जोड़ना या किसी ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन करना असाधारण रूप से कठिन हो जाता है। मार्क्सवादी सिद्धांत के प्रति इस प्रकार का संशय उठाने का यह अर्थ नहीं है कि तात्विक भौतिकवाद से इनकार किया जा सकता है—यद्यपि इसका यह अर्थ भी नहीं निकाला जा सकता कि हम इसको स्वीकार करते हैं—इसका केवल यह अर्थ है कि हम यह नहीं मानते कि मनुष्यों की रुचि आदि को प्रभावित करने वाले कारण तकनीकी स्वरूप के होते हैं। कोई कट्टर व्यवहारवाद भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि तकनीकी भौतिकवादी अपने इस अर्थ में सबसे अधिक भ्रांति उत्पन्न करने वाला एक अर्ध सत्य है।

अध्याय 3

आर्थिक मात्राओं की सापेक्षता

1. अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम मनुष्य के आचरण के जिस पहलू का अध्ययन करते हैं, वह, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, कुछ निश्चित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपलब्ध साधनों की दुर्लभता से प्रभावित होता है। अतः स्पष्ट है कि वस्तुओं के दुर्लभ होने की बात निरपेक्ष नहीं है। दुर्लभता का अर्थ वस्तु का केवल अभाव नहीं है बल्कि माँग की तुलना में उसका कम मात्रा में उपलब्ध होना है। अच्छे अंडे इसलिए दुर्लभ हैं कि उनकी जितनी माँग है वे उतनी मात्रा में नहीं मिलते, किंतु अंडों की माँग नहीं होती इसलिए वे बहुत कम होते हुए भी दुर्लभ नहीं हैं और हमारी माँग से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। दुर्लभता की इस संकल्पना का अर्थशास्त्र के सिद्धांतों और व्यवहार दोनों के लिए बड़ा महत्व है। इस अध्याय में हम इन बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

2. ऊपर के कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक वस्तुओं की संकल्पना अनिवार्य रूप से एक अत्यन्त औपचारिक[1] कल्पना है। यदि मनुष्यों की माँग से वस्तुओं का संबंध न जोड़ा जाए तो उन वस्तुओं में ऐसा कोई गुण नहीं होता जिसके कारण वे आर्थिक वस्तुएँ बन जाएँ। इसी प्रकार यदि सेवाओं का संबंध उन उद्देश्यों से न जोड़ा जाए जिनकी वे पूर्ति करती हैं तो सेवाओं में ऐसा कोई गुण नहीं होता जिसके कारण उन्हें आर्थिक महत्व प्राप्त हो सके। कोई वस्तु या सेवा आर्थिक है या नहीं यह बात पूर्णतया उसके मूल्यांकन पर निर्भर करती है।

1 · वस्तुतः किसी भी शुद्ध विज्ञान की संकल्पनाएँ अनिवार्यतया औपचारिक ही होती हैं। यदि हम सामान्य रीतिविधान संबंधी सिद्धांतों के निष्कर्षों से अर्थशास्त्र का वर्णन करने का प्रयास कर रहे हैं, और उसका वर्णन नहीं कर रहे हैं जैसा कि उसके विषय-क्षेत्र की सारभूत बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है, तो यह बात हल करने वाले उपकरण की जाँच आरंभ करने के पश्चात् उसका विरुद्ध वर्णन करने के प्रयोजनों से हम अंत में ऐसी संकल्पनाओं पर पहुँच जाते हैं जो शुद्ध रीतिविधान की प्रत्याशाओं से पूर्णतया मेल खाती हैं।

इसी प्रकार धन[2] में कोई ऐसा भौतिक गुण नहीं होता जो उसे आर्थिक महत्व प्रदान करता है। इसे इसलिए धन कहा जाता है क्योंकि यह दुर्लभ होता है। जिस प्रकार हम भोजन की विटामिनों या कलौरियों के रूप में परिभाषा कर सकते हैं इस प्रकार हम धन की कोई भौतिक परिभाषा नहीं कर सकते। मूलतः यह एक सापेक्षिक कल्पना है। पिछले अध्याय में बताए गए तपस्वियों के समुदाय के लिए अनेक ऐसी वस्तुएँ हो सकती हैं जो उनकी माँग से अधिक मात्रा में उपलब्ध हों अतः वे उनके लिए निःशुल्क वस्तुएँ बन जाती हैं। विशुद्ध अर्थ में ऐसी वस्तुएँ धन नहीं मानी जाएँगी किंतु ऐसी ही परिस्थितियों में एक विलासी समाज जिसमें उन वस्तुओं की बहुत माँग हो निर्धन माना जाएगा क्योंकि उसके लिए वे ही वस्तुएँ आर्थिक हो सकती हैं।

इसी तरह जब हम अर्थशास्त्र में उत्पादन शक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि वह कोई निरपेक्ष वस्तु है। अर्थात् उसकी भौतिक दृष्टि से गणना की जा सकती है। हमारा तात्पर्य यह होता है कि वह निश्चित माँगों की पूर्ति कर सकती है। यदि उस माँग में परिवर्तन हो जाता है तो इस अर्थ में उत्पादन शक्ति में भी परिवर्तन हो जाता है।

इसका ठीक-ठीक तात्पर्य समझने के लिए श्री विंस्टन चर्चिल द्वारा दिया गया इंगलैंड के युद्ध मंत्रालय की स्थिति का वर्णन विशेष रूप से उपयोगी होगा। यह स्थिति 11 नवंबर 1918 के प्रातः 11 बजे की है जब कि युद्धविराम संधि पर हस्ताक्षर किए जा रहे थे। अनेक वर्षों के प्रयास के उपरांत इंगलैंड ने अभूतपूर्व मात्रा में युद्ध सामग्री बनाने के लिए एक सुन्दर व्यवस्था तैयार कर ली थी। उसके अनेक उत्पादन कार्यक्रम पूरे होने जा रहे थे। किंतु अचानक सारी स्थिति बदल गई। इन सब वस्तुओं की माँग समाप्त हो गई। युद्ध की सभी आवश्यकताएँ समाप्त हो गईं। अतः अब क्या किया जाना चाहिए?

2 यहाँ पर धन शब्द का प्रयोग आर्थिक वस्तुओं के प्रवाह के पर्याय के रूप में किया गया है। किंतु मैं समझता हूँ इसको इन अर्थों में प्रयोग करने में अनेक दोष उत्पन्न हो सकते हैं। इसके कारण इस विरोधाभासी स्थिति का समर्थन करना पड़ेगा यदि बहुतायत के कारण आर्थिक वस्तुएँ निःशुल्क वस्तुएँ बन जाएँ तो धन की कमी हो जाएगी। किंतु धन का यह अर्थ लेने पर ऐसा निष्कर्ष निकालना बिलकुल अनिवार्य है। इसलिए अर्थशास्त्र की कोई सूक्ष्म परिभाषा करते समय धन शब्द के प्रयोग से बचना चाहिए। पिछले पैरा में सामने आने वाले प्रश्नों से "कुछ महत्वपूर्ण प्रस्तावनाएँ" पैदा होती हैं जिनके बारे में दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ चर्चा होती रहती है। ऐसे प्रसंगों में धन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए ही इस शब्द का यहाँ पर प्रयोग किया गया है।

श्री चर्चिल लिखते हैं कि सुचारु रूप से परिवर्तन करने के उद्देश्य से ये हिदायतें जारी कर दी गईं "कि जिन वस्तुओं का 60 प्रतिशत निर्माण कार्य हो चुका हो उनका उत्पादन पूरा किया जाए"। इस प्रकार युद्ध के समाप्त होने के बाद भी हम कई सप्ताह एक संसार के लोगों को हतप्रभ करते हुए तोप, गोलाबारूद और इस प्रकार की युद्ध सामग्री के अंबार लगाते रहे।[3]

चर्चिल लिखते हैं "यद्यपि यह सब अपव्यय था फिर भी संभवतया वह अक़लमंदीपूर्ण अपव्यय था। श्री चर्चिल का यह कथन ठीक है या नहीं, इसका वर्तमान चर्चा से कोई संबंध नहीं है। इस घटना का उल्लेख करने का हमारा यह उद्देश्य है कि उस दिन जो वस्तु प्रातः दस बजकर पचपन मिनट पर धन और उत्पादन शक्ति थी वही ग्यारह बजकर पाँच मिनट पर धन नहीं रही बल्कि उसकी बजाए वह एक सिर दर्द बन गई और सामाजिक अपव्यय समझी जाने लगी हालाँकि उसकी मूल प्रकृति में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया था। तोपें अब भी वही तोपें थीं जो पहले थीं। मशीनों की उत्पादन क्षमता अब भी वही थी जो पहले थी। एक तकनीकी आदमी की दृष्टि से सारी वस्तुएँ जैसी की तैसी थीं किंतु एक अर्थशास्त्री की दृष्टि से सब कुछ बदल गया था। उसकी नजर में तोपें गोला बारूद, लेथ, मशीनें, भभके आदि सब वस्तुओं में अब जमीन आसमान का अंतर आ गया था। अब सभी उद्देश्य बदल गए थे। साधनों की दुर्लभता का अब कुछ और ही अर्थ हो गया था।

3 दि वर्ल्ड क्राइसिस, खंड 5, पृष्ठ 33-35।

4 यहाँ पर इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि प्रोफ़ेसर केनन की प्रक्रिया का अनुसरण करने से जो निष्कर्ष निकलता है उसमें और हमारे निष्कर्षों में कितना अंतर है। धन को भौतिक कल्याण कहने के बाद प्रोफ़ेसर केनन ऐसी स्थिति में अपने तर्क के अनुसार आगे यह कहने को बाध्य हो जाते हैं कि युद्ध के दौरान हम कोई उत्पादन नहीं कर रहे थे। वस्तुतः इस कठिनाई से बचने के लिए उन्होंने यह तर्क दिया है कि हम युद्ध काल में वस्तुओं का उत्पादन तो कर रहे थे किंतु किसी प्रकार के भौतिक कल्याण का उत्पादन नहीं कर रहे थे (रिव्यू ऑफ़ इकोनॉमिक थिओरी, पृष्ठ 51) किंतु हमारी परिभाषा की दृष्टि से कभी यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि हम युद्ध की अवधि में कोई उत्पादन नहीं कर रहे थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस समय हम शांतिकाल की माँगों का पूर्ति के लिए उत्पादन नहीं कर रहे थे। दोनों दृष्टिकोणों से यह बात स्पष्ट है कि युद्ध और शांति काल की सामग्रियों के आँकड़ों की तुलना नहीं की जा सकती। परंतु हमारे दृष्टिकोण को अपनाने से औपचारिक आर्थिक नियमों की दृढ़ता और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

3. "आर्थिक मात्राओं की सापेक्षता" के बारे में हम ऊपर जिन बातों की चर्चा कर चुके हैं उसका व्यवहारिक अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओं से घनिष्ट संबंध है। यह संबंध इतना महत्वपूर्ण है कि हमें अपनी मुख्य चर्चा को यहीं पर बंद करके इस पर और विचार कर लेना उपयुक्त होगा। शुद्ध सिद्धांत के माध्यों से ठोस समस्याओं के अर्थों को समझने में कितनी सहायता मिलती है इसका इससे अच्छा उदाहरण नहीं हो सकता।

हम जो भेद बता रहे हैं उनकी सहायता से हम किस प्रकार की समस्या को संतोषपूर्वक हल कर सकते हैं इसका एक सुंदर उदाहरण बड़े पैमाने पर उत्पादन है, जिससे होने वाली किफायतों की आजकल बड़ी चर्चा है। जन साधारण बड़े पैमाने पर उत्पादन की चकाचौंध कर देने वाली सफलता से बड़ा अभिभूत है। यह एक प्रकार से सभी आर्थिक रोगों के लिए रामबाण औषधि का खुल सम-सम (अलादीन का चिराग) समझा जाता है। संसार के विस्मित लोगों की चुँधियाई हुई आँखें पश्चिम के मसीहा महान उद्योगपति फोर्ड की ओर उठ जाती हैं, जिसने डेट्राय (Detroit) के कारखानों में लगे वाहकों (Conveyor) को सबसे अधिक देर तक देखा है उसे ही अत्यधिक कुशल अर्थशास्त्री कहा जाता है।

स्वाभाविक है कि कोई भी समझदार अर्थशास्त्री यह अस्वीकार नहीं करेगा कि आधुनिक उत्पादन तकनीक आधुनिक सभ्यता के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। वे तकनीकी परिवर्तन जिनकी वजह से एक अपेक्षाकृत निर्गम व्यक्ति को भी मोटर-कार, ग्रामोफोन आदि सुलभ होने लगे हैं, सचमुच महत्व-पूर्ण परिवर्तन हैं परंतु किन्हीं दिए हुए उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से उनका महत्व निर्धारित करने के लिए हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भौतिक वस्तुओं की केवल संख्या बढ़ाने में और माँग की तुष्टि करने में अंतर होता है। यह बात इस अध्याय में दी गई परिभाषाओं में स्पष्ट हो जाती है। यदि हम इसको सुविधाजनक भाषा में व्यक्त करें तो हम यह कहेंगे कि तकनीकी और मूल्य उत्पा-दन के अंतर को ध्यान में रखना बड़ा महत्वपूर्ण है। किसी वस्तु की माँग को बिना देखे उसका अंधाधुंध बड़े पैमाने पर उत्पादन करना तकनीकी दृष्टि से चाहे कितना ही कौशलपूर्ण क्यों न हो यह आवश्यक नहीं कि वह सदा बचतकारी हो। हम पहले ही देख चुके हैं कि तकनीकी और आर्थिक समस्याओं में एक आधार-भूत अंतर है।[5] हम इस बात को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि कुछ सीमाओं के अंदर जो निश्चय ही तकनीक संबंधी परिवर्तनों के साथ बदल जाती है। मनुष्यों और मशीनरी के विशिष्टीकरण से तकनीकी कुशलता

5 देखिए ऊपर पृष्ठ 29-34।

की वृद्धि में सहायता मिलती है। किंतु यह विशिष्टीकरण किस सीमा तक बचतकारी होता है यह बात बाजार के विस्तार अर्थात् माँग पर निर्भर होती है।[6] एक लोहार के लिए, जो एक छोटे से अलग-अलग समाज के लिए लोहे की वस्तुएँ बनाता है, केवल एक खास किस्म के नाल बनाने में विशेषज्ञता प्राप्त करना, ताकि उसे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने में लाभ हो सकें, बिलकुल मूर्खता होगी। जब वह एक किस्म के कुछ नाल बना लेगा उसके बाद उसके दूसरे किस्म के नाल बनाने की ओर ध्यान देना चाहिए जिनकी पहले किस्म की अपेक्षा अधिक माँग हो। पहले किस्म के और नाल बनाते जाने से, जिनको वह पहले ही काफी मात्रा में तैयार कर चुका है, उसे कोई लाभ नहीं हो सकता।

इसी प्रकार संसार में एक विशेष समय में किसी वस्तु का उत्पादन दूसरी वस्तु की तुलना में एक निश्चित सीमा तक ही बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। इससे अधिक बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से वह उपभोक्ताओं की माँग के अनुरूप नहीं रहेगा। यदि इस वस्तु का इस सीमा से अधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है तो उससे न केवल अपव्यय ही होगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में उत्पादन शक्ति का प्रयोग उन वस्तुओं को बनाने में होगा जो अन्यथा बनाई जाने वाली वस्तुओं की अपेक्षा कम मूल्यवान होंगी, बल्कि इन वस्तुओं को बनाने वाले उत्पादक को भी इससे वित्तीय हानि होगी। आधुनिक आर्थिक विचारधारा की यह एक बड़ी विचित्र पहेली है कि जब एक विशेष दिशा में उत्पादन के असंतुलित विकास से आर्थिक तंत्र में सबसे बड़ी गड़बड़ी हो गई हो, जैसी कि इतिहास में पहले किसी युग में नहीं हुई थी, तब इस प्रकार के सामान्य विश्वास को पनपने का अवसर मिले कि माँग पर ध्यान दिए बिना तकनीकी दृष्टि से संभव बड़े पैमाने का उत्पादन करने में हमें कठिनाइयों से मुक्ति मिल जाएगी। यंत्रोपासना का यह अवश्यंभावी परिणाम है तथा तकनीकी विश्व के दिमागी खोखलेपन की निशानी है।

तकनीकी संभावनाओं और आर्थिक मूल्यों के बीच इस भ्रांति को हम प्रोफेसर व्हाइटहेड के शब्दों में "भ्रष्ट मूर्तता का हेत्वाभास" (fallacy of misplaced concreteness) कह सकते हैं।[7] अचल पूँजी के मूल्य के बारे में वर्तमान काल में प्रचलित कुछ अनुचित धारणाओं का आधार भी यही भ्रांति है। कभी-कभी यह अनुचित विचार किया जाता है कि

6 देखिए एलिन यंग, इंक्रीजिंग रिटर्नस एंड इकोनॉमिक प्रोग्रेस (इकोनामिक जर्नल, खंड 38 पृष्ठ 528-542) जिस अर्थ में यहाँ बचतकारी शब्द का प्रयोग किया गया है उसके लिए आगे छठा अध्याय देखिए।

7 साइंस एंड दि माडर्न वर्ल्ड, पृष्ठ 64।

अचल पूँजी वस्तुओं को बेकार होने देना अवांछनीय है क्योंकि उनमें अत्यधिक धनराशि लगी होती है, चाहे उपभोक्ताओं की माँग में परिवर्तन हो गया हो अथवा तकनीकी आविष्कारों के कारण उपभोक्ता की निश्चित माँग के अन्य लाभदायक तरीके से पूरा करना संभव हो गया हो यदि माँग की पूर्ति को आर्थिक संगठन का बुनियादी आधार माना जाता है तो यह बात पूर्णतया गलत दिखाई देती है। यदि मैं लंदन से ग्लासगो तक रेलवे टिकट खरीदता हूँ और यात्रा के मध्य में मुझे इस आशय का तार मिलता है कि मुझे अमुक समय पर किसी व्यक्ति से मानचेस्टर में मिलना चाहिए तो ऐसी स्थिति में मेरे लिए उत्तर की ओर आगे यात्रा जारी रखना केवल इस कारण उचित नहीं होगा कि मैंने ग्लासगो तक यात्रा के लिए टिकट पर पूँजी लगाई हुई है और वह धनराशि मैं वापस नहीं ले सकता। यह सच है कि तकनीकी दृष्टि से मैं इस टिकट पर अब भी ग्लासगो तक जा सकता हूँ किंतु अब मेरा उद्देश्य बदल गया है। अब उधर की ओर आगे जाने के इस अधिकार का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं रह गया है। इसके बाद भी अगर मैं अपना सफर जारी रखता हूँ तो यह मेरी मूर्खता होगी। अर्थशास्त्र में, जैसा कि जीवन्स ने कहा है, हमें विगत को हमेशा के लिए भुला देना होता है।

जब हम उन मशीनों के बारे में सोचते हैं जिनसे बनने वाली वस्तुओं की माँग खत्म हो चुकी है या जो अन्य मशीनों की तुलना में समग्र दृष्टि से लाभप्रद नहीं हैं, तो हमारे सामने ठीक ऐसी ही स्थिति पैदा होती है। यद्यपि तकनीकी दृष्टि से मशीनें पूर्ववत् ही कार्यक्रम हों, फिर भी आर्थिक दृष्टि से इनके स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है।[8]

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि माँग या लागत की स्थितियों में होने वाले ऐसे परिवर्तनों का पहले से अनुमान लगा लिया जाता जिनके कारण मशीन लाभप्रद नहीं रही हो उस समय इन साधनों को दूसरे ढंग से वितरित किया

8 तुलना कीजिए पीगू, इकोनॉमिक्स ऑफ वेल्फेयर, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 90-92। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि परिवहन समस्या के संबंध में आजकल जितनी भी चर्चा की जा रही है उसमें इन प्रारंभिक बातों की पूर्णतया अवहेलना की गई है। यदि सड़कों पर सरकारी खर्च करने से मोटर परिवहन को प्रच्छन्न रूप से आर्थिक सहायता मिलती है तो इस बात पर विचार करना वित्त मंत्री का काम है। किंतु इस तर्क के आधार पर उन लोगों को जो सड़क से यात्रा करना चाहते हैं, रेलगाड़ी से लाने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। यदि रेलवे आज की माँग की दृष्टि से लाभप्रद नहीं है और हम उनको फिर भी सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हम उनको प्राचीन स्मारकों के रूप में उपदान दे सकते हैं।

जाता। इस अर्थ में इसको अज्ञानता के कारण होने वाला अपव्यय कहा जाना अनुपयुक्त नहीं होगा—यद्यपि ऐसा कहने में अनेक कठिनाइयाँ हो सकती हैं। किंतु जब एक बार परिवर्तन हो जाता है तो यह बात बिल्कुल असंगत हो जाती है कि पहले क्या हुआ था। इस पर और विचार करना समय का अपव्यय करना है। समस्या यह है कि दी हुई परिस्थितियों के अनुरूप कैसे समंजन किया जाए। जब मूल्य के व्यक्तिनिष्ठ सिद्धांत की आलोचना की प्रत्येक वैध बात को ध्यान में रखा जाता है तब हमें इस सिद्धांत की यह अडिग उपलब्धि दिखाई देती है कि इस तथ्य पर ध्यान सकेंद्रित किया गया है जिसका व्यावहारिक अर्थशास्त्र में उतना ही महत्व है जितना कि शुद्ध सिद्धांत में है।

हम जिन प्रस्तावनाओं पर विचार करते रहे हैं उनका व्यावहारिक अर्थशास्त्र में क्या महत्व है उसका एक अंतिम उदाहरण और दिया जाता है। इस संबंध में हम मुद्रा-स्फीति के आर्थिक प्रभावों के बारे में फैली हुई कुछ भ्रांतियों पर विचार करेंगे। यह एक सर्वविदित बात है कि मुद्रा-स्फीति की अवधि में एक समय ऐसा आता है कि जब प्रायः निर्माण उद्योगों की गतिविधि बहुत बढ़ जाती है। कृत्रिम रूप से ब्याज की नीची दरों के कारण प्रायः बहुत बड़े पैमाने पर पूँजीगत उपकरणों को बदलने का उपक्रम शुरू कर दिया जाता है। नए कारखाने बनने लगते हैं। पुराने कारखानों की मशीनें बदल दी जाती हैं। एक साधारण व्यक्ति के लिए यह उल्लेखनीय तेजी असाधारण रूप से आकर्षक होती है और जब मुद्रा-स्फीति के प्रभावों की चर्चा होती है तो बहुधा मुद्रा-स्फीति को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि इसके कारण ये सब कार्य हो सके। हम जर्मनी की मुद्रा-स्फीति के बारे में कई बार यह सुन चुके हैं कि जब तक जर्मनी में मुद्रा-स्फीति की दशा रही तब तक यद्यपि वह बड़ी दुखदायी थी तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि इसने जर्मन उद्योग को नए पूँजी-उपकरणों से सुसज्जित कर दिया। वस्तुतः इस बात की पुष्टि प्रोफेसर एफ० बी० ग्राहम द्वारा भी की गई है जो इस विषय के एक विद्वान थे।[9]

9 देखिए एक्सचेंज, प्राइसिस एंड प्रोडक्शन इन हाइपरइन्फ्लेशन : जर्मनी, 1920-1923 के बीच, पृष्ठ 320। "जहाँ तक उत्पादन का संबंध है वास्तविक आँकड़ों से इस बात का बहुत कम समर्थन होता है कि मुद्रा-स्फीति की बुराइयाँ वितरण से अलग कोई दूसरी बुराइयाँ थीं। अपना निष्कर्ष निकालते समय अंत में प्रोफेसर ग्राहम ने दबी जबान से यह जरूर स्वीकार किया है कि "मुद्रा-स्फीति के बाद की अवधि में स्थायी वस्तुओं में पूँजी लगाने की स्थिति बड़ी ऊटपटाँग हो गई थी" परंतु उनका यह विश्वास दिखाई देता है कि पूँजीगत उपकरणों की मात्रा में कमी हुए बिना भी उनकी 'किस्म' घटिया हो सकती है।

चाहे यह बात युक्तिसंगत प्रतीत हो फिर भी यह उन्हीं स्थूल भौतिकवादी संकल्पनाओं पर आधारित दिखाई देती है जिन पर वे हेत्वाभास आधारित थे, जिनकी हम चर्चा करते रहे हैं, क्योंकि किसी भी औद्योगिक तंत्र की कुशलता आधुनिकतम पूँजी उपकरणों के बाहुल्य पर ही निर्भर नहीं करती। इस संबंध में इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि उनसे उत्पादित वस्तुओं की कितनी माँग है तथा उन उपकरणों का लाभदायक ढंग से प्रयोग करने के लिए आवश्यक अन्य उत्पादन कारकों की कीमतें कितनी हैं। औद्योगिक तंत्र की कुशलता तो इसमें है कि सभी साधनों के संगठन की माँग को पूरा करने के लिए यह कहाँ तक बदला जा सकता है। अब यह दिखाया जा सकता है[10] कि मुद्रा-स्फीति के दौरान कृत्रिम रूप से नीची रखी जाने वाली ब्याज की दरें कुछ किस्म के पूँजी उत्पादन को इस तरीके से बढ़ाने का काम करती है कि जब यह उत्प्रेरक कारण समाप्त हो जाता है तब उनको लाभदायक उद्योगों के रूप में और आगे चलाना संभव नहीं होता। दूसरी ओर नकद साधन समाप्त हो चुके होते हैं। जब मंदी का समय आता है तो इस तंत्र में अचल पूँजी इस प्रकार से लगी होती है कि उसका लाभप्रद उपयोग करना कठिन हो जाता है और नकद पूँजी की सापेक्षिक कमी हो जाती है। इस कारण ब्याज की दरें बढ़ जाती हैं और वे कष्टदायक मालूम होने लगती हैं। समाचारपत्रों के संवाददाताओं को आकर्षित करने वाली मशीनरी अब भी वैसी ही होती है किंतु अब वह कोई मुनाफा नहीं देती। वह सब सामग्री जहाँ की तहाँ होती है किंतु उसका आर्थिक महत्व नष्ट हो जाता है। जर्मन मुद्रा की स्फीति के समय या स्थिरता आ जाने के बाद इस प्रकार की बातों को वास्तविकता से बहुत दूर की बातें माना जाता था। परंतु उस अभागे देश में वर्षों तक पूँजी की अत्यधिक कमी रहना विरोधाभासी दिखाई देता है।[11]

4. अब हमें और अमूर्त बातों पर विचार शुरू करना चाहिए। अब हमें यह देखना है कि हमारी परिभाषाओं का आर्थिक सांख्यिकी के निष्कर्षों से क्या संबंध है। आर्थिक सांख्यिकी में गणना के लिए दो प्रकार की इकाइयों का प्रयोग

10 देखिए माइसिस, दि थीओरी ऑफ मनी एंड क्रेडिट, पृष्ठ 339–366, हेक मॉनिटरी थीओरि एंड दि ट्रेड साइकिल और प्राइसिस एंड प्रोडक्शन; स्ट्रीगल, *Die Produktion unter dem Einflusse einer Kreditexpansion (Schriften des Vereins fur Sozialpolitik*, जिल्द 173, पृष्ठ 187-211)

11 देखिए बान (Bonn), *Das Schicksal des deutschen Kapitalismus*, pp. 14-31 *Bresciani-Turroni, Il Vicendi del Marco Tedesco.*

किया जाता है—भौतिक इकाई और मूल्य की इकाइयाँ गणना या तो तौल कर या गिन कर या मूल्य के आधार पर की जाती है, जैसे इतने टन कोयला, इतने पौंड (स्टर्लिंग) मूल्य का कोयला आदि। आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से इन गणनाओं का क्या अर्थ लेना चाहिए।

जहाँ तक भौतिक गणना का संबंध है उसके बारे में जो कुछ पहले कहा जा चुका है वह पर्याप्त है। इस प्रस्ताव पर और जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है कि यद्यपि तथ्यों का लेखा रखने के रूप में भौतिक गणनाओं पर आपत्ति नहीं की जा सकती और कुछ मामलों में वे लाभदायक भी होते हैं फिर भी अर्थशास्त्री की दृष्टि से सापेक्ष मूल्यन को छोड़कर उनका और कोई महत्व नहीं है। यदि हम यह मान लें कि सापेक्ष मूल्यांकनों का थोड़ा बहुत अनुभवाश्रित स्थायित्व होता है तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनेक भौतिक श्रेणियों का व्यावहारिक अर्थशास्त्र के लिए प्रत्यक्ष महत्व होगा। किंतु तर्कसंगत दृष्टि से यह केवल एक संयोग मात्र है। श्रेणियों का महत्व सदैव सापेक्षिक मूल्यों की पृष्ठ-भूमि पर ही निर्भर होता है।

जहाँ तक मूल्यों के आधार पर गणना का संबंध है इस बारे में हमें अभी अनेक सूक्ष्म बातों पर और विचार करना होगा।

आधुनिक मूल्य-सिद्धांत के अनुसार विभिन्न वस्तुओं और उत्पादन कारकों की कीमतें उनकी सापेक्षिक दुर्लभता अथवा दूसरे शब्दों में सीमांत मूल्यों की द्योतक हैं।[12] मान लो साधनों की मात्रा निश्चित है और बाजार में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास सापेक्ष मूल्यांकन का अपना-अपना पैमाना है; तब बाजार में होने वाली पारस्परिक क्रियायों से विभिन्न व्यक्तियों के सापेक्ष मूल्यांकनों के पैमानों का तालमेल सापेक्ष मूल्यों में व्यक्त बाजार के पैमाने से बिठाया जा सकता है।[13] इस प्रकार कीमतें बाजार में आने वाली विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण मुद्रा में व्यक्त करती हैं। इसलिए किसी वस्तु की वर्तमान कीमत का महत्व केवल दूसरी वस्तुओं की उस समय निर्धारित कीमतों की तुलना में ही होता है। अपने आप उसका कोई महत्व नहीं होता। मुद्रा में व्यक्त तरजीह के क्रम के रूप में ही इसका महत्व होता है, जैसा कि सेम्युअल बेली ने सौ वर्ष पहले कहा था "जैसे हम किसी वस्तु की दूरी तब तक नहीं बता सकते जब तक कि हम यह निश्चित न करें कि किस अन्य वस्तु से यह दूरी मापी जा रही है उसी तरह हम किसी दूसरी वस्तु से तुलना किए बिना एक वस्तु

12 देखिए आगे, चौथा अध्याय, अनुभाग 2।

13 इस प्रक्रिया के विस्तृत विवरण के लिए विशेष रूप से देखिए विकस्टीड कामनसेंस ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी, पृष्ठ 212-400।

का मूल्य नहीं बता सकते। दूसरी वस्तु से तुलना किए बिना उसी प्रकार एक वस्तु को मूल्यवान नहीं कहा जा सकता जिस प्रकार दूसरी वस्तु से संबंध स्थापित किए बिना एक वस्तु की दूरी नहीं बताई जा सकती है।[14]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि विचारों में अविच्छिन्नता बनाए रखने के लिए और कुछ निश्चित संबंध स्थापित करने के लिए हमने अब तक "आर्थिक मात्रा" शब्द का जो प्रयोग किया है वह वस्तुतः बड़ा भ्रामक है। यह सच है कि किसी वस्तु की कीमत हमें यह बताती है कि उसको खरीदने के लिए बदले में हमें कितनी मुद्रा देनी पड़ेगी। परंतु मुद्रा की इस मात्रा में और मुद्रा की ऐसी अन्य मात्राओं में जो संबंध होता है वही महत्वपूर्ण होता है। मूल्य पद्धति में जो मूल्य व्यक्त किए जाते हैं उनको मात्राएँ नहीं कहा जा सकता है। उनको निश्चित क्रम से किया गया विन्यास ही कहा जा सकता है। यह मानना अनावश्यक है कि सापेक्षिक मूल्य के पैमाने से मुद्रा को छोड़कर मात्रा को नहीं मापा जा सकता। मूल्य एक संबंध का द्योतक है, किसी मात्रा का नहीं।

किन्तु यदि ऐसा है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि कीमतों या व्यक्तिगत आय को जोड़ कर कुल सामाजिक आय निर्धारित करने का काम एक ऐसा काम है जिसका बहुत ही सीमित अर्थ होता है। विशेष मूल्यों तथा विशेष आयों को खर्च की गई धन राशियों के रूप में जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार जो जोड़ बनता है वह मुद्रा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। परंतु इनको तरजीह के क्रम में व्यक्त करने से, जो कि एक सापेक्षिक पैमाना होता है इनका जोड़ नहीं लगाया जा सकता। इस दृष्टि से इनके जोड़ का कोई महत्व नहीं होता।

14 ए क्रिटिकल डिजरटेशन ऑन वेल्यू, पृष्ठ 5।

15 कीमतों में लक्षित मूल्यांकन के क्रमसूचक स्वरूप को पहचानना आधारभूत बात है। इसके महत्व को और बल देकर समझना कठिन है। ओकाम क्षुररिका की एक ही काट से यह आर्थिक विश्लेषण से सदा के लिए मनोवैज्ञानिक सुखवाद के अंतिम चिह्नों को मिटा देता है। मगर न मूल्य सिद्धांत की व्याख्या में जिस *Bedeutung* शब्द का प्रयोग किया है उसमें भी यह कल्पना निहित है किंतु इस सिद्धांत के स्पष्ट कथन और इसकी व्याख्या का मुख्य श्रेय बाद में आने वाले लेखकों को है, विशेष रूप से देखिए क्यूहेल, *Zur Lehre von den Bedürfnissen*, पृष्ठ 186-216, पेरेटो *Manuel d' Economie Politique*, पृष्ट 540-2 और हिक्स और एलन, ए रीकंसीडरेशन आफ़ दि थीओरि आफ़ वेल्यू (इकोनॉमिका, 1934, पृष्ठ 51-76)। इस महत्वपूर्ण लेख में यह दिखाया गया है कि मूल्य सिद्धांत की अनेक सूक्ष्म बातों जैसे पूरकता, स्थानापन्नता, आदि की विहित तुष्टिगुण फलन की कल्पना की सहायता लिए बिना कैसे व्याख्या की जा सकती है।

इनका केवल तुलनात्मक महत्व ही होता है। सामाजिक आय के अनुमानों का मुद्रा सिद्धांत के लिए एक बिल्कुल ही अलग अर्थ हो सकता है किंतु इसके अलावा इनका केवल रूढ़ महत्व ही होता है।

इस निष्कर्ष के ठीक-ठीक प्रभाव और सीमाओं दोनों को जानना आवश्यक है। इसका यह अर्थ है कि कीमतों के विस्तृत योग का तात्पर्य मुद्रा भुगतानों का प्रवाह मात्र है। इससे अधिक कुछ नहीं है। संसार ही नकद आय, और राष्ट्रीय नकद आय, इन दोनों कल्पनाओं का केवल मुद्रा के सिद्धांत में ही महत्व है। पहली कल्पना का महत्व अप्रत्यक्ष विनिमय के सामान्य सिद्धांत के संबंध में होता है और दूसरी कल्पना का महत्व बहुमूल्य धातुओं के वितरण विषयक रिकार्डों के सिद्धांत के संबंध में होता है। किंतु निस्संदेह इसके रुढ़ महत्व को एकदम छोड़ नहीं दिया गया है। यदि हम यह मानना चाहते हैं कि तरजीह और वितरण में अल्पावधि में शीघ्र परिवर्तन नहीं होते और हम यह भी मानना चाहते हैं कि कीमतों के कुछ परिवर्तन अधिकांश आर्थिक विषयों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं तो निस्संदेह हम इनकी कुल राशियों में होने वाले परिवर्तनों का कुछ स्वेच्छ अर्थ लगा सकते हैं, जिसका कुछ न कुछ लाभ होगा ही। ऐसे अनुमानों के पक्ष में सर्वोतम संख्याविदों द्वारा यही सब बातें कही जाती हैं। यहाँ पर हमारा प्रयोजन केवल यह दिखाना है कि आवश्यक मान्यताओं का स्वरूप मूलतः स्वेच्छ होता है। इनका तथ्यों में कोई प्रतिरूप नहीं मिलता और न ही ये शुद्ध सिद्धांत की मूल संकल्पनाओं से सिद्ध होती हैं।

यदि हम एक क्षण के लिए इस बात पर विचार करें कि वितरण में होने वाले घोर परिवर्तनों के संभव प्रभावों की परीक्षा करने में इन समुच्चयों का क्या लाभ हो सकता है तो हम इन सब बातों का महत्व समझ सकते हैं। समय-समय पर किसी एक निश्चित क्षेत्र में होने वाली कुल नकद आय की गणना की जाती है और इन जोड़ों से यह अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि धन के समान वितरण करने की दिशा में किए गए महान परिवर्तनों का क्या प्रभाव हुआ। इस बारे में प्रोफेसर बाऊली और सर जोसीहा स्टाम्प[16] के प्रयास भली-भाँति विदित हैं।

जहाँ तक ये अनुमान केवल यह निश्चित करने के लिए लगाए जाते हैं कि पुनर्वितरण के लिए कितनी व्यय शक्ति की प्रारंभिक राशि उपलब्ध है वहाँ तक ये बड़े मूल्यवान और महत्वपूर्ण होते हैं। वस्तुतः जिन सुप्रसिद्ध संख्याविदों ने अनुमान लगाए हैं उन्होंने भी उनका महत्व केवल उतना ही बताया है। अतः इनको इससे और अधिक महत्व देना व्यर्थ है। क्योंकि पुनर्वितरण के

16 देखिए बाऊली, दि डिवीजन आफ़ दि प्रॉडक्ट आफ़ इंडस्ट्री और स्टाम्प, वेल्थ एण्ड टेक्सेबल केपेसिटी।

कारण सापेक्षिक मूल्यांकनों में अनिवार्य रूप से परिवर्तन हो जाता है। इसके साथ उत्पादन की सारी मशीनरी का ढाँचा ही बदल जाता है। ऐसी स्थिति में वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह का और ही रूप हो जाता है। वस्तुतः यदि हम इस समस्या पर थोड़ा और विचार करें तो हम देख सकते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तन से उपलब्ध होने वाली उत्पादन शक्ति को ऐसे अनुमानों में बढ़ा-चढ़ा कर आँका जाता है। अमीर आदमियों के अपनी बड़ी आय का अधिकांश भाग इस कारण प्राप्त होता है कि समाज में दूसरे अमीर आदमी होते हैं। वकील, डॉक्टर, दुर्लभ स्थानों के मालिकों आदि की आय इस लिए अधिक होती है क्योंकि ऊँची आय वाले कुछ ऐसे लोग होते हैं जो उनकी सेवाओं के लिए अधिक कीमत देने को तैयार होते हैं। आय का पुनर्वितरण कर देने पर संबंधित कारकों की तकनीकी कुशलता उतनी ही रहती है फिर भी सापेक्षिक पैमाने पर उनका महत्व बिल्कुल बदल जाता है। मुद्रा की मात्रा और उसका संचलन वेग पूर्व-वत् रहने पर यह लगभग निश्चित है कि इसका सबसे पहला मुख्य परिणाम यह होगा कि मज़दूर वर्ग द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाएँगी। यह निष्कर्ष, जो विभिन्न धंधों की गणनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, वास्तव में इस कारण अस्पष्ट हो जाता है कि गणना मुद्राओं में की जाती है। ऐसी गणनाएँ प्रायः निराशावादी मानी जाती हैं। यदि हम उन लोगों की संख्या गिन सकें जो इस समय अमीर आदमियों के लिए वास्तविक आय उत्पन्न करते हैं किंतु जिनको गरीबों के लिए वास्तविक आय पैदा करने के कामों में लगाया जा सकता है तो हम देखेंगे कि इस परिवर्तन से केवल नगण्य वृद्धि होगी। यदि इस मुद्रा संबंधी गणनाओं के द्वारा अधिक सही विवेचन करने का प्रयत्न करते हैं तो हमें अतिरंजना का भय हो सकता है। प्रारंभ में जितनी अधिक असमानता होगी उतनी अधिक अतिरंजना हो सकती है।[17]

17 वस्तुतः यह बात अनिवार्यतः ऐसी नहीं है। यदि अमीर लोग अपनी आय को डॉक्टरों, वकीलों आदि की महँगी सेवाओं में न खर्च करके उसे अनुचर-परिचारकों आदि पर खर्च करने के अभ्यस्त हों, जो दूसरों के द्वारा किए गए उत्पादन कार्यों पर निर्भर होते हैं, तो मुद्रा संबंधी आय में परिवर्तन होने से माँग की नई दशाओं की दृष्टि से ऐसे कारक उत्पन्न हो जाएँगे जो बहुत अधिक उत्पादन शक्ति का प्रतिनिधित्व करेंगे। परंतु वस्तुतः ऐसी स्थिति नहीं होती। यदि अमीर लोग अपनी अधिकतर आय को अनुचरों-परिचारकों आदि की सेवाओं पर भी खर्च करते होंगे तो भी इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि ये अनुचर अपना अधिकांश समय एक दूसरे की देखभाल पर ही खर्च करते हैं। कोई भी व्यक्ति जो ऐसे घर में रहा हो जिसमें एक से अधिक नौकर होते हैं तुरंत इस युक्ति की सार्थकता को समझ जाएगा।

5. मूल्य को तरजीह क्रम की अभिव्यक्ति मानने से एक और निष्कर्ष निकलता है कि जिन वस्तुओं की कीमतों की तुलना की जा रही हो उनमें यदि विनिमय संभव न हो तो उनकी कीमतों की तुलना करने का कोई महत्व नहीं होता।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वस्तु की भूतकाल की विभिन्न अवधियों की कीमतों की तुलना करना एक ऐसा काम है जिससे अपने आप कोई ऐसा नतीजा नहीं निकाला जा सकता जिसका कोई और अर्थ निकलता हो। पाव रोटी की कीमत पिछले वर्ष 8 पैंस थी और इस वर्ष 6 पैंस है इसका कदाचित यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि पिछले वर्ष पाव रोटी की जितनी सापेक्षिक दुर्भलता थी उसकी अपेक्षा इस वर्ष पाव रोटी की सापेक्ष दुर्लभता कम हो गई है। यहाँ पर पिछले वर्ष ८ पैंस और इस वर्ष ६ पैंस की कीमतों की तुलना का कोई महत्व नहीं है बल्कि पिछले वर्ष अन्य वस्तुओं की कीमतों तथा 8 पैंस में और इस वर्ष अन्य वस्तुओं की कीमतों तथा 6 पैंस में तुलना करना अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि आचरण के लिए ये संबंध अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। केवल ऐसे संबंध ही यह प्रकट करते हैं कि मूल्यांकन की एकात्मक पद्धति है।

क्योंकि बेली की पुस्तक[18] में रिकार्डो और माल्थस के तर्कों को काटा गया था इसलिए सभी अंग्रेज अर्थशास्त्र-संस्थापकों ने मिलकर इसका विरोध किया और यह पुस्तक अधिक सम्मानित न हो सकी। उनके इस विरोध से अर्थशास्त्र की प्रगति को काफी क्षति हुई है। इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि हम बेली के मुख्य प्रस्तावों का ध्यान रखते तो हम सूचकांकों के सिद्धांतों के बारे में गलतियाँ न करते जो अब हटाई जा रही हैं।

एक समय यह समझा जाता था कि 'मुद्रा के मूल्य' में परिवर्तन होने पर व्यक्तिगत कीमतों में शोधन करके इन कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि अगर विचाराधीन वस्तु को छोड़कर प्रत्येक

18 इन सब बातों पर संस्थापक विचारकों के मतों का उल्लेख सेम्युल बेली की पुस्तक 'ऑन कम्पेयरिंग कमोडटीज़ एट् डिफरेंट पीरियड्स' में किया गया है (पूर्व उद्धृत, पृष्ठ 71-93) "बेली ने अपने मत का प्रतिपादन करते हुए यहाँ तक कह डाला है कि उन्होंने विभिन्न समयों के भावी मूल्य संबंधों की कोई चर्चा नहीं की है (देखिए आगे, पृष्ठ 55) इसके अतिरिक्त अन्य प्रत्येक पहलू में उनकी स्थिति बड़ी दृढ़ है। उनके निष्कर्ष सैद्धांतिक विश्लेषण की सब पुस्तकों में पाए जाने वाले निष्कर्षों से अधिक परिमार्जित हैं। यहाँ तक कि एक उदासीन व्यक्ति भी उनके इस उत्तम कौशल से आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रह सकता, जिस ढंग से कि उन्होंने रिकार्डो की पुस्तक 'प्रिंसिपल्ज़' के पहले तर्क की संदिग्धता को प्रकट किया है।

वस्तु का दूसरी वस्तुओं से पूर्ववत् संबंध रहे और केवल मुद्रा की पूर्ति और इस विशेष वस्तु की माँग या पूर्ति में ही परिवर्तन हों तो इस प्रकार के शोधन पर्याप्त होंगे। अर्थात् यदि मूल कीमतों के संबंध इस प्रकार हों :—

$$P_a = P_b = P_c = P_d = P_e \quad . \; . \; . \; . \; . \quad (1)$$

और अगले वर्ष उनका संबंध इस प्रकार हो :—

$$P_a = \tfrac{1}{2}P_b = \tfrac{1}{2}P_c = \tfrac{1}{2}P_d = \tfrac{1}{2}P_e \quad . \; . \; . \; . \; . \quad (2)$$

तो मामला सरल रहता है और तुलना करने का कुछ अर्थ हो सकता है। किंतु कुछ प्रतिकारी घटनाओं की शृंखला के बिना ऐसा संबंध होना संभव नहीं है। ऐसा केवल इस कारण नहीं होता कि माँग या दूसरी वस्तुओं के उत्पादन की परिस्थितियों में परिवर्तन हो सकता है। ऐसा इस कारण होता है क्योंकि कोई भी परिवर्तन, चाहे वह वास्तविक हो या मुद्रा संबंधी, एक वस्तु और प्रत्येक दूसरी वस्तु के बीच के संबंधों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन कर सकता है अर्थात् किसी प्रतिकारी घटना को छोड़कर अन्य अवस्था में किसी भी परिवर्तन से समीकरण (2) में बताए गए नए संबंध स्थापित नहीं होंगे अपितु समीकरण 3 में दिए गए नए संबंध स्थापित हो जाएँगे :—

$$P_a = \tfrac{1}{2}P_b = \tfrac{1}{4}P_c = \tfrac{3}{4}P_d = P_e \quad . \; . \; . \; . \quad (3)$$

यह बात बहुत देर से मान ली गई है कि वास्तविक परिवर्तनों की यही स्थिति होगी। यदि *a* की माँग बदलती है तो यह नितांत असंभव है कि *b*,*c*,*d* और *e* की माँग भी इस तरीके से बदलेगी कि *a* और *b* के सम्बन्धों जो परिवर्तन होगा वह उतना ही होगा जितना *b* और c के सम्बन्ध में और इस प्रकार अन्य वस्तुओं के संबंधों में होता है। तकनीकी परिवर्तनों के वाद *a* के उत्पादन से जो उत्पादन कारक मुक्त होंगे जरूरी नहीं कि वे *b*, *c*, *d* के बीच इस अनुपात में वितरित हों कि $P_b : P_E : P_c :: P_d$ का अनुपात जैसे का तैसे बना रहे। किंतु जैसा कि बहुत मामूली से तर्क[19] से दिखाया जा सकता है 'मुद्रा' संबंधी परिवर्तनों के साथ यह बात बिल्कुल सत्य बैठती है। हम मुद्रा संबंधी किसी ऐसे परिवर्तन की कल्पना नहीं कर सकते जो सापेक्षिक कीमतों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित न करता हो। किंतु अगर यह बात ठीक है तो फिर किसी अवधि में कीमतों संबंधी परिवर्तनों में सही शुद्धि की कल्पना बिल्कुल भ्रामक[20] दिखाई

19 देखिए विशेषतया हेक, 'प्राइसिज एंड प्रोडक्शन', अध्याय 3।

20 यदि दो से अधिक वस्तुएँ हों और एक वस्तु और शेष वस्तुओं के बीच के विनिमय अनुपात में एक समान परिवर्तन न हो तो इस स्थिति में मूल्य-परिवर्तन का सही अर्थ लगाने में जो कठिनाई होती है उसका अनुमान

देती है। इस प्रकार सेम्युअल बेली का यह निष्कर्ष मान्य रहता है "जब हम यह कहते हैं कि बहुत पहले इस वस्तु की यह कीमत थी तो हमारा यह तात्पर्य होता है कि यह किसी दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के साथ बदली जा सकती थी। किंतु दो विभिन्न समयों में एक ही वस्तु की कीमतों की तुलना करते समय हम उक्त शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते।[21]

इस प्रस्ताव का ठीक-ठीक तात्पर्य समझना आवश्यक है। इस प्रस्ताव में इस बात को अस्वीकार नहीं किया गया है कि दो समयों में कीमतों में संबंध संभव हो सकता है। यह स्पष्ट है कि किसी भी समय वर्तमान मूल्यों और कीमतों के संबंधों पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ता है कि भविष्य में क्या कीमतें होंगी।[22] वर्तमान वस्तुओं को भविष्य में प्राप्त होने वाली वस्तुओं से बदलना संभव है और हम एक अवधि में कीमतों का परिवर्तन की संतुलन-दिशा की कल्पना कर सकते हैं। यह बात सच है और महत्वपूर्ण भी है। यह ठीक है कि वर्तमान कीमतों और भविष्य की अनुमानित कीमतों में एक संबंध होता है और ऐसा संबंध होना भी चाहिए। परंतु वर्तमान कीमतों और भूतकाल की कीमतों में कोई आवश्यक संबंध या महत्वपूर्ण मूल्य संबंध नहीं होता। एक अवधि के बीच संतुलत संबंध होने की संकल्पना एक प्रकल्पित संबंध की द्योतक है। जहाँ तक इनके बारे में किए गए अनुमान सही होते हैं वहाँ तक ये संबंध पाए जाते हैं। एक अवधि में आधारभूत सामग्री में परिवर्तन होता रहता है और यद्यपि प्रत्येक क्षण संतुलन की स्थिति की ओर पहुँचने की प्रवृत्तियाँ होती हैं फिर भी

सदैव नहीं लगाया जाता। यह कठिनाई केवल मुद्रा के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों तक ही सीमित नहीं होती। कच्चे लोहे की क्रय-शक्ति में होने वाले परिवर्तनों की कल्पना करने की समस्या उतनी ही जटिल होती है जितनी कि मुद्रा की क्रय शक्ति के परिवर्तनों का अनुमान लगाने की समस्या। इन दोनों में जो अंतर है वह एक व्यावहारिक अंतर है। उत्पादन का निर्धारण सापेक्षिक मूल्यांकनों द्वारा होता है। इस कारण व्यावहारिक दृष्टि से कच्चे लोहे की क्रय शक्ति में होने वाले परिवर्तनों के बारे में चिंता करना आवश्यक हो जाता है, परंतु अनेक कारणों से जिनमें कुछ अच्छे भी हैं कुछ बुरे भी हैं, हमें मुद्रा संबंधी परिवर्तनों के प्रभावों की काफी चिंता करनी पड़ती है।

21 पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 72।

22 देखिए फेटर, इकोनॉमिक प्रिंसिपल्स, पृ० 101 *ff* और पृष्ठ 235-277 तथा हेक की पुस्तक *Das intertemporale Gleichgewichtsystem der Preise und die Bewegungen des "Geldwertes"* (*Weltwirtschaftliches Archiv*, जिल्द 28, पृष्ठ 33-76) भी देखिए।

जिस सन्तुलन की ओर प्रवृत्तियाँ होती हैं उसमें पल पल पर परिवर्तन होता रहता है। संतुलन की स्थिति पूर्ववत् नहीं बनी रहती। एक अवधि के दौरान कीमतों के परस्पर संबंध में एक मूलभूत असम्मति होती है। भविष्य—अर्थात् दृश्यमान भविष्य—वर्तमान कीमतों को प्रभावित करता है किंतु भूतकाल की कीमतों का उनसे कोई संबंध नहीं होता। भूतकाल के प्रभाव केवल आधार-सामग्री के अंग बन जाते हैं। जहाँ तक मूल्यांकन का संबंध है भूतकाल सदा के लिए विगत हो जाता है।

समुच्चयों पर विचार करते समय जो बात कही गई थी वह यहाँ पर भी कही जा सकती है। हमारा अभिप्राय इस बात को अस्वीकार करना नहीं है कि एक अवधि के दौरान कुछ कीमतों की तुलना करना व्यावहारिक रूप से उपयोगी और महत्वपूर्ण होता है। हम इस बात को भी अस्वीकार नहीं करते कि ठीक ढंग से तैयार किए गए सूचकांकों के माध्यम से कीमतों में संशोधन करना उपयोगी होता है। इस बात पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं की जा सकती है कि एक ओर तो व्यावहारिक अर्थशास्त्र के कुछ प्रश्नों के लिए और दूसरी ओर इतिहास की व्याख्या के लिए सूचकांकों का तकनीक व्यावहारिक रूप से बहुत उपयोगी होता है। कुछ कीमतों के समुच्चयों के महत्व के बारे में कुछ स्वैच्छिक मान्यताएँ बनाने के लिए छूट दे दी जाए तो इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि व्यावहारिक महत्व के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यहाँ हम केवल इस बात पर बल देना चाहते हैं कि युद्ध सिद्धांत की मूल संकल्पनाओं से ऐसे निष्कर्ष नहीं निकलते और उनमें कुछ न कुछ रूढ़तत्व अवश्य होता है जो या तो आधार सामग्री[23] की आनुभविक स्थिरता के बारे में की गई कुछ मान्यताओं पर निर्भर

23 देखिए वास्तविक आय और रहन सहन की लागत में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा। उन सबके बारे में देखिए हाबर्लर की पुस्तक *Der Sinn der Indexzahlen, passim* डॉ० हाबर्लर का निष्कर्ष निश्चयात्मक है। "Die Wissenschaft macht sich einer Grenzüberschreitung schuldig, sie fällt ein Werturteil wenn sie die Wirtschaftsubjekte belehären will welches von zwei Naturaleinkommen das 'grössere' Realeinkommen enthält. Darüber zu entscheiden, welches vorzuziehen ist, sind einzig und allein die Wirtschafter selbst berufen." (पृष्ठ 43)
(विज्ञान अपनी निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करने का दोषी है अर्थात् जब विज्ञान दूसरों को यह बताने लगता है कि दो वास्तविक आयों में से कौन सी बड़ी है तो यह मूल्य निर्णय करने लगता है। यह फैसला करना कि कौन सी वास्तविक आय को तरजीह दी जाने चाहिए, एक ऐसा काम है जिसका निर्णय केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो उस आय का भोग

करता है या कुछ विशेष कीमतों और विशेष व्यक्तियों को सापेक्षिक महत्व के बारे में किए जाने वाले मूल्य संबंधी स्वैच्छिक निर्णयों पर निर्भर करता है।

6. अर्थशास्त्र की विषयवस्तु के बारे में हमारी इस कल्पना का प्रभाव केवल आर्थिक सांख्यिकीय विभाग पर ही नहीं पड़ता। इससे सैद्धांतिक विश्लेषण के मुख्य भागों के विन्यास और उसकी व्याख्या में भी काफी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार की जाँच की उपयोगिता का यह एक बड़ा रुचिकर उदाहरण है। हम इस इरादे से चले थे कि अपने विषय के सामान्यीकरणों के अंतर्गत आने वाली विषय-वस्तु का ठीक-ठीक निरूपण कर सकें। किंतु यहाँ पर हमने एक ऐसा दृष्टिकोण बना लिया है जिसकी सहायता से हम केवल यही नहीं देख सकते कि इन सामान्य नियमों के लिए कौन-सी वस्तु आवश्यक है और कौन-सी आवश्यक नहीं है। बल्कि हम उनको फिर से इस तरीके से प्रतिपादित कर सकते हैं कि उनके आवश्यक स्वरूप को और अधिक बल मिल सके। अब हम यह देखेंगे कि यह बात कैसे संभव हो सकती है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन का परंपरागत ढंग कम से कम आंग्ल भाषी अर्थशास्त्रियों में, यही रहा है कि वे अर्थशास्त्र को धन के उत्पादन और वितरण को निर्धारित करने वाले कारणों की जाँच[24] बताते आए हैं।

अर्थशास्त्र को दो मुख्य भागों में बाँटा गया है (1) उत्पादन सिद्धांत और (2) वितरण का सिद्धांत। इन सिद्धांतों का काम 'कुल उत्पादन' की मात्रा को निर्धारित करने वाले कारणों तथा विभिन्न उत्पादन कारकों तथा व्यक्तियों के बीच इसके वितरण को अनुपात को निर्धारित करने वाले कारणों की व्याख्या करना रहा है। इन दो भागों के अंतर्गत आने वाली विषय वस्तुओं के बारे में बहुत थोड़ा अंतर रहा है। किंतु मूल्य सिद्धांत के बारे में सदैव कठिनाई रही है। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि कुछ समय पूर्व तक अर्थशास्त्र की विषयवस्तु के इसी भाग की मुख्य रूप से आलोचना हुई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए अब एक प्रथमदृष्ट्या प्रबल कारण मिल गया है। जैसा कि प्रोफेसर केनन ने बल देते हुए

करता हो अर्थात् इसका निर्णय केवल संबंधित व्यक्ति ही कर सकता है। जर्मन भाषा के *Naturaleinkommen* और *Realeinkommen* दो शब्दों के लिए अंग्रेजी में उपयुक्त शब्द नहीं है। जो वास्तविक आय शब्द का प्रयोग किया गया है वह जर्मन के *Naturaleinkommen* शब्द के लिए है। जर्मन *Realeinkommen* के लिए हम फेटर के मानसिक आय (Psychic income) शब्द का प्रयोग करें तो अच्छा रहेगा।

24 देखिए केनन, थीओरिज़ ऑफ प्रोडक्शन एंड डिस्ट्रीब्यूशन, अध्याय ii।

कहा है[25] कि आजकल हम सामाजिक नीति की दृष्टि से जिन प्रश्नों में दिलचस्पी लेते हैं या जिनमें कम से कम हमारी दिलचस्पी दिखाई देती है वे उत्पादन और वितरण संबंधी प्रश्न ही हैं। यदि कोई कर लगाया जा रहा हो या कोई आर्थिक सहायता दी जा रही हो तो हम ये प्रश्न पूछेंगे (चाहे हम इस बात को समझते हों या नहीं कि उनका क्या अर्थ है) कि इस कदम का उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इसका वितरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं है कि भूतकाल में अर्थशास्त्रियों ने इन दो प्रश्नों के उत्तरों के रूप में ही अपने सामान्यीकरणों का विन्यास किया है।[26]

फिर भी हमारे प्रतिपाद्य विषय के स्वरूप और इसमें परिकल्पित मात्राओं की सापेक्षता के बारे में जो कुछ पहले कहा जा चुका है यदि हम उसे ध्यान में रखें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगी कि इस दृष्टिकोण से अर्थशास्त्र के परंपरागत विभाजन में भयानक त्रुटियाँ हैं।

इस समय उन विभिन्न तकनीकी तत्वों के अनौचित्य को विस्तार से दिखाया जाना आवश्यक नहीं है जो इस सिद्धांत के अनुसार व्यवस्थित प्रणाली में अनिवार्य रूप से प्रवेश कर जाते हैं। प्रोफेसर शुम्पीटर के साथ हम सब तथाकथित उत्पादन सिद्धांत की अविश्वसनीय तुच्छता के बारे में बड़े लज्जित होते हैं जिसमें किसान की मिलकियत की विभिन्न किस्मों, कारखानों के संगठन, औद्योगिक मनोविज्ञान, तकनीकी शिक्षा आदि की उबा देने वाली चर्चा की गई है।

25 अर्थशास्त्र के आधारभूत प्रश्न ये हैं कि हम सब समग्र रूप से इतने समृद्ध क्यों हैं, और हम में से कुछ लोग औसत व्यक्ति की अपेक्षा समृद्ध और दूसरे औसत व्यक्ति से कम समृद्ध क्यों हैं :—(केनन, वेल्थ, तीसरा संस्करण, पृष्ठ v)

26 क्या उनको बताए हुए सामान्यीकरण इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते थे या नहीं, विशेषतया व्यक्तिगत वितरणसंबंधी प्रश्न का उत्तर दे सकते थे कि नहीं, यह दूसरी बात है (देखिए, केनन, इकोनॉमिक आउटलुक, पृष्ठ 215-253 और रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक थीओरि पृष्ठ 284-332) और देखिए डालट्न 'इनइक्वेलिटी ऑफ इनकम्ज़, पृष्ठ 33-158। बात यह है कि वे यह समझते थे कि उन्हें उनका उत्तर देना चाहिए। परंतु यदि उन्होंने उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तो इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि इसमें इन अर्थशास्त्रियों या उनके द्वारा बनाए गए सामान्यीकरणों का कोई दोष था। इस बात के समर्थन में कई प्रबल कारण बताए जा सकते हैं कि व्यक्तिशः आय आर्थिक कारणों के अतिरिक्त अन्य कारणों पर भी होती है।

ये बातें इस योजना के अनुसार सामान्य सिद्धांत के बारे में लिखे गए किसी भी बृहत् ग्रंथ में देखने को मिलेंगी।[27]

किंतु इस प्रक्रिया के बारे में एक अधिक आधारभूत आपत्ति है। इसके कारण विषय के प्रतिपादन में सूक्ष्मता नहीं आ पाई है। यदि वैज्ञानिक सामान्यीकरणों का सुतथ्य वर्णन नहीं हो सकता तो वे नियमों का दर्जा नहीं पा सकते। इसका यह अर्थ नहीं है कि, जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे, उन्हें परिमाणात्मक दृष्टि से बिलकुल ठीक होना चाहिए। महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने के लिए हमें माँग-नियम के साथ आँकड़े जोड़ने की आवश्यकता नहीं है किंतु हमें उसका उस प्रकार से अभिकथन करना आवश्यक होता है ताकि उससे उन औपचारिक संबंधों का वर्णन हो जिनकी ठीक प्रकार से कल्पना की जा सकती है।[28]

अब जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, कुल उत्पादन में परिवर्तन की संकल्पना के साथ कोई सुतथ्य बात नहीं होती। यदि हम चाहें तो हम कुछ सूचकांकों को रूढ़ अर्थ दे सकते हैं और कह सकते हैं कि उत्पादन में परिवर्तन का अर्थ इस सूचकांक में परिवर्तन का अर्थ इस सूचकांक में परिवर्तन होना है। कुछ प्रयोजनों के लिए यह लाभदायक हो सकता है। परंतु आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से इस प्रक्रिया का कोई औचित्य नहीं है। हमने आर्थिक वस्तु की जो कल्पना की है यह उसके अनुरूप नहीं है। इस अर्थ में कौन से कारण उत्पादन पर प्रभाव डालेंगे इस संबंध में जो भी अनुभवाश्रित सामान्यीकरण बनाए जाएँगे वे कभी भी ठीक अर्थों में नियम का दर्जा नहीं ग्रहण कर सकते क्योंकि किसी नियम में एक निश्चित अर्थ और संबंध का उल्लेख होना आवश्यक है। कुल उत्पादन में परिवर्तन की कल्पना कोई निश्चित संकल्पना नहीं है।

वास्तव में आज तक कोई भी ऐसा नियम नहीं बना है जिसे हम इस दृष्टि से नियम कह सकें।[29] जब कभी अर्थशास्त्रियों द्वारा बनाए गए सामान्यीकरण नियम का रूप धारण करते हैं तब उनका संबंध ऐसी अस्पष्ट कल्पनाओं जैसे

27 देखिए शुम्पीटर, *Das Wesen und der Hauptinhalt der theoretischen Nationalökonomie*, पृष्ठ 156।

28 देखिए एजवर्थ, मैथिमेटिकल फिजिक्स, पृष्ठ 1-6; काऊफमेन, *Was kann die mathematische Methode in der Nationaokonomie leisten ?* (*Zeitschrift fur Nationalökonomie*, जिल्द 2, पृष्ठ 754-779)

29 उत्पादन के नियम से मिलता-जुलता नियम यदि कहीं देखने में मिल सकता है तो वह प्रसिद्ध अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत है। यह एक सुतथ्य नियम अर्थात् अननुपाती प्रतिफल के नियम से शुरू होता है और इसमें

कुल उत्पादन आदि से नहीं होता बल्कि उनका संबंध पूर्णतया निश्चित संकल्पनाओं उदाहरणार्थ कीमत, पूर्ति, माँग आदि से होता है। इस माने में रिकार्डो की पद्धति सभी परवर्ती पद्धतियों के लिए आदर्श कही जा सकती है। इसमें मुख्य रूप से स्पष्ट मात्राओं और संबंधों के संतुलन की प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है। यह संयोग कम नहीं कि जहाँ कहीं इस की चर्चा का संबंध भिन्न प्रकार की आर्थिक वस्तुओं तथा आर्थिक वस्तुओं के विनिमय अनुपात से रहा है वहाँ पर अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों ने वैज्ञानिक नियमों का रूप धारण कर लिया है।[30]

इसी कारण से हाल के कुछ वर्षों में अर्थशास्त्रियों में विषय के रूढ़ विन्यास को अधिकाधिक छोड़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है। हम अब उत्पादन और वितरण के परिवर्तनों का निश्चय करने वाले कारणों की जाँच नहीं करते हैं। इनके स्थान पर अब हम कुछ निश्चित प्रारंभिक आधार-सामग्री के सहारे विभिन्न आर्थिक 'मात्राओं' के संतुलन की स्थितियों की जाँच करते हैं और इस

यह बताया गया है कि विशिष्ट कारकों को भिन्न-भिन्न अनुपातों में लगाने से उत्पादन में क्या परिवर्तन होता है। एक निश्चित भौतिक पर्यावरण में लगाए गए सभी मानवीय कारकों का परिवर्तन करने से उत्पादन में क्या परिवर्तन होता है यह बात भी उतने ही सुतथ्य रूप से दिखाई गई है। वस्तुतः इसमें औसत और समुच्चयों जैसी अनेक संकल्पनाओं का समावेश है जिनका रूढ़ात्मक मान्यताओं के बिना अर्थ लगाना असंभव है। अनुकूलतम सिद्धांत के बारे में देखिए मेरा निबंध 'श्राप्टीमम थीओरि ऑफ पापुलेशन' जो लंदन में 'एसेज़ इन इकोनॉमिक्स' में छपा है। इन निबंधों का संपादन डाल्टन और ग्रेरी ने किया है। इस निबंध में मैंने औसत निकालने की कठिनाइयों का उल्लेख किया है। परंतु उस समय में औसतों और सुतथ्य मात्राओं के कथनों में निहित सामान्य रीतिविधान संबंधी अंतर को पूर्णतया नहीं समझ सका था इसलिए मैंने इस पर पर्याप्त बल नहीं दिया है।

30 पिछली प्रक्रिया की श्रेष्टता पर अधिक बल न देना महत्वपूर्ण है। मुद्रा सिद्धांत में, जो अनेक दृष्टियों से आर्थिक सिद्धांत की सबसे अधिक विकसित शाखा है, निरंतर अनेक ऐसी कूट कल्पनाओं का प्रयोग किया गया है जिनको हमने अभी-अभी संदिग्ध बताया है जैसे, कीमतों के स्तर और क्रय-शक्ति, समता संबंधी परिवर्तन इत्यादि। किंतु इन्हीं स्थानों पर मुद्रा सिद्धांत की कठिनाइयाँ ठोस रूप से हमारे सामने आती हैं। मुद्रा सिद्धांत में हाल में किए गए सुधारों का उद्देश्य इन सब कल्पनाओं का निरसन करना रहा है।

आधार-सामग्री के परिवर्तनों के प्रभावों की जाँच करते हैं।[31] अब विश्लेषण के मुख्य भागों को उत्पादन सिद्धांत और वितरण सिद्धांत में बाँटने के बजाए संतुलन सिद्धांत, तुलनात्मक स्थैतिकी सिद्धांत और गत्यात्मक परिवर्तन सिद्धांत में बाँटा जाता है। अब आर्थिक तंत्र को कुछ वस्तुओं के उत्पादन में लगी हुई एक बहुत बड़ी मशीन नहीं माना जाता और फिर यह जानने का कम प्रयत्न नहीं किया जाता कि किन कारणों से यह उत्पादन बढ़ सकता है तथा इन वस्तुओं का किस अनुपात में वितरण होता है। अब हम इसे मनुष्यों और आर्थिक वस्तुओं के कुछ परस्पर आश्रित, किंतु संकल्पनात्मक दृष्टि से विशिष्ट संबंधों की एक शृंखला मानते हैं और तब हम यह पता लगाते हैं कि किन परिस्थितियों में यह संबंध स्थिर रहेंगे और विचाराधीन उद्देश्यों या साधनों में परिवर्तन होने के क्या परिणाम होते हैं तथा कालांतर में किन रूपों में ये परिवर्तन हो सकते हैं।[32]

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं यह प्रवृत्ति यद्यपि अपने पूर्ण रूप में बड़ी आधुनिक दिखाई देती है तथापि इसका मूल अर्थशास्त्र संबंधी बहुत पुराने वैज्ञानिक साहित्य में मिलता है। केने (Quesnay) का टेबली इकोनॉमिक (Tableau Economique) मुख्य रूप से उस विश्लेषण का प्रयोग करने के लिए लिखा गया था जिसे आजकल संतुलन विश्लेषण कहते हैं। यद्यपि एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक का अभिप्राय राष्ट्रों की समृद्धि के कारणों पर प्रकाश डालना था और जिसमें वास्तव में समृद्धि के सामान्य प्रश्न पर अनेक ऐसी बातें बताई गई हैं जो व्यावहारिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं तथापि सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से उनकी पुस्तक की मुख्य उपलब्धि यह दर्शाने में ही है कि सापेक्षिक कीमतों के तंत्र

31 विभिन्न प्रकार के संतुलनों की संकल्पना के बारे में देखिए नाइट, 'रिस्क, अनसर्टनटी एंड प्राफिट, पृष्ठ 143, टिप्पणी; विकसेल के 'लेकचर्स ऑन पोलीटिकल इकोनॉमी' भाग i और रॉबिन्स, 'आन ए सर्टेन एम्बिग्यूटी इन दि कंसेपशन आफ़ स्टेशनरी इक्वीलिब्रियम', (इकोनॉमिक जर्नल, भाग xi, पृष्ठ 194-214)

32 देखिए पेरेटो, *Manuel d'Economie Politique*, पृष्ठ 147। तथा 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ दि सोशल साइन्सिस' में उत्पादन पर मेरा लेख। इस निबंध के पहले संस्करण में मैंने तुलनात्मक स्थैतिकी और गत्यात्मक परिवर्तन के सिद्धांतों का एक ही शीर्षक 'परिवर्तन सिद्धांत' के अंतर्गत उल्लेख किया है। मेरा विचार है कि परिवर्तन सिद्धांत के इन दो प्रकारों का अलग-अलग वर्णन करना अच्छा है, और व्याख्या के लिए देखिए आगे चौथा अध्याय, अनुभाग 7।

द्वारा श्रम विभाजन को संतुलन की स्थिति में किस प्रकार रखा जाता था। एलिन यंग के शब्दों में[33] यह विवरण आधुनिक लासाने स्कूल के अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेपण से मेल खाता है। मूल्य सिद्धांत और वितरण सिद्धांत वस्तुतः संस्थापित अर्थशास्त्रियों के विश्लेषण के दो मुख्य विषय थे चाहे वे इनको कोई भी दूसरा नाम देकर छिपाने का कितना भी प्रयत्न क्यों न करते रहे हों। करों और अधिदानों के प्रभावों के बारे में परंपरागत सिद्धांत की व्याख्या सदा ऐसे शब्दों में की जाती रही है जो आधुनिक तुलनात्मक स्थैतिकी की प्रक्रिया से पूर्णतया मेल खाते हैं। इसलिए चाहे आधुनिक सिद्धांत देखने में नए मालूम होते हों वास्तव में उनकी मूलवस्तु वही है जो पुराने सिद्धांतों में महत्वपूर्ण थी। आधुनिक समय में किए गए विषय विन्यास से, पहले के सिद्धांतों का रीतिविधान आधार स्पष्ट हो जाता है तथा इससे प्रक्रिया का सामान्यीकरण हो जाता है।[34]

प्रथम दृष्टि में यह सोचा जा सकता है कि इन परिवर्तनों से विषय वस्तु के बहुत कम होने का भय हो सकता है। ये थीओरि के एक बहुत बड़े भाग को बाहर निकाल देती है जो सचमुच ही बड़ा ज्ञानवर्धक है। ऐसी धारणा केवल नई प्रक्रिया की संभावनाओं के ज्ञान के अभाव में ही बनाई जा सकती है। बेखटके यह कहा जा सकता है कि पुराने ढाँचे में आने वाली कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसे नई प्रणाली से अधिक संतोषजनक ढंग से नहीं दिखाया जा सकता है। दोनों में केवल इतना अंतर है कि नई प्रणाली में हमें हर कदम पर इस बात की जानकारी रहती है कि हमारे ज्ञान की क्या सीमाएँ हैं और इसका क्या लक्ष्यार्थ है। यदि हम शुद्ध विश्लेषण के क्षेत्र से जरा भी बाहर जाते हैं और

33 पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 540-542।

34 इस परिवर्तन का प्रारंभ आत्मनिष्ठ मूल्य सिद्धांत के प्रचलित होने पर हुआ है। जब तक मूल्य सिद्धांत की व्याख्या लागतों के अनुसार की जाती रही तब तक अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु को सामाजिक और सामूहिक माना जा सकता था और कीमतों के संबंधों को केवल बाज़ार की घटनाओं के रूप में लिया जा सकता था, किंतु जब से यह अनुभव किया जाने लगा है कि ये बाजार-घटनाएँ वस्तुतः व्यक्तिगत चुनाव की पारस्परिक क्रिया पर निर्भर हैं और इनका जिन सामाजिक घटनाओं के रूप में वर्णन किया जाता रहा है वे लागतें—अंततोगत्वा व्यक्तिगत चुनाव की ही प्रतिबिंब होती हैं अर्थात् वैकल्पिक चुनावों का मूल्यांकन होती हैं (वाइसर, डेवनपोर्ट)—तब से यह विधि कम सुविधाजनक मानी जाने लगी है। गणितज्ञ अर्थशास्त्रियों की पुस्तकें इस दृष्टि से निडर होकर केवल ऐसी प्रक्रिया की प्रस्थापना करती हैं जो वस्तुतः सारी आधुनिक थीओरि में सामान्य रूप से पाई जाती हैं।

व्यावहारिक अर्थशास्त्र की भी परंपरागत कल्पना को स्वीकार करते हैं तो हमें तुरंत पता लग जाता है कि हम कहाँ पर हैं। अपनी आधारभूत संकल्पनाओं के अभिप्रेत अर्थों के रूप में किसी ऐसी बात में बल देने का हमें खतरा नहीं होगा जो किसी परंपरागत माना जाने के कारण हमारी चर्चाओं में आ जाती है।

इस प्रक्रिया के लाभों के उदाहरण के रूप में हम उत्पादन के संगठन के बारे में किए गए आधुनिक विश्लेषण को ही ले सकते हैं। इस विषय का पुराना विश्लेषण बड़ा ही असंतोषजनक था। प्रायः इसके अंतर्गत सबसे पहले एडम स्मिथ की पुस्तक में से लिए गए श्रम विभाजन के कुछ लाभों के घिसे पिटे सामान्यीकरणों का उल्लेख उसके बाद बावेज की पुस्तक में से लिए गए कुछ दृष्टांत और उसके बाद औद्योगिक संगठन के प्रकारों और उद्यमकर्ता के बारे में विस्तृत विवरण और उसके बाद राष्ट्रीय विशेषताओं के बारे में पूर्णतया अवैज्ञानिक और अनावश्यक प्रश्नास्पद टिप्पणियों और अंत में उद्योगों के स्थानीकरण पर एक अध्याय। इस वर्णन की उबा देने वाली प्रकृति और उसकी सामान्यता पर बल देने की आवश्यकता नहीं है। किंतु इसकी स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने वाली त्रुटियों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस वर्णन से यह प्रकट होता है कि अर्थशास्त्री की दृष्टि से संगठन आंतरिक औद्योगिक (अथवा कृषि संबंधी) प्रबंध का विषय है—यदि यह एक फर्म के लिए आंतरिक विषय न हो तो भी कम से कम एक उद्योग के लिए तो यह अवश्य ही आंतरिक प्रबंध का विषय होता है—यद्यपि हो सकता है कि इस उद्योग की कभी भी संतोषजनक ढंग से सीमाएँ निर्धारित न की गई हों। साथ ही यह उत्पादक संगठन अर्थात् कीमतों और लागतों के संबंध के सभी नियंत्रक कारकों की पूर्णतया अवहेलना करने वाला वर्णन दिखाई देता है। इस संबंध का उल्लेख एक अलग भाग में किया जाता है जिसमें 'मूल्यों' की चर्चा की जाती है। इसका यह परिणाम होता है कि और जिसका अनुभव पुरानी पाठ्य पुस्तकों से पढ़े हुए विद्यार्थियों को पढ़ाने वाले प्रत्येक अध्यापक को होता है—ऐसे व्यक्ति को, जिसे मूल्य सिद्धांत और उसमें हुए अन्य सुधारों का विस्तृत ज्ञान हो और वह ब्याज दर और इसके संभव कारणों के बारे में बहुत विस्तार से चर्चा कर सकता हो, इस बात का बिल्कुल पता न हो कि उत्पादन के संगठन में कीमतों, लागतों और ब्याज की दरों का क्या महत्व होता है।

आधुनिक तरीके से अध्ययन में यह बात असंभव है। आधुनिक अध्ययन में उत्पादन की चर्चा, संतुलन सिद्धांत के अभिन्न अंग के रूप में होती है। इसमें यह बताया जाता है कि कीमतों और लागतों के माध्यम से उत्पादन कारकों को

विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिए किस प्रकार लगाया जाता है। इसमें यह भी बताया जाता है कि यदि कुछ आधार सामग्री दी हो तो ब्याज की दरों और कीमतों के अंतर, उत्पादन कारकों का वितरण, वर्तमान उत्पादन और भावी उत्पादन के बीच किस प्रकार करते हैं।[35]

श्रम विभाजन का सिद्धांत, जो अब तक एक अरुचिकर तकनीकी विषय बना हुआ था, कालांतर में गतिशील संतुलन सिद्धांत का अभिन्न अंग बन जाता है। अब आंतरिक संगठन और प्रशासन का प्रश्न भी सापेक्षिक कीमतों और लागतों के बाहरी ताने बाने से जुड़ जाता है, चूँकि व्यवहार में इसी प्रकार की क्रिया होती है इसलिए पहली दृष्टि में जो बातें शुद्ध सैद्धांतिक चर्चा की सुंदर बातें लगती थीं अब वे ही बातें हमें वास्तविकता के अत्यन्त निकट ले आती हैं।

35 इसकी सब उत्तम चर्चा विकसेल की पुस्तक 'लेक्चर्स ऑन पोलिटीकल इकोनॉमी" खंड i, पृष्ठ 100-206 पर और हेन्स मेयर की पुस्तक *Produktion* in the *Handworterbuch der Staatswissenschaften* में की गई है।

अध्याय 4

अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों का स्वरूप

1. अब तक हम अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु और इससे संबद्ध आधारभूत संकल्पनाओं पर पर्याप्त विचार कर चुके हैं। किंतु अभी तक हमने उन सामान्यीकरणों के स्वरूप पर विचार नहीं किया है जिनके द्वारा इन संकल्पनाओं का आपस में संबंध जुड़ता है। अभी तक हमने अर्थशास्त्र के नियमों के स्वरूप और उनकी व्युत्पत्ति पर भी विचार नहीं किया है। वर्तमान अध्याय का उद्देश्य इन बातों का अध्ययन करना है। जब यह अध्ययन पूरा हो जाएगा तब हम अपने दूसरे मुख्य काम को हाथ में ले सकेंगे अर्थात् इस सामान्यीकरण पद्धति की सीमाओं और महत्व की छानबीन कर सकेंगे।

2. इस निबंध का उद्देश्य उन निष्कर्षों तक पहुँचना है जो अर्थशास्त्र के उस निरीक्षण पर आधारित हैं जिस रूप में कि वह हमें वास्तव में दिखाई देता है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि अर्थशास्त्र का कैसे अध्ययन किया जाना चाहिए यद्यपि हमें इस विवादास्पद विषय का भी प्रासंगिक रूप से उल्लेख करने का अवसर मिलेगा[1] फिर भी इस विवाद को विद्वानों में समाप्त प्रायः ही मान लेना चाहिए। इसके स्थान पर हम यह अध्ययन करना चाहेंगे कि इससे पहले ही जो परिणाम निकल चुके हैं उनको क्या महत्व देना चाहिए। अतः अपने अध्ययन के आरंभ में आर्थिक सामान्यीकरणों के स्वरूप को अपने विषय की शुद्ध मूल संकल्पनाओं से व्युत्पन्न करने का प्रयत्न करने के स्थान पर यदि हम अब तक किए गए विश्लेषणों के नमूनों की जाँच करके, उसका पता लगाएँ तो अधिक सुविधाजनक होगा।[2]

आर्थिक विश्लेषण की सबसे अधिक आधारभूत प्रस्थापनाएँ सामान्य मूल्य सिद्धांत की प्रस्थापनाएँ हैं। चाहे अर्थशास्त्रियों का कोई भी संप्रदाय क्यों न हो, और चाहे विषय-विन्यास किसी भी प्रकार क्यों न किया गया हो प्रथम श्रेणी की दी हुई वस्तुओं के संबंधों को निर्धारित करने वाली और उनके स्वरूप

1 देखिए आगे, अनुभाग 4, और अध्याय v, अनुभाग 3।

2 मुख्य रूप से समान परिणाम पर पहुँचने वाली व्युत्पत्ति के और बाद के पृष्ठ, उदाहरण के लिए देखिए, स्ट्रीगल पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 121।

की व्याख्या करने वाली प्रस्थापनाएँ संपूर्ण पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। फिर भी यह कहना समयपूर्व होगा कि अर्थशास्त्र के इस भाग का सिद्धांत सर्वथा पूर्ण है। परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस भाग की मुख्य प्रस्थापनाओं पर पर्याप्त काम हो चुका है और हम इन्हें सुस्थापित मान सकते हैं। अतः अब हम यह देखना चाहेंगे कि इनकी मान्यता के क्या आधार हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिए अधिक समय बर्बाद करना अनावश्यक है कि इन कारणों का ऐतिहासिक आधार नहीं हो सकता। कालांतर में कुछ घटनाओं का बारंबार साथ-साथ घटित होना एक जटिल समस्या पैदा कर सकता है। केवल इनको देखकर यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि इनमें कोई कार्य-कारण संबंध होता है। यह दिखाया जा सकता है कि जब कभी मूल्य सिद्धांत के सरल उप-सिद्धांतों में गृहीत स्थितियाँ वास्तव में विद्यमान होती हैं। तब उनसे निर्गमित अथवा निकाले गए परिणाम प्रत्यक्ष रूप में भी देखने को मिलते हैं। इस प्रकार जब कभी अपेक्षतया निर्बाध मंडियों में कीमतें नियत कर दी जाती हैं तो या तो इनका कोई पालन नहीं करता या इनके कारण वितरण में अव्यवस्था फैल जाती है। इस अव्यवस्था की झाँकी हमें पिछले महायुद्ध के समय की अथवा फ्रांसीसी या रूसी क्रांति के समय की खाद्यान्न पाने के लिए लोगों की लंबी-लंबी कतारों में मिल सकती है।[3]

परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इन घटनाओं में घनिष्ठ कार्य-कारण संबंध होता है। भविष्य में ये संबंध कैसे रहेंगे इस बारे में भी निस्संकोच होकर कुछ नहीं कहा जा सकता। इन घनिष्ठ संबंधों को समझने के लिए किसी तर्कसम्मत आधार की अनुपस्थिति में यह भी नहीं माना जा सकता है कि इस इतिहास की पुनरावृत्ति अवश्य होगी क्योंकि अगर इतिहास द्वारा कोई बात सिद्ध होती है, और प्रारंभिक तर्कशास्त्र से भी उतनी ही सिद्ध होती है, तो वह यह है कि विश्लेषणात्मक निर्णय की सहायता के बिना ऐतिहासिक आगमन भविष्यवाणी का सबसे निकृष्ट आधार है।[4]

3 यदि इस पुस्तक के किसी पाठक को इन तथ्यों पर संदेह हो तो वह हाल में बर्तानिया सरकार द्वारा उठाए गए ऐसे कदमों के अनुभव के बारे में सर विलियम बेवरिज की मानक पुस्तक "ब्रिटिश फूड कंट्रोल" को देख सकता है।

4 यह एक आम धारणा है कि राजनीतिक विषयों में सबसे सुरक्षित तरीका बेकन की आगमन प्रणाली है, अर्थात् सामान्य तर्क के स्थान पर विशेष अनुभव ही सही मार्गदर्शक है किंतु एक न एक दिन इस धारणा के स्पष्ट रूप में उस युग के मनुष्य की तर्क शक्ति का निम्नतम चिह्न समझा

जैसे ही उकता देने वाली बातें करने वाला व्यक्ति क्लब में उठकर यह कहना शुरू करता है कि "इतिहास सिद्ध करता है" वैसे ही हम यह मान लेते हैं कि आगे वह किसी असंभव बात का उल्लेख करने वाला है। इतिहास के आधुनिक चिंतन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इस प्रकार के सब दावों को तिलांजलि दे दी गई है और इस कथन के द्वारा इतिहास और प्राकृतिक विज्ञानों के बीच में यह आधारभूत विभाजन कर दिया गया है कि इतिहास में अमूर्त बातों का सामान्यीकरण नहीं किया जाता।[5]

यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि हमारा विश्वास नियंत्रित प्रयोगों के परिणामों पर आधारित नहीं होना चाहिए। यह पूर्णतया सत्य है कि जिस-जिस विशेष मामले का हमने अभी उल्लेख किया था उसके वैसे ही परिणाम निकले थे जो नियंत्रित प्रयोग की सी दशाओं में सरकार द्वारा किए गए हस्त-क्षेपों से भी निकले थे। परंतु यह कल्पना करना बड़ा ग़लत होगा कि इन प्रयोगों के परिणामों में इतनी व्यापक प्रस्थापना को उचित ठहराया जा सकता है। फिर सामान्य मूल्य सिद्धांत की मुख्य प्रस्थापनाओं की तो बात बहुत दूर की है। निश्चय ही इस प्रकार के आधार पर बताए जाने वाले अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण बहुत ही कच्चे होंगे। फिर भी वास्तव में, इन प्रस्थापनाओं में हमारा उतना ही विश्वास होता है जितना कि नियंत्रित प्रयोगों के निष्कर्षों पर होता है।

फिर प्रश्न उठता है इन प्रस्थापनाओं में हमारा विश्वास किस बात पर आधारित होता है?

इस बात का अनुभव करने के लिए आधुनिक विश्लेषण के अधिक ज्ञान की अपेक्षा नहीं है। मूल्य सिद्धांत का आधार यह मान्यता है कि मनुष्य जिन विभिन्न वस्तुओं की इच्छा करता है उनका उसके लिए पृथक्-पृथक् महत्व होता है, इसलिए उनको एक निश्चित ढंग से क्रमबद्ध किया जा सकता है। इस धारणा को अनेक प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है तथा ये अभिव्यक्तियाँ

जाएगा जिसमें इसे मान्यता दी जाती है—जो कोई भी इस प्रकार के तर्क का आश्रय लेता है उसे किसी अपेक्षाकृत सरल भौतिक विज्ञान के प्रारंभिक तत्वों का अध्ययन करने के लिए भेजना चाहिए। ये तार्किक इस बात की अवहेलना कर जाते हैं कि ऐसे मामले में भी जो इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण प्रस्तुत करता है कारणों की बहुलता हो सकती है। (जॉन स्टुअर्ट मिल, लॉजिक, अध्याय x, पैरा 8)

5 देखिए रिकर्ट, पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 78-101, *Die Grenzen der naturwissenschaftlichen Begriffsbildung, passim* तथा देखिए मेक्स वेबर, पूर्व उद्धृत पुस्तक।

भिन्न-भिन्न अंशों तक ठीक होंगी, जैसे इसे मेंगर और प्रारंभिक ऑस्ट्रियन अर्थ-शास्त्रियों द्वारा बताई गई आवश्यकता पद्धति के सरल ढंग से लेकर विकस्टीड और शानफेल्ड के सापेक्षिक मूल्यों के अधिक परिष्कृत पैमाने तथा पेरेटो और हिक्स और एलन के अनिधमान वक्रों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। किंतु अंततोगत्वा इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हम यह फैसला कर सकते हैं कि भिन्न-भिन्न संभव अनुभवों का हमारे लिए बराबर, अधिक या कम महत्व है। इस साधारण से अनुभव की बात से हम विभिन्न वस्तुओं की स्थानापन्नता की कल्पना कर सकते हैं। एक वस्तु की तुलना में दूसरी वस्तु की माँग का अनुमान लगा सकते हैं। विभिन्न उपयोगों के लिए वस्तुओं के वितरण का संतुलन निकाल सकते हैं। विनिमय-संतुलन और कीमतों को निर्धारित कर सकते हैं। जैसे ही हम एक व्यक्ति के आचरण के वर्णन से आगे बढ़ कर मंडियों की चर्चा शुरू करते हैं हम स्वभावतया कुछ गौण मान्यताएँ करते हैं—जैसे मंडियों में दो व्यक्ति हैं या अधिक, पूर्ति किसी एक ही व्यक्ति के हाथ में है या अनेक विक्रेता हैं, मंडी के एक भाग के व्यक्ति यह जानते नहीं हैं कि उसके दूसरे भाग में क्या हो रहा है, मंडी में किसी प्रकार की खरीद या बिक्री पर कोई कानूनी प्रतिबिंब तो नहीं लगा हुआ है इत्यादि। हम यह भी मान लेते हैं कि संपत्ति का एक प्रारंभिक वितरण निश्चित है।[6]

किंतु इसके पीछे सदा यह मुख्य मान्यता निहित रहती है कि विभिन्न व्यक्ति वस्तुओं का भिन्न-भिन्न मूल्यांकन करते हैं और हम यह पहले ही देख चुके हैं कि इस प्रकार की स्थिति की मान्यता करना ठीक ही है क्योंकि ऐसी स्थिति के बिना आर्थिक क्रिया नहीं हो सकती। मनुष्य के आर्थिक आचरण के बारे में की गई संकल्पना का यह एक अनिवार्य भाग है।[7]

अभी तक बताई गई सभी प्रस्थापनाओं का संबंध दी हुई वस्तुओं के मूल्य सिद्धांत से रहा है। मूल्य और विनिमय सिद्धांत पर प्रारंभिक दशा में निरंतर होने वाले उत्पादन की स्थितियों पर विचार नहीं किया जाता। किंतु यदि यह मान्यता की जाती है कि उत्पादन होता है तब नए प्रकार की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं और तब हमें उनकी व्याख्या करने के लिए नए सिद्धांतों की आव-श्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए हमारे सामने यह समस्या पैदा होती है कि उत्पादित वस्तु और उत्पादन के कारकों के मूल्यों में परस्पर क्या संबंध है

6 इस सबके बारे में देखिए डॉ॰ स्ट्रीगल का विद्वतापूर्ण निरूपण, *Die okonomischen Kategorien und die Organisation der Wirtschaft*, पृष्ठ 85-121।

7 देखिए पहला अध्याय, अनुभाग 3।

अर्थात् तथा कथित आरोपण की समस्या पैदा हो जाती है। इस समस्या के लिए जो हल प्रस्तुत किए गए हैं उनके पीछे कौन से सिद्धांत हैं ?

जैसा कि भली-भाँति विदित है इस समस्या को स्पष्ट करने वाला मुख्य सिद्धांत ह्रासमान प्रतिफल-नियम है। यह मूल्य और विनिमय के सीमित सिद्धांत में मान्य किए गए आत्मनिष्ठ मूल्यांकनों के सिद्धांतों का अनुपूरक है। ह्रासमान प्रतिफल का नियम इस स्पष्ट तथ्य को प्रकट करने का एक तरीका है कि उत्पादन को भिन्न-भिन्न कारक एक दूसरे के अधूरे स्थानापन्न हैं। यदि आप भूमि की मात्रा बढ़ाए बिना श्रम की मात्रा बढ़ा देंगे तो उत्पादन बढ़ जाएगा किंतु उसमें अनुपाततः वृद्धि नहीं होगी। उत्पादन को दुगना करने के लिए यदि आप भूमि और श्रम को दुगना नहीं करते तो आपको इनमें से किसी कारक को दुगने से अधिक बढ़ाना पड़ेगा। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। यदि ऐसा न होता तो संसार में सारा अनाज एक ही एकड़ भूमि से पैदा कर लिया जाता। हमारी आधारभूत संकल्पनाओं से घनिष्ट रूप से संबंधित बातों से भी यही निष्कर्ष निकलता है। दुर्लभ कारकों के एक वर्ग में वह सभी कारक आ जाते हैं जो पूर्णतया एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं। अर्थात् कारकों की भिन्नता को मुख्यतया अपूर्ण स्थानापन्नता माना जाना चाहिए। ह्रासमान प्रतिफल का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि एक से अधिक वर्ग के दुर्लभ उत्पादन कारक हैं[8] इससे निकलने वाला यह अनुपूरक सिद्धांत कि कुछ हद तक प्रतिफल बढ़ सकता है, सीधे इस मान्यता पर ही आधारित है कि कारक सापेक्षतया अविभाज्य होते हैं। इन सिद्धांतों के आधार पर और अन्य गौण मान्यताओं की सहायता से, जिनका कि पहले उल्लेख किया जा चुका है (मंडियों के प्रकार और उत्पादन संबंधी कानूनी ढाँचा आदि), उत्पादन के संतुलन के सिद्धांत बनाए जा सकते हैं।[9]

अब हम अधिक गत्यात्मक बातों को लेंगे। लाभ सिद्धांत मुख्यतया यह

[8] देखिए रॉबिनसन, इकोनॉमिक्स ऑफ इम्परफक्ट कम्पीटीशन, पृष्ठ 330-31। मैंने स्वयं वस्तुओं को प्रस्तुत करने का यह तरीका कुछ वर्ष पहले प्रोफेसर माइसिस से चर्चा करते समय सीखा है। किंतु जहाँ तक मैं जानता हूँ इन बातों को सबसे पहले इतने युक्तियुक्त और स्पष्ट रूप से मुद्रित रूप में प्रस्तुत करने वाली लेखिका श्रीमती रॉबिनसन हैं। मेरा विचार है श्रीमती रॉबिनसन की इस पुस्तक से अनेक संशयालु व्यक्तियों को इन अत्यंन्त सरल आधार तत्वों से निकाले गए अमूर्त तर्कों की उपयोगिता और महत्व के बारे में काफी संतोष हो चुका होगा। वर्तमान पुस्तक का वर्ण्य विषय यही है।

[9] उदाहरण के लिए देखिए शनाइडर, *Theorie des Produktion, passim.*

विश्लेपण करता है कि दुर्लभ वस्तुओं और दुर्लभकारकों की भविष्य में उपलब्धि अनिश्चित होने का क्या प्रभाव पड़ता है। यहाँ लाभ शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ में किया गया है। आधुनिक थीओरि में इसका ऐसा ही प्रयोग किया गया है। हम ऐसे संसार में रहते हैं जिसमें न केवल वे वस्तुएँ ही दुर्लभ हैं जो हम चाहते हैं, बल्कि इस बात में भी संदेह रहता है कि वे कहीं हैं भी या नहीं। वे अनुमान का विपय होती हैं। भविष्य के लिए कोई योजना बनाते समय हमें केवल निश्चित वस्तुओं के बीच ही चुनाव नहीं करना होता बल्कि हमें अनुमानित संभावनाओं के क्षेत्र में से कुछ वस्तुओं को भी चुनना होता है। यह भी स्पष्ट है कि स्वयं यह क्षेत्र भी बदल सकता है। इससे न केवल विभिन्न प्रकार की अनिश्चितताओं के पारस्परिक सापेक्षिक मूल्यांकनों का प्रश्न उठ सकता है बल्कि इस प्रकार के तुलना किए जाने वाले विभिन्न क्षेत्रों की अनिश्चितताओं के सापेक्षिक मूल्यांकनों का भी प्रश्न उठ सकता है। आर्थिक गत्यात्मकता के सिद्धांत की अधिकांश जटिल प्रस्थापनाओं को ऐसी संकल्पनाओं से निकाला जा सकता है।[10]

हम इस चर्चा को और आगे बढ़ा सकते हैं। हम यह दिखा सकते हैं कि अप्रत्यक्ष विनिमय व्यवस्था के कारण मुद्रा का उपयोग कैसे किया जाने लगा और यह दिखा सकते हैं कि वैसी ही अनिश्चतताओं की उपस्थिति के कारण, जिनकी हमने अभी-अभी परीक्षा की है, मुद्रा की माँग क्यों होती है?[11]

हम पूँजी और व्याज के सिद्धांत की प्रस्थापनाओं का परीक्षण कर सकते हैं और उनका इस प्रकार की प्रारंभिक संकल्पनाओं से संबंध जोड़ सकते हैं जिनकी हम यहाँ पर चर्चा करते रहे हैं। किंतु अब इस चर्चा को और आगे बढ़ाना अनावश्यक है। हम पहले ही जो उदाहरण दे चुके हैं वे उस समस्या का हल सुझाने के लिए पर्याप्त हैं जिसकी हमको तलाश थी। अन्य वैज्ञानिक सिद्धांतों की भाँति सैद्धांतिक अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाएँ स्पष्ट रूप से शृंखलाबद्ध कुछ आधार तत्वों से निकाली जाती हैं। इन आधार तत्वों में से मुख्य आधार तत्व वे सब मान्यताएँ होती हैं जिनमें किसी न किसी रूप में अनुभवाश्रित सरल और अविवाद्य तथ्य अंतर्गत होते हैं। ऐसे तथ्यों का संबंध वस्तुओं की दुर्लभता

10 देखिए नाईट, 'रिस्क, अनसर्टेनटी एंड प्रोफिट'; हिक्स, 'दि थीओरि ऑफ प्रोफिट' (इकोनॉमिक, सं० 31, पृष्ठ 175-190)

11 देखिए माइसिस, दि थीओरि ऑफ मनी, पृष्ठ 147 और 200; लेविंगटन, "दि इंगलिश केपिटल मार्केट, पृष्ठ 29-35; हिक्स 'ए सजेशन फार सिम्पलीफाइंग दि थीओरि ऑफ मनी' (इकोनॉमिक, 1934 पृष्ठ 1-20)

से होता है, जो हमारे विज्ञान प्रतिपाद्य विषय हैं। यह संबंध ऐसा होता है जिसे हम वास्तविक संसार में यथार्थ रूप में देखते हैं। मूल्य सिद्धांत का प्रमुख आधारतत्व यह तथ्य है कि मनुष्य अपने अधिमानों को एक क्रम में रख सकता है और वस्तुतः वह ऐसा करता भी है। इसी प्रकार उत्पादन सिद्धांत का मुख्य आधार तत्व यह तथ्य है कि उत्पादन के एक से अधिक कारक हैं। गत्यात्मक सिद्धांत का मुख्य आधार तत्व यह तथ्य है कि हमें यह नहीं पता होता है कि भविष्य में कौन सी वस्तुएँ दुर्लभ हो जाएँगी। ये आधार तत्व ऐसे नहीं हैं कि वास्तव में इनका प्रतिरूप मिलने पर इनके बारे में कोई विस्तृत विवाद किया जा सके। केवल एक बार इनके स्वरूप को पूर्णतया समझ लेना आवश्यक है। इनकी प्रामाणिकता स्थापित करने के लिए हमें नियंत्रित प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। इनमें दैनिक अनुभव की इतनी झलक मिलती है कि केवल इनको व्यक्त करने मात्र से ये मान्य समझे जाते हैं। वास्तव में भय यह है कि वे इतने स्पष्ट प्रतीत होने लगते हैं कि उनकी और परीक्षा करने से कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। फिर भी वास्तविकता यह है कि उच्च-स्तरीय विश्लेषण के जटिल प्रमेय अंततोगत्वा इस प्रकार के आधारतत्वों पर ही निर्भर होते हैं और इनमें मानी गई परिस्थितियों की उपस्थिति से ही अर्थशास्त्र की व्यापक प्रस्थापनाओं की सामान्य प्रयोज्यता उत्पन्न की जाती है।

3. निस्संदेह यह बात बिल्कुल सच है, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, इन प्रस्थापनाओं के अधिक जटिल अनुपयोगों के विकास के लिए ढेर सारे गौण आधार तत्वों का उपयोग करना पड़ता है, जैसे मंडियों की स्थिति कैसी है, विनिमय में कितने पक्ष हैं, कानूनी परिस्थितियाँ कैसी हैं, खरीददारों और बेचने वालों की न्यूनतम संवेदन शक्ति कितनी है इत्यादि।[12]

इन मान्यताओं से निकाले गए परिणामों की सचाई, जैसा कि सदा होता है, इनकी तार्किक संगति पर निर्भर होती है। किसी विशेष स्थिति की व्याख्या में इनकी प्रयोज्यता इस बात पर निर्भर करती है कि क्या उस स्थिति में वे तत्व पाए जाते हैं जिनको गृहीत किया गया था। किसी दी हुई स्थिति में प्रतियोगिता या एकाधिकार का सिद्धांत लागू हो गया या नहीं, इस बात का पता जाँच करने पर ही चलेगा। जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के प्रमुख सिद्धांतों की प्रयोज्यता की परीक्षा की जाती है वैसे ही अर्थशास्त्र के सिद्धांतों को लागू करते समय हमें अपनी सामग्री की जाँच करने के बारे में सावधान रहना चाहिए। कहीं पर भी यह नहीं माना गया है कि प्रतियोगिता या एकाधिकार की स्थितियों के अनेक संभव रूपों में से

12 देखिए, आगे पृष्ठ 89।

एक न एक रूप अवश्य ही सदैव विद्यमान रहेगा। यद्यपि यह जानना आवश्यक है कि हमारी गौण मान्यताएँ, जो सिद्धांत के जटिल होने पर बढ़ती जाती हैं, कितनी हैं फिर भी यह जानकारी उतनी ही महत्वपूर्ण है कि वे मुख्य मान्यताएँ जिन पर वह सिद्धांत आधारित होता है, कितने व्यापक रूप से लागू होती हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं जब कभी और जहाँ कहीं आर्थिक घटना को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ विद्यमान होती हैं वहाँ प्रमुख मान्यताएँ लागू होती हैं।

यह तर्क दिया जा सकता है कि इस प्रकार के विचारों से हमें ऐसे दृष्टिकोण में निहित हेत्वाभास को पहचानने में सरलता होनी चाहिए जिसका यूरोप के अर्थशास्त्रियों द्वारा की गई चर्चाओं में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कई बार यह आग्रह भी किया गया है कि अर्थशास्त्र के सामान्य नियम मुख्यतया 'इतिहास सापेक्ष' हैं तथा उनकी प्रामाणिकता कुछ ऐतिहासिक परिस्थितियों पर निर्भर होती है और इनके बाहर उनके सामाजिक घटनाचक्र के विश्लेषण के लिए संगत नहीं होती। यह धारणा एक भयानक मिथ्याबोध है। यह धारणा केवल तभी सत्य प्रतीत हो सकती है जब हम अपनी पूर्ण शब्दावली को ऐसे तोड़-मोड़ कर प्रस्तुत करें कि वह पूरी तरह भ्रामक हो जाए। यह ठीक है कि अर्थशास्त्र की अपेक्षाकृत सामान्य प्रस्थापनाओं को अधिक उपयोगी ढंग से लागू करने के लिए उनका अनुपूरण ऐसे कुछ गौण आधारतत्वों से करना पड़ता है जो ऐसी सामग्री की परीक्षा करके निकाले जाते हैं जिसे तर्कसंगत रूप से इतिहास सापेक्ष सामग्री कह सकते हैं।

यह भी निश्चित है कि जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक बहुत बड़ी गलतियाँ होती रहेंगी। किंतु यह सत्य नहीं है कि अर्थशास्त्र की मुख्य मान्यताएँ उसी अर्थ में इतिहास सापेक्ष होती हैं। यह ठीक है कि वे अनुभव पर आधारित होती हैं और उनका यथार्थ से संबंध होता है। किंतु यह अनुभव इतना व्यापक और सामान्य है कि यह तर्क संगत रूप से कही जाने वाली इतिहास सापेक्ष मान्यताओं से बिलकुल अलग श्रेणी के अंतर्गत आता है। कोई भी व्यक्ति वास्तव में इन मान्यताओं की सर्वव्यापी प्रयोज्यता पर संदेह नहीं करेगा, जैसे सापेक्षिक मूल्यांकनों के क्रम उत्पादन-कारकों की भिन्नता या भविष्य के बारे में अनिश्चितता की भिन्न-भिन्न मात्राओं का होना इत्यादि, भले ही यह बात विवादास्पद हो कि इनके शुद्ध तर्क संगत स्वरूप का वर्णन करने का कौन सा सर्वोत्तम तरीका है? कोई भी व्यक्ति, जिसने ऐसी मान्यताओं से निकाले गए परिणामों की वास्तव में परीक्षा की हो, इस धरातल से विश्लेषण आरंभ करने की उपयोगिता पर संदेह नहीं कर सकता। केवल इसका अभिज्ञान न कर सकने

के कारण और गौण मान्यताओं में आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहने के कारण इस धारणा को बल मिला है कि अर्थशास्त्र के नियम समय और स्थान संबंधी कुछ परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं तथा वे विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक हैं, आदि आदि। यदि इन विचारों का केवल इतना ही अर्थ लिया जाए कि सामान्य विश्लेषण के प्रयोग में बहुत सी ऐसी गौण मान्यताओं का आश्रय लेना पड़ता है जो कम सामान्य प्रकार की होती हैं तथा विशेष स्थिति की व्याख्या के लिए सामान्य सिद्धांत को लागू करने से पूर्व हमें तथ्यों के बारे में पूर्णतया निश्चित होना पड़ता है तो यह जानकारी हमारे लिए बहुत ठीक रहेगी। जिस किसी भी अध्यापक ने अच्छे विद्यार्थियों को शुद्ध सिद्धांतों से अधिक उत्तेजित होते हुए देखा होगा, वह इस बात से सहमत होगा। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि अच्छे इतिहासकारों द्वारा की गई अर्थशास्त्र संस्थापकों की आलोचना को कभी-कभी इस हद तक न्याय-संगत कहा जा सकता है।

परंतु यदि इस प्रकार के विचारों का ऐसा अर्थ लिया जाए जैसा कि रीति विधान संबंधी महान वाद विवादों के इतिहास में लगाया गया था कि सामान्य विश्लेषण से निकलने वाले व्यापक निष्कर्ष उतने ही सीमित होते हैं जितने कि उनके विशेष प्रयोग—अर्थात् यह कहा जाए कि अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण महारानी विक्टोरिया के शासनकाल के प्रारंभ में इंगलैंड की स्थितियों पर लागू होने वाले नियम थे इत्यादि—तो यह बिलकुल भ्रामक होगा। कदाचित एक अर्थ में यह कहना सच होगा कि सभी वैज्ञानिक ज्ञान 'इतिहास सापेक्ष' होता है। संभवत: किसी और वातावरण में ये सब बातें असंगत हो जाएँगी। किंतु यदि ऐसी बात है तो हमें उस भाव को व्यक्त करने के लिए, जिसे सामान्यतया 'इतिहास-सापेक्ष' कहा जाता है कोई नया शब्द बनाना होगा। सामान्य अर्थशास्त्र की भी यही स्थिति है। यदि वह इतिहास-सापेक्ष है तब हमें उस अध्ययन के लिए जिसे हम 'इतिहास सापेक्ष' कहते हैं एक नया शब्द बनाना होगा।

यह कहने के वाद सीनियर और केरन्ज़ के समय से लेकर अर्थशास्त्र की तथाकथित परंपरागत संकल्पना में अंतर्निहित दृष्टिकोण अत्यधिक प्रत्यायक दिखाई देता है। यह अनुमान लगाना कठिन है कि इसके बारे में इतना शोर क्यों मचाया गया था और सारी स्थिति पर आपत्ति करने की किसी को क्यों आवश्यकता पड़ी ? और यदि हम इस वादविवाद के वास्तविक इतिहास को देखें तो यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाएगी कि यह आपत्ति मुख्यतया वैज्ञानिक और दार्शनिक कारणों पर आधारित नहीं थी। ऐसा दिखाई देता है कि कभी-कभी कोई संवेदनशील इतिहासकार किसी घटिया दर्जे के अर्थशास्त्री के निष्कर्षों से परेशान हो जाता होगा—अधिक संभव तो यह है कि वह किसी

व्यापारी अथवा राजनीतिज्ञ की बातों को सुनकर, जिन्होंने अपनी समझ के मुताबिक अर्थशास्त्री की बातों को दुहराया हो, परेशान हो गया हो, और कभी-कभी ऐसा भी हुआ हो कि कोई शुद्ध तर्कशास्त्री एक अर्थशास्त्री से इस कारण क्रुद्ध हो गया हो कि उसने दर्शनशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का असावधानी से ऐसे समय प्रयोग कर दिया हो जब वह ऐसे ज्ञान का प्रतिपादन कर रहा हो जिसे वह सत्य और महत्वपूर्ण समझता हो। किंतु अर्थशास्त्र की मुख्य आलोचना इन लोगों द्वारा नहीं की गई है। इनका स्वरूप राजनीतिक रहा है। यह आलोचना ऐसे स्वार्थी लोगों द्वारा की गई है जिन्हें कुछ न कुछ उल्लू सीधा करना होता था। ये लोग ऐसे मार्ग अपनाना चाहते थे जिन्हें अर्थशास्त्र के नियम अविवेकपूर्ण बताया करते थे। तब इतिहासवादी संप्रदाय[13] के बहुत से नेताओं की यही स्थिति थी। बिस्मार्क के काल में ये लोग अंतर्राष्ट्रीय उदारता की नीति के विरोधियों के अगुआ थे। आज भी उन निम्नतर संप्रदायों की यही स्थिति है जो वैसा ही रवैया अख्तियार कर रहे हैं। संस्थावाद और इतिहासवाद में केवल यही अंतर है कि इतिहासवाद अधिक दिलचस्प है।

4. यदि ऊपर दिया गया अर्थ ठीक है तो आर्थिक विश्लेषण, जैसा कि फेटर ने कहा है, विभिन्न कल्पित परिस्थितियों में चुनाव संबंधी आवश्यकता के प्रभावों की व्याख्या बन जाता है।[14]

शुद्ध यांत्रिकी में हम वस्तुओं के कुछ निश्चित गुणों के अस्तित्व के प्रभावों की खोज करते हैं। इसी प्रकार शुद्ध अर्थशास्त्र में हम वैकल्पिक प्रयोगों वाले दुर्लभ साधनों के प्रभावों की चर्चा करते हैं, जैसे कि हम देख चुके हैं सापेक्षिक मूल्यों की मान्यता पर ही बाद की सभी जटिलताएँ आधारित होती हैं।

कभी-कभी यह सोचा जाता है, बल्कि आजकल भी यह सोचा जाता है कि सापेक्षिक मूल्यों की यह कल्पना कुछ विशेष मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की प्रमाणिकता पर निर्भर होती है। अर्थशास्त्र का सीमांत प्रदेश उन लोगों के अध्ययन के लिए अच्छा क्षेत्र है जो सुतथ्य रूप से विचार करने का प्रयत्न नहीं कर सकते और इन संदिग्ध स्थलों में हाल के वर्षों में अर्थशास्त्र की तथाकथित मनोवैज्ञानिक मान्यताओं पर आक्रमण करने के लिए बहुत समय खर्च किया गया है। यह कहा जाता है कि मनोविज्ञान में बड़ी द्रुत प्रगति होती है। इसलिए यदि अर्थशास्त्र किन्हीं विशेष मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर निर्भर है तो इससे बड़ा कोई और काम नहीं हो सकता कि हर पाँचवें-छठे वर्ष यह वितंडावाद खड़ा

13 देखिए, माइसिस, *Kritik des Interventionismus*, पृष्ठ 55-90।

14 "इकोनॉमिक प्रिंसिपल्स", पृष्ठ तथा 12 से 21।

कर दिया जाए कि चूंकि अब मनोविज्ञान की धारणाएँ बदल गई हैं इसलिए अर्थशास्त्र को आमूल नए सिरे से लिखने की आवश्यकता आ पड़ी है। जैसी कि आशा की जा सकती है, इस अवसर की अवहेलना नहीं की गई है। व्यावसायिक अर्थशास्त्री जो नई सचाई की खोज के काम में बुरी तरह व्यस्त हैं प्राय: इन प्रश्नों के बारे में मौन रहते हैं। साधारण व्यक्ति इस बात के बड़े इच्छुक होते हैं कि उन्हें यह बात न माननी पड़े कि दुर्लभता के संसार में चुनाव करना आवश्यक होता है। अतएव विश्वास दिलाए जाने पर वे सरलता से इस बात पर विश्वास कर लेते हैं कि आर्थिक विषय, जो वास्तव में प्रचलित मनोविज्ञान की सचाई पर उतने ही कम निर्भर होते हैं जितने कि पहाड़े, अब भी अनिर्णीत प्रश्न हैं और उनके बारे में बुद्धिमान व्यक्ति को, जो यदि मनोवैज्ञानिक नहीं है तो कुछ भी नहीं है, अपना निर्णय निलंबित रखना चाहिए।

दुर्भाग्य से, भूतकाल में, अर्थशास्त्रियों द्वारा असावधानी में कही गई बातों के कारण, कई बार लोगों को ऐसी धारणा करने का बहाना मिल गया है। यह भली भाँति विदित है कि आधुनिक व्यक्तिनिष्ठ मूल्य-सिद्धांत की कुछ संस्थापनों ने वास्तव में यह दावा किया था कि उनकी प्रस्थापनाओं की पुष्टि मनोवैज्ञानिक सुखवाद के सिद्धांतों से होती है। यह बात आस्ट्रिया के अर्थशास्त्रियों पर लागू नहीं होती। आरंभ से ही मेंगर की सारणियाँ इस प्रकार से बनाई गई थीं कि उनका मनोवैज्ञानिक प्रश्न से कोई संबंध नहीं था,[15] बोहम बेवर्क ने मनोवैज्ञानिक सुखवाद से कोई नाता जोड़ने से स्पष्ट रूप में इनकार कर दिया था। वास्तव में उसने इस प्रकार की भ्रांति को दूर करने के लिए बड़ा परिश्रम भी किया था।[16] किंतु इस प्रकार का दावा करने वालों में वस्तुतः सक्षम अर्थशास्त्रियों की एक पूरी परंपरा है जिसके अंतर्गत गांसन और जीवंस और एजवर्थ जैसे विद्वान अर्थशास्त्री और इनके अनेक अंग्रेजी अनुयायी आते हैं। गांसन की पुस्तक 'Entwicklung der Gesetze des menschlichen Verkehrs, में निश्चय ही सुखवादी आधार तत्वों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार जीवंस की पुस्तक 'थीओरि ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' में तुष्टिगुण और विनिमय के सिद्धांत में सुख और दुख की चर्चा की गई है। एजवर्थ की पुस्तक "मैथीमेटिकल साइक्लिस" (गणितीय मनोविज्ञान) का आरंभ एक ऐसे अध्याय से किया गया है जिसमें मनुष्य को सुख का पुतला माना गया है।[17] यह भी बताने का प्रयत्न किया गया है कि ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण नियम, बेबरफे-

15 देखिए, मेंगर, *Grundsätze, Aufl*, पृष्ठ 77-152।

16 देखिए, *Positive Theorie des Kapitals*, 4• *Auflage*, पृष्ठ 232-246।

17 देखिए, मेथीमेटिकल साइकिक्स, पृष्ठ 15।

ख़नर नियम (Weber Fechner law) की एक विशेष दशा प्रकट करता है।[18]

परंतु अर्थशास्त्रियों के वास्तविक व्यवहार और उसमें निहित तर्क-प्रणाली और उनके द्वारा दिए गए कार्योत्तर स्पष्टीकरणों के भेद को समझना बड़ा महत्वपूर्ण है। अर्थशास्त्र के आलोचक यही भेद नहीं करते। वे कर्तव्या-तिरेक भाव से अर्थशास्त्र के बाहरी स्वरूप की परीक्षा करने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं किंतु वे आंतरिक ढाँचे की परीक्षा करने के मानसिक श्रम से जी चुराते हैं। वे जिस सिद्धांत की आलोचना करते हैं उसके आधुनिक विकास से परिचित होने का कष्ट नहीं करते। इसमें संदेह नहीं कि इससे उनको कुछ लाभ हो जाता है क्योंकि इस प्रकार के वाग्युद्धों में अनजाने की गई मिथ्या-धारणाओं के कारण वे प्रभावी ढंग से तर्क दे सकते हैं। कोई भी व्यक्ति जिसे आधुनिक मूल्य सिद्धांत का ज्ञान है, ईमानदारी से यह तर्क नहीं देता रहेगा कि इसका मनोवैज्ञानिक सुखवाद से कोई महत्वपूर्ण संबंध है या फख़ (Fach) साइकोलॉजी की किसी अन्य शाखा से कोई ऐसा संबंध है। यदि अर्थशास्त्र की आलोचना करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने ऐसा करने का कष्ट किया होता तो उन्हें बहुत जल्दी यह पता लग जाता कि जीवंस और उसके अनुयायियों की अलंकार-स्वरूप उल्लिखित सुखवादी उक्तियाँ एक ऐसी थीओरि के मुख्य ढाँचे की आनुषंगिक बातें थीं—जैसा कि विआना में इस संबंध में हुए समानांतर विकास से पता चलता है—जिसकी व्याख्या सुखवाद की शब्दावली का प्रयोग किए बिना भी की जा सकती है और उसकी प्रत्येक आलोचना से पूरी तरह रक्षा की जा सकती है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, मूल्यांकनों को मापने की धारणा में केवल यही मान्यता की गई है कि विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है और इन विभिन्न प्रयोगों का कार्यकलापों में विभिन्न महत्व होता है अर्थात् एक निश्चित परिस्थिति में एक प्रयोग को दूसरे की अपेक्षा और एक वस्तु को दूसरी वस्तु की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। मनुष्य इस अर्थ में विशेष वस्तु को क्यों महत्व देता है हम इस प्रश्न पर चर्चा नहीं करेंगे। यह प्रश्न मनोवैज्ञानिकों या शायद शरीर क्रिया वैज्ञानिकों के लिए भी विचारणीय हो सकता है। हमें अर्थशास्त्री के रूप में केवल इस स्पष्ट तथ्य को मानना पड़ता है कि विभिन्न प्रयोगों से अलग-अलग प्रोत्साहन मिलता

18 इस दृष्टिकोण के खंडन के लिए देखिए मेक्सवेबर, *Die Grenznutzenlehr nnd das psychophysische Grnndgesetz*(*Archiv für Sozialwissenschaft und Sozial politik*, xxix, 1909)।

है और इनको तीव्रता के अनुसार एक क्रम में रखा जा सकता है।[19] इस आधारभूत संकल्पना से व्युत्पन्न किए जा सकने वाले विभिन्न साध्य निश्चित रूप से ऐसे विभिन्न सामाजिक कार्यकलापों की व्याख्या कर सकते हैं जिनकी किसी अन्य तकनीक से व्याख्या नहीं की जा सकती। किंतु ऐसी व्याख्या के लिए वे किसी विशेष मनोविज्ञान को मान्यता नहीं देते बल्कि उन तथ्यों को अपने परिणामों की आधार सामग्री मान लेते हैं जिनका मनोविज्ञान के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार, जैसा कि बहुधा होता है, अर्थशास्त्र संस्थापकों ने सब देशों में लागू होने वाले एक ऐसे विषय का निर्माण किया जिसकी सर्वव्यापकता के बारे में उन्होंने स्वयं कभी दावा नहीं किया था।

परंतु प्रश्न पैदा होता है कि यह प्रक्रिया भी कहाँ तक प्रामाणिक हैं। जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उससे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यद्यपि यह सच नहीं है कि विश्लेषणात्मक अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाएँ किसी विशेष मनोविज्ञान पर आधारित हैं तथापि उनमें निस्संदिग्ध रूप से ऐसे तत्व निहित हैं जो मनोवैज्ञानिक या कदाचित् इनको मनस्तत्वीय कहना अधिक अच्छा होगा—प्रकार के हैं। वास्तव में व्यक्तिनिष्ठ या मनोवैज्ञानिक मूल्य-सिद्धांत के नामकरण में जिस नाम से कभी-कभी इनका वर्णन किया जाता है—यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है। और हम देख चुके हैं कि इस सिद्धांत का आधार शुद्ध मनस्तत्वीय तथ्य अर्थात् व्यक्ति का मूल्यांकन ही है। हाल के कुछ वर्षों में, अंशतः व्यवहारवाद के प्रभाव के फलस्वरूप और अंशतः विश्लेषणात्मक व्याख्या में यथासंभव अधिक गंभीरता लाने की इच्छा के परिणामस्वरूप यह कहा जाने लगा है कि अर्थशास्त्र में से व्यक्तिनिष्ठा का यह तत्व निकाल देना चाहिए। इसके लिए यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि किसी भी वैज्ञानिक पद्धति में उन सब तत्वों को छोड़ देना चाहिए जिनका प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन नहीं किया जा सकता। हम माँग के उसी रूप पर विचार कर सकते हैं जो हमें मंडी की दृश्यमान क्रिया प्रतिक्रिया में दिखाई देता है। हम इससे आगे नहीं जा सकते। मूल्यांकन व्यक्तिनिष्ठ प्रक्रिया है। हम इसे देख नहीं सकते। इसलिए वैज्ञानिक व्याख्या में इसका कोई स्थान नहीं है। हमारे साध्यों में उसी आधार-सामग्री को मानना चाहिए जिसका अवलोकन किया जा सके, उदाहरणार्थ, प्रोफेसर केसल[20] का यही विचार है और पेरेटो[21] की बाद की पुस्तकों में भी ऐसी प्रतिध्वनि

19 यह बात पहले ही अध्याय III के अनुभाग 4 में काफी बल देकर कही जा चुकी है कि इसमें यह नहीं माना गया है कि मूल्यांकनों को मापना संभव है।

20 "दि थीओरि ऑफ सोशल इकोनॉमी", प्रथम अंग्रेजी संस्करण, खंड i, पृष्ठ 50-51।

21 *Encyclopedie des Sciences.* पेरिस 1911 में *Economie mathematique* पर लेख देखिए।

मिलती है। यह रवैया प्रायः उन अर्थशास्त्रियों की कृतियों में देखने को मिलता है जो व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत प्रभावित हुए हैं या इस विचित्र विचारधारा के व्याख्याकारों के आक्रमण से बहुत डरते हैं।

पहले-पहल यह बड़ा न्यायोचित दिखाई देता है। यह तर्क बड़ा विमोहक है कि हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जो भौतिक विज्ञानों में नहीं होता है। किंतु यह संदिग्ध है कि क्या यह वास्तव में उचित है, क्योंकि हमारा कार्य मनुष्य के आचरण के कुछ पहलुओं की व्याख्या करना है, और यह नितांत संदेहास्पद है कि क्या मनस्तत्वीय शब्दावली के प्रयोग के बिना यह काम किया जा सकता है? यह बिल्कुल निश्चित है कि अधिकतम गंभीरता लाने की दृष्टि से चाहे यह अच्छा लगे या न लगे किंतु हम चुनाव, अनधिमान, अविमान जैसे आंतरिक अनुभव संबंधी अनेक शब्दों को भली-भाँति समझते हैं। उद्देश्य के उस भाव की व्याख्या, जो अर्थशास्त्र की संकल्पना के लिए महत्वपूर्ण होता है, केवल बाह्य व्यवहार की शब्दावली में नहीं की जा सकती। दुर्लभ साधनों और उद्देश्यों की अनेकता से उत्पन्न होने वाले संबंधों की व्याख्या करने में निश्चित ही समीकरण की आधी शब्दावली मनस्तत्वशास्त्र की होगी।

ऐसी बातें उस समय तक निर्णायक मानी जाएँगी जब तक कि इस निबंध में दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा को ठीक माना जाएगा। किंतु यह तर्क भी किया जा सकता है कि यह व्याख्या इस परिभाषा को अस्वीकार करने के लिए और इसके स्थान पर एक वस्तुनिष्ठ परिभाषा देने के लिए दी गई थी, जिसमें ऐसे प्रेक्षणीय तथ्यों जैसे बाजार कीमतों, विनिमय अनुपात आदि का ही उल्लेख हो। प्रोफेसर केसल की प्रक्रिया में वास्तव में यही सब कुछ निहित है जिसका उल्लेख प्रसिद्ध पुस्तक *'Ausschaltung der Wertlehre'* में किया गया है।

किंतु यदि हम अर्थशास्त्र का उद्देश्य केवल ऐसी प्रेक्षणीय बातों की व्याख्या तक ही सीमित मान लें, जैसे कि कीमतें, तो भी यह दिखाई देगा कि जब तक हम व्यक्तिनिष्ठ या मनोवैज्ञानिक तत्वों का आश्रय नहीं लेते तब तक हम उनकी व्याख्या नहीं कर सकते। विशेष रूप से कहे जाने पर यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि कीमतों को निर्धारित करने की सबसे प्रारंभिक प्रक्रिया अन्य बातों के साथ इस बात पर भी निर्भर है कि लोग इस विषय में क्या सोचते हैं कि भविष्य में क्या कीमतें होंगी। प्रोफेसर केसल के विचार में माँग की क्रिया पर आश्रित रहकर हम व्यक्तिनिष्ठ तत्वों से छुटकारा पा सकते हैं परंतु इसकी

कल्पना केवल इस रूप में नहीं की जानी चाहिये कि प्रचलित कीमतों से अथवा वर्तमान बाज़ार में प्रचलित हो सकने वाले मूल्यों से ही उनका संबंध होता है। इसका संबंध कीमतों की उन सारी श्रेणियों से होता है जो लोगों के विचार में भविष्य में हो सकती हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि लोग भविष्य में जिस बात की प्रत्याशा करते हैं उसका शुद्ध व्यवहारवादी पद्धति द्वारा प्रेक्षण नहीं किया जा सकता। फिर भी जैसा कि प्रोफेसर नाइट और दूसरे लोगों ने दिखाया है, यदि हम आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या को समझना चाहते हैं तो हमें इन सब प्रत्याशाओं को ध्यान में रखना पड़ेगा। प्रतियोगी कीमतों की संपूर्ण व्याख्या करने में यह बात बहुत आवश्यक है। इनके बिना तो एकाधिकारी कीमतों की सरसरी व्याख्या भी नहीं की जा सकती। यह बताना बहुत सरल है कि ऐसी प्रत्याशाएँ अधिमान[22] मापक्रम की सामान्य प्रणाली का अंश होती हैं। किंतु यदि हम यह मान लें कि इस प्रणाली में केवल प्रेक्षणीय आधार-सामग्री को ही ध्यान में रखा जाता है तो यह अपने आप को धोखा देना होगा। हम इस बात को कैसे देख सकते हैं कि कोई व्यक्ति भविष्य में होने वाली बातों के बारे में क्या सोच रहा है?

इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमें एक अर्थशास्त्री के रूप में काम करना है और यदि हमें ऐसे विषयों की विशुद्ध व्याख्या करनी है जो हमारी विषय-वस्तु की प्रत्येक परिभाषा के अनुसार उसके अंतर्गत आते हैं तो हमें मनोवैज्ञानिक सत्यों को सम्मिलित करना पड़ेगा। यदि हमें व्याख्या को पूर्ण बनाना है तो हम इनको नहीं छोड़ सकते। वस्तुत: ऐसा दिखाई देता है कि एक सामाजिक विज्ञान के सबसे अधिक विकसित भाग की इस मुख्य समस्या का अनुसंधान करते समय हमने सामाजिक और भौतिक विज्ञानों के बीच के एक अनिवार्य अंतर को खोज निकाला है। इस निबंध का उद्देश्य इन रीति विधान संबंधी गहन समस्याओं की खोज करना नहीं है। किंतु यह कहा जा सकता है कि यदि यह मामला इस प्रकार के मामलों का प्रतिनिधि है और कुछ लोग कीमतों के सिद्धांत की प्रक्रिया को भौतिक विज्ञानों की सीमा के निकटतम मानें—तब सामाजिक विज्ञानों की प्रक्रिया और भौतिक विज्ञानों की प्रक्रिया कभी भी पूर्णतया एक सी नहीं हो सकती। क्योंकि सामाजिक विज्ञान की प्रक्रिया का संबंध मनुष्य के आचरण से होता है और यह आचरण एक अर्थ में सोद्देश्य होता हैं। वस्तुत: केवल प्रेक्षणीय बाह्य आधार सामग्री के सहारे चुनाव की संकल्पना,

22 उदाहरण के लिए देखिए हिक्स, *Gleichgewicht und Konjunktur (Zeitschrift fur National ekonomie*, भाग iv., पृष्ठ 441-455।

साधनों और उद्देश्यों के संबंधों और अर्थशास्त्र की मुख्य संकल्पनाओं को समझना संभव नहीं है।

इस अर्थ में सोद्देश्य आचरण का अनिवार्य रूप से यह तात्पर्य नहीं होता कि इसमें अंततः अनियतत्ववाद अंतर्ग्रस्त होता है। किंतु कार्य-कारण की व्याख्या की शृंखला में कुछ ऐसी कड़ियाँ अवश्य होती हैं जो भौतिक न होकर मनस्तत्वीय होती हैं और इसलिए उनका व्यवहारवादी पद्धति द्वारा प्रेक्षण नहीं किया जा सकता। इस बात को स्वीकार करने का तनिक भी यह तात्पर्य नहीं है कि मेक्स वेबर द्वारा बताए गए अर्थों में हम "वस्तुनिष्ठा" को तिलांजलि दे रहे हैं। जब मेक्स बेवर ने अपना प्रसिद्ध निबंध लिखा तब निश्चय ही उसके मन में यही बात थी।[23] आचरण की वस्तुनिष्ठ अर्थात् मेक्स वेबर के शब्दों के अनुसार वर्टफरा ई (*wert frei*) व्याख्या में आधारभूत सामग्री जैसे कुछ व्यक्तिगत मूल्यांकन आदि पर ही विचार किया जाता है और यह केवल भौतिक नहीं होती। ये तथ्य स्वयं मूल्य निर्णयों के रूप में होते हैं। इस कारण यह आवश्यक नहीं होता कि हम उनका मूल्यांकन वैसे ही करें। ये निर्णय किसी प्रेक्षक के मूल्य-निर्णय नहीं होते। सामाजिक विज्ञानों के लिए यह बात महत्वपूर्ण नहीं होती कि क्या व्यक्तिगत मूल्यांकन दर्शनशास्त्र की दृष्टि से अंतिम रूप में सही हैं। उनके लिए केवल इतना जानना ही महत्वपूर्ण होता है कि क्या ऐसे निर्णय किए जाते हैं और क्या ये कार्य-कारण की व्याख्या की शृंखला में आवश्यक कड़ियों का काम करते हैं? यदि इस अनुभाग में दिए गए तर्क सही हैं तो इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देना होगा।

5. परंतु अब यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण सापेक्षिक मूल्यांकनों की आधारभूत मान्यता पर आधारित होने के अतिरिक्त और अधिक सामान्य मनोवैज्ञानिक मान्यताओं पर भी तो आधारित नहीं होते अर्थात् पूर्णतया तर्कनापरक आचरण की मान्यता पर भी तो निर्भर नहीं होते? क्या अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु का वर्णन इस प्रकार करना ठीक नहीं है कि इसमें वस्तुओं के युक्तिसंगत निबटारे का अध्ययन होता है।[24] इस अर्थ में क्या यह नहीं

[23] मेक्स वेबर, *Die Objectivität socialwissenschaftlichen und socialpolitischen Erkenntnis : Der Sinn der Wertfreiheit der soziologischen und ökonomischen Wissenschaft* in *Gesammelte Aufsatze zur Wissenschaftlehre.*

[24] "इकोनॉमिक्स इज ए सीरियस सब्जेक्ट" नामक दिलचस्प पेम्फलेट में श्रीमती राबिन्सन ने मुझ पर यह आरोप लगाया है कि मैंने इस परिसीमा का ध्यान नहीं रखा है। (उन्होंने सेंसिबल शब्द का प्रयोग किया है) किंतु मैं समझता हूँ कि उनके अभिप्राय को मैंने जिस रूप में समझा है उससे

कहा जा सकता कि अर्थशास्त्र ऐसी विवादास्पद मान्यताओं पर निर्भर है जो उन मान्यताओं से अधिक विवादास्पद होती हैं जिनकी हमने अभी तक परीक्षा की है। यह एक जटिल विषय है; इस पर केवल इसीलिए ध्यान देना आवश्यक नहीं है। इस पर इसलिए भी ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि यह अर्थशास्त्र की सामान्य पद्धतियों पर भी प्रकाश डालता है।

अब जहाँ तक युक्तिसंगत कार्य का अर्थ नैतिक दृष्टि से उचित कार्य होता है, और वस्तुतः दैनिक चर्चा में यह प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त भी किया जाता है, वहाँ पर तत्काल यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विश्लेषण में कोई ऐसी मान्यता नहीं की जाती। इस संबंध में बाद में अधिक चर्चा की जाएगी। जैसा कि हमने अभी-अभी देखा है आर्थिक विश्लेषण वेबर द्वारा बताए गए अर्थों में वस्तुनिष्ठ (*wertfrei*) होता है। इसमें जिन मूल्यों की चर्चा होती है वे व्यक्तियों द्वारा किए गए मूल्यांकन ही होते हैं। ये मूल्यांकन किसी और अर्थ में भी महत्वपूर्ण होते हैं कि नहीं यह प्रश्न आर्थिक विश्लेषण के विषय क्षेत्र में उत्पन्न नहीं होता। यदि युक्तिसंगत शब्द का यही अर्थ लगाया जाता हो तो यह कहा जा सकता है कि जिस संकल्पना को यह शब्द व्यक्त करता है उसका आर्थिक विश्लेषण में कोई स्थान नहीं है।

परंतु यदि युक्तिसंगत शब्द का प्रयोग केवल 'संगत' शब्द के अर्थ में किया जाता है तब यह कहना सत्य होगा कि इस प्रकार की मान्यता कुछ विश्लेषणों में ही की जाती है। इस प्रख्यात सामान्यीकरण में कि संतुलन की स्थिति में विभाज्य वस्तुओं का सापेक्षिक महत्व उनकी कीमतों के बराबर होता है यह मान्यता की गई है कि प्रत्येक अंतिम चुनाव प्रत्येक अन्य चुनाव से सुसंगत होता है अर्थात् यदि मैं 'ख' की अपेक्षा 'क' को तरजीह देता हूँ और 'ग' की अपेक्षा 'ख' को तरजीह देता हूँ तो मैं अवश्य ही 'ग' की अपेक्षा 'क' को तरजीह दूँगा। संक्षेप में हम यह मानते हैं कि पूर्ण संतुलन की स्थिति में और 'आंतरिक अंतरपणन कार्यों' से कोई लाभ नहीं हो सकता।

उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। वस्तुतः मैंने ऐसे प्रस्तावों के प्रति नकारात्मक रूप को विभिन्न शब्दों में परोक्ष रूप से व्यक्त किया है। मैंने इनकी इसलिए स्पष्ट व्याख्या नहीं की है क्योंकि मुझे भय था कि मुझ पर यह आरोप लगाया जाएगा कि मैंने गौण प्रश्नों पर अत्यधिक चर्चा की है। अब मैं देखता हूँ कि ऐसा करना गलत था। इसलिए अगले अनुभाग में इस प्रश्न पर अधिक स्पष्ट रूप से चर्चा प्रस्तुत की जा रही है। परंतु इस विषय को शुद्धतया व्यक्त करना बड़ा कठिन है और मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने एक सुनिश्चित विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

संतुलन की स्थितियों की चर्चा में युक्तिसंगति की संकल्पना का प्रयोग संगति के अर्थ में एक व्यापक अर्थ में भी देखा जा सकता है। ऊपर बताए गए अर्थ में वस्तुओं के चुनाव में पूर्णतया 'संगत' होना एक दृष्टि से अयुक्तिक भी माना जा सकता है क्योंकि इस प्रकार की सुतथ्य तुलना में जितना समय और ध्यान लगाना पड़ेगा उसका (संबंधित व्यक्ति की दृष्टि से) अन्य प्रकार से सदुपयोग किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में 'आंतरिक अंतरपणन' का भी विकल्प त्याग हो सकता है जो किसी सीमा के बाहर तुलना करने से प्राप्त होने वाले लाभ से अधिक होगा। सीमांत तुष्टिगुण के बारे में चिंता न करने की सीमांत तुष्टि एक ऐसा तथ्य है जिसका व्यक्तिनिष्ठ मूल्य सिद्धांत के विषय में लिखने वाले बूमबॉवेर्क से लेकर आज तक के मुख्य अर्थशास्त्रियों ने ध्यान रखा है। यह कोई आधुनिक खोज नहीं है। विशेष मूल्यांकनों में असंगति का कुछ निश्चित अंतर (अथवा अंतर-विन्यास) मानकर औपचारिक दृष्टि से भी इसका ध्यान रखा जा सकता है।

यह सत्य है कि इस प्रकार के अन्वय में पूर्ण युक्तिसंगति की मान्यता की गई है। किंतु यह सच नहीं है कि अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण केवल ऐसी स्थितियों की ही व्याख्या कर सकते हैं जिनमें कार्य पूर्णतया संगत होता है। उद्देश्यों की तुलना में साधन दुर्लभ हो सकते हैं। भले ही उद्देश्यों में असंगति हो। विनिमय, उत्पादन और उतार-चढ़ाव सदा ऐसे ही संसार में होते हैं जहाँ लोगों को अपने कार्यों के आशयों का पूरा ज्ञान नहीं होता। इस बात की इच्छा करने में कि उपभोक्ताओं की सारी माँगे पूरी हों और साथ ही इस बात की इच्छा करने में कि विदेशी वस्तुओं के आयात पर सीमा-शुल्क लगाकर या अन्य बाधाएँ उपस्थित करके रोक लग जाए बहुधा असंगति (अर्थात् इस अर्थ में अयुक्तिसंगति) होती है। फिर भी प्रायः ऐसा किया जाता है कौन यह कह सकता है कि अर्थशास्त्र इस प्रकार की परिणामी स्थितियों की व्याख्या नहीं कर सकता ?

निस्संदेह युक्ति संगति शब्द का एक ऐसा अर्थ होता है जिस अर्थ में इसका प्रयोग करने पर यह तर्क देना उचित दिखाई देता है कि मानवीय आचरण का आर्थिक पहलू तभी हो सकता है जब यह मान्यता की जाए कि उसमें कुछ युक्तिसंगति होती है। यहाँ युक्तिसंगति को सोद्देश्य का पर्यायवाची माना गया है। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं यह तर्क दिया जा सकता है कि जब तक मानवीय आचरण को सोद्देश्य नहीं माना जाता तब तक साधन साध्य संबंधों की संकल्पना का, जिसका अर्थशास्त्र में अध्ययन होता है, कोई महत्व नहीं रह जाता। अतः यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि कोई सोद्देश्य कार्य नहीं हों तो आर्थिक घटना

भी नहीं हो सकती।[25] किंतु इसका यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि सभी सोद्देश्य कार्य पूर्णतया संगत होते हैं। वस्तुतः यह जरूर कहा जा सकता है कि सोद्देश्य कार्य जितना ही अधिक आत्म-चेतना-पूर्ण होता जाता है उतना ही अधिक वह अनिवार्य रूप से संगत हो जाता है। परंतु कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि आरंभ से यह मानना आवश्यक है कि वह सदा संगत ही होता है अथवा आर्थिक सामान्यीकरण कदाचित आचरण के उस छोटे से अंश से ही संबंधित होते हैं जहाँ कोई असंगति नहीं रहती।

वास्तविकता यह है कि पूर्ण युक्तिसंगत की मान्यता, 'पूर्ण संगति' के अर्थ में ऐसी अनेक मनोवैज्ञानिक मान्यताओं में से एक मान्यता है जिसका प्रयोग आर्थिक-विश्लेषण की विभिन्न अवस्थाओं में स्थिति की वास्तविकता के सन्निकट लाने के लिए किया है। पूर्ण दूर दृष्टि जिसकी अभिधारणा करना कभी-कभी सुविधाजनक होता है एक ऐसी ही मान्यता है। इन मान्यताओं का उद्देश्य इस विश्वास की पुष्टि करना नहीं है कि वास्तविक संसार में वैसी ही स्थितियाँ होती हैं जैसी कि मान्यताओं से व्यक्त होती हैं। इनका उद्देश्य यह है कि हम इनकी सहायता से उन प्रवृत्तियों का पृथक रूप से अध्ययन कर सकें जो वास्तविक संसार में केवल अन्य प्रवृत्तियों के साथ मिलकर काम करती हैं और इसके बाद तुलना तथा भेद करके हम इस तरह प्राप्त ज्ञान का उपयोग और अधिक जटिल

25 मेरे विचार में प्रोफेसर माइज़िज ने इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है जब उन्होंने यह तर्क दिया है कि सभी प्रकार का आचरण (Hendeln) तर्कसंगत माना जाना चाहिए। ऐसे आचरण को निष्क्रिय प्रतिक्रिया नहीं मानना चाहिए (देखिए *Grundprobleme der Nationalokonomie*, पृष्ठ 22 और 34)। प्रोफेसर माइज़िज़ ने इस शब्द के प्रयोग पर बहुत बल दिया है। ऐसा उन्हें इसलिए करना पड़ा क्योंकि उनका आग्रह था कि सामाजिक विज्ञानों के प्रयोजन के लिए आचरण को नैतिक मानकों के अनुसार विभाजित नहीं किया जाता अर्थात् यह नहीं कहा जाता कि कुछ आचरण युक्तिसंगत होते हैं और कुछ अयुक्तिसंगत हैं। इन शब्दों का प्रयोग उनके आदर्शक अर्थ में किया गया है। जिन लोगों ने प्रोफेसर माइज़िज की आलोचना इस मान्यता पर की है कि उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग दूसरे अर्थों में किया है उन्होंने वास्तव में इस बात पर पूरा ध्यान नहीं दिया है कि उन्होंने (प्रोफेसर माइज़िज़) किस संदर्भ में इन पर बल दिया है। यह मानना निश्चय ही अकारण है कि (*Kritik des Interventionismus*) के लेखक को इस बात का ध्यान नहीं रहा कि अयुक्तिसंगत आचरण का अर्थ असंगत आचरण भी हो सकता है।

परिस्थितियों की व्याख्या के लिए करें। कम से कम इस दृष्टि से शुद्ध अर्थशास्त्र की प्रक्रिया उन सभी भौतिक विज्ञानों की प्रक्रिया से मिलती जुलती है और अब तथ्यों को इकट्ठा करने और उसके वर्गीकरण करने की स्थिति से आगे बढ़ चुके हैं।

6. इस प्रकार की चर्चा से हमें अक्सर दोहराए जाने वाले इस आरोप के निराकरण का अवसर भी मिलता है कि अर्थशास्त्र में ऐसे अर्थमानवों के संसार की कल्पना की गई है जो केवल धन कमाने और अपना उल्लू सीधा करने में संलग्न रहते हैं। यह बात किसी भी सक्षम अर्थशास्त्री को मूर्खतापूर्ण और बेहूदा दिखाई देगी किंतु फिर भी इस पर कुछ विचार कर लेना अच्छा होगा। यद्यपि यह बात गलत है फिर भी विशुद्ध विश्लेषण की एक ऐसी व्याख्यात्मक विधि है जिसकी यदि विस्तृत व्याख्या न की जाए तो इस प्रकार की छींटाकसी का अवसर आ सकता है।

अब तक जो कुछ कहा जा चुका है इससे पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह विश्वास कि अर्थशास्त्रियों द्वारा कल्पित संसार में केवल कुछ 'स्वार्थी' व्यक्ति या सुख की कामना करने वाले पुतले होते हैं पूर्णतया अनर्गल बात है। आर्थिक विश्लेषण की आधारभूत संकल्पना सापेक्ष मूल्यांकन की कल्पना है और जैसा कि हम देख चुके हैं जब हम यह मान्यता करते हैं कि विभिन्न वस्तुओं का विभिन्न सीमाओं पर अलग-अलग मूल्य होता है तब इस बात की व्याख्या करने को, कि विभिन्न मूल्यांकन क्यों किए जाते हैं, हम अपनी समस्या का अंग नहीं मानते। हम उनको आधार-सामग्री के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। जहाँ तक हमारा संबंध है, जिन व्यक्तियों का हम अध्ययन करते हैं, वे घोर स्वार्थी या परार्थवादी या वैरागी या कामुक या जिसकी अधिक संभावना है, उनमें ये सब गुण सम्मिलित रूप में पाए जा सकते हैं। सापेक्षिक मूल्यांकनों का मापदंड तो केवल वास्तविक मनुष्य के कुछ स्थायी लक्षणों को प्रकट करने का केवल सुविधाजनक औपचारिक ढंग है। इन मूल्यांकनों के प्राथमिक महत्व को न समझना पिछले साठ वर्षों के आर्थिक विज्ञान के महत्व को न समझने के तुल्य होगा।

विशेष सौदों का निर्धारण करने वाले मूल्य विभिन्न मात्रा में जटिल हो सकते हैं, जैसे जब मैं पाव रोटी खरीदने का फैसला करता हूँ तो हो सकता है मैं केवल पाव रोटी और ऐसी दूसरी वस्तुओं की ही तुलना करूँ जो मेरे विनिमय के दायरे में आती हैं और जिन पर मैंने रुपया खर्च किया हो। किंतु मैं अपने नानबाई की प्रसन्नता का भी ध्यान करके पाव रोटी खरीद सकता हूँ। हम दोनों के बीच ऐसा संबंध हो सकता है जिसके कारण मैं उसी से पाव रोटी खरीदना पसंद करता हूँ हालाँकि उसका कोई दूसरा प्रतियोगी उसको थोड़ी कम कीमत पर भी बेचने को तैयार हो सकता है। ठीक इसी तरह कहीं पर मज़दूरी करने

या अपनी संपत्ति को किराए पर उठाने के मामले में मैं केवल उन्हीं वस्तुओं में रुचि रखता हूँ जो मुझे विनिमय में मिल सकती हों अथवा मुझे एक प्रकार के श्रम करने की अपेक्षा दूसरे प्रकार के श्रम करने के लिए अनुभव प्राप्त करने में भी रुचि हो सकती है। मुझे अपनी संपत्ति को एक व्यवसाय में किराए पर चढ़ाने की अपेक्षा दूसरे व्यवसाय में किराए पर चढ़ाने में अधिक मान-अपमान या गौरव-लज्जा का अनुभव हो सकता है।

सापेक्षिक मूल्यों के माप श्रम की संकल्पना में इन सब बातों पर विचार किया जाता है और आर्थिक संतुलन का वर्णन करने वाले सामान्यीकरण ऐसे शब्दों में व्यक्त किए जाते हैं जो स्पष्ट रूप से इस बात को सामने लाते हैं। एडम-स्मिथ के जमाने से लेकर आज तक प्रथम वर्ष का प्रत्येक विद्यार्थी विशेष वर्गों में श्रम विभाजन या श्रम के संतुलन को ऐसी प्रवृत्ति मानता है जिसका उद्देश्य नकद लाभ को बढ़ाना नहीं होता बल्कि विभिन्न विकल्पों में होने वाले शुद्ध लाभ को अधिकतम बनाना होता है।[26] जैसा कि हम पहले देख चुके हैं इसका जोखिम सिद्धांत तथा पूँजी बाजार पर पड़ने वाला प्रभाव भी इस प्रकार की मान्यताओं पर निर्भर होता है। परंतु कभी-कभी विषय का प्रतिपादन करने के लिए इस सन्निकट स्थिति से आरंभ करना सुविधाजनक होता है कि मूल्यांकन बहुत सरल प्रकार है अर्थात् एक ओर तो वांछित अथवा प्रस्तुत वस्तु होती है और दूसरी ओर उसके बदले में दिया जाने वाला या प्राप्त होने वाला द्रव्य होता है। कुछ और जटिल प्रस्थापनाओं की व्याख्या के लिए, जैसे लागत सिद्धांत या सीमांत उत्पादकता का विश्लेषण करते समय, इस मान्यता से शब्दों की काफी बचत हो जाती है और एक उचित अवस्था पर पहुँचने पर इन मान्यताओं को हटाकर संपूर्णतया सामान्य रूप से विश्लेषण को व्यक्त करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती।

अर्थ-मानव (Homo œconomicus) के पीछे यह सब कल्पना निहित है अर्थात् यदा कदा यह मान्यता की जाती है कि कुछ विनिमय संबंधों में सब साधन एक तरफ होते हैं और उद्देश्य दूसरी तरफ होते हैं। उदाहरण के लिए

26 देखिए कैंटीलन, *'Essai sur la Nature du Commerce'* (हिग संस्करण), पृष्ठ 21, एडम स्मिथ, वेल्थ ऑफ़ नेशंस, बुक I, अध्याय 10, सीनियर, पोलिटीकल इकोनॉमी, पृष्ठ 200-216, मकुलांख, पोलिटीकल इकोनॉमी, पृष्ठ 364-378; जे० एस० मिल, "पोलिटीकल इकोनॉमी", पाँचवाँ संस्करण, खंड I, पृष्ठ 460-483; मार्शल, प्रिंसीपल्स, आठवाँ संस्करण, पृष्ठ 546-558—इसमें सभी प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्रियों के विचारों की बानगी मिल जाएगी। इन सिद्धांतों की नवीनतम चर्चा के लिए देखिए विकस्टीड की पुस्तक "कामनसेंस ऑफ़ पोलिटीकल इकोनॉमी" भाग I, यत्र तत्र।

यदि यह दिखाना हो कि एक सीमित बाज़ार में किन परिस्थितियों में किसी एक वस्तु की एक कीमत होगी तो पहले यह मान्यता करनी पड़ेगी कि मैं बाज़ार में उस विक्रेता से वस्तु खरीदता हूँ जो सबसे कम दाम पर वस्तु बेचता है। यह कल्पना बिलकुल नहीं की जाती कि मैं अहंभाव से कार्य करता हूँ। इसके विपरीत यह भली-भाँति विदित है कि इस उदाहरण में जिस अवैयक्तिक संबंध की अभिधारणा की गई है वह विशुद्धरूप में वहीं दिखाई देती हैं जहाँ न्यासी, जो अपने आपको अधिक जटिल संबंधों में डालने की स्थिति में नहीं होते, उन संपदाओं के संबंध में अच्छे से अच्छा सौदा करना चाहते हैं जिनका कि वे प्रशासन कर रहे होते हैं। परंतु व्यापारी कहीं अधिक जटिल व्यक्ति होता है। इस सबका अर्थ केवल यह है कि दुकानदारों से मेरा संबंध, मेरे उद्देश्यों के मूल्यांकन-क्रम के अंतर्गत नहीं आता। मेरे लिए (मैं अपनी ओर से काम कर रहा हूँ या अपने मित्र की ओर से कार्य कर रहा हूँ अथवा किसी नागरिक अथवा धर्मार्थ संस्था की ओर से काम कर रहा हूँ) वे केवल साधन ही माने जाएँगे। या फिर, यदि यह मान्यता की जाए कि मैं अपना श्रम महँगे बाज़ार में ही बेचता हूँ (ऐसी मान्यता वास्तव में इसलिए की जाती है कि भेद करके यह दिखाया जा सके कि संतुलन की स्थिति में सब प्रभावों का क्या परिणाम होता है) तब यह नहीं माना जाता कि रुपया और स्वार्थ ही मेरे चरम उद्देश्य हैं क्योंकि हो सकता है कि मैं किसी लोकोपकारी संस्था को सहायता देने के लिए काम कर रहा हूँ, जहाँ तक किसी विशेष सौदे का संबंध है इसमें केवल इतनी ही मान्यता की जाती है कि मेरा श्रम उद्देश्य-पूर्ति का एक साधन मात्र है। इसको अपने आप में उद्देश्य नहीं माना जा सकता।

यदि यह बात सर्वविदित हो और सब लोग यह अनुभव करने लगें कि अर्थ-मानव की मान्यता केवल व्याख्या करने की युक्ति है, तर्कों के विकास में एक अवस्था में सावधानी से स्थापित बातों को वास्तविकता के सन्निकट लाने के लिए सर्वप्रथम ऐसी मान्यता करनी पड़ती है किंतु प्रक्रिया को तर्कसंगत सिद्ध करने के लिए इसका प्रयोग तर्कों का पूर्ण विकास होने पर नहीं किया जाता और न ही तब इसकी कोई आवश्यकता होती है, तो कभी संभव नहीं हो सकता था कि इसके बारे में इतनी सर्वव्यापी आपत्ति उठाई जाती। किंतु अर्थमानव के बारे में सामान्यतया यह विचार किया जाता है कि उसका व्यापक महत्व है तथा उसकी मान्यता 'पूर्ति और माँग के सभी नियमों' में की जाती है, जिन्हें अब तुलनात्मक स्थैतिक सिद्धांत के नाम से पुकारा जाता है। इसकी व्याख्या प्रायः इस बात को संभव मानने की इच्छा के विरुद्ध होती है कि हम साधनों का उपयोग भी कर सकते हैं तथा उनको बचा भी सकते हैं और इसी कारण से अर्थमानव की कटु आलोचना होती है। यदि अर्थमानव ने कल्पना-जगत के द्वार बंद भी कर दिए हों तो भी

ऐसा दिखाई देता है कि थोड़े बहुत मनोविज्ञान की सहायता से—चाहे वह किसी भी प्रकार का हो—वे खुल सकते हैं। किंतु इतने स्पष्ट अनावरण से मानवीय प्रेरणा की वास्तविक अंतर्दृष्टि की क्या प्रतिष्ठा रहेगी तथा इसके लिए क्या सम्मान रहेगा ?

दुर्भाग्य से यह विश्वास एक गलत धारणा पर आधारित है। परिवर्तन सिद्धांत की प्रस्थापनाओं में यह मान्यता नहीं करनी पड़ती कि मनुष्य केवल रुपए-पैसे के हानि-लाभ के उद्देश्य से ही प्रेरित होते हैं। इसमें केवल यही मान्यता करनी पड़ती है कि दिए हुए विकल्पों के मूल्यांकन में धन का भी थोड़ा बहुत महत्व होता है। इससे केवल यह पता चलता है कि यदि संतुलन की स्थिति में धन संबंधी प्रेरणा में परिवर्तन होता है तो संतुलित मूल्यांकनों में परिवर्तन हो जाएगा। हो सकता है कि विचाराधीन स्थिति में धन का प्रमुख महत्व न हो परंतु जब तक इसका थोड़ा सा भी भाग होगा तब तक ये प्रस्थापनाएँ लागू होती रहेंगी।

एक सरल उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। मान लीजिए एक वस्तु निर्बाध प्रतियोगिता की स्थिति में. बनाई जाती है और उसके उत्पादन में थोड़ा-सा अधिमान दिया जाने लगता है तो उत्पादन के प्रसिद्ध नियमों के अनुसार इसके उत्पादन में वृद्धि होने की प्रवृत्ति होगी। वृद्धि कितनी होगी यह बात उस वस्तु की मूल्यसापेक्षता पर निर्भर होगी और यहाँ उसकी चर्चा आवश्यक नहीं है। हाँ, तो यह सामान्यीकरण किस बात पर निर्भर होता है ? क्या यह इस मान्यता पर निर्भर होता है कि उत्पादक केवल लाभ की प्रेरणा से काम करते हैं ? बिल्कुल नहीं। हम यह मान सकते हैं कि वे 'हानि और लाभ से संबंधित अन्य सभी बातों' को भी ध्यान में रखते हैं जो हमें केंटिलन और एडम स्मिथ ने बताई हैं। परंतु यदि हम यह मानते हैं कि अधिदान से पहले संतुलन की स्थिति थी तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि अधिदान से यह संतुलन अवश्य बिगड़ जाएगा। अधिदान का यह तात्पर्य है कि वे शर्तें कम हो गई हैं जिन पर इस विशेष उद्योग में वास्तविक आय प्राप्त हो सकती है। यह एक साधारण सी प्रस्थापना है कि यदि कीमतें कम हो जाएँगी तो माँग बढ़ने लगेगी।

इस निष्कर्ष में एक सुधार किया जा सकता है जिसको यहाँ पर स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। हो सकता है कि ऐसा परिवर्तन बहुत ही कम हो। इस दशा में प्राथमिक परिवर्तन नहीं होगा।[27] क्या यह बात हमारे सिद्धांत के

[27] प्राथमिक परिवर्तन से मेरा तात्पर्य प्रभावित होने वाले उत्पादन की दिशा के परिवर्तनों से है, और गौण परिवर्तन से मेरा तात्पर्य अन्य दिशाओं में होने वाले व्यय में विस्तार या संकोच है। जैसा आगे बताया गया है कुछ गौण परिवर्तन तो लगभग अनिवार्य रूप से होता है।

विरुद्ध है ? बिल्कुल नहीं। मूल्यांकनों के माप क्रम की कल्पना में यह मान्यता नहीं की जाती कि प्रभावी मूल्यांकन के क्षेत्र से संबंध रखने वाली वस्तुओं की प्रत्येक भौतिक इकाई का, कार्य के लिए, अनिवार्य रूप से महत्व होता है। विकल्पों के सोपानों की कल्पना में हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करते कि वही परिवर्तन प्रभावी हो सकता है जिसमें न्यूनतम संवेदन शक्ति होती है।[28] कीमतों में एक या दो पैसे के परिवर्तन से लोगों की आर्थिक आदतों में कोई अंतर नहीं पड़ता। किंतु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि 10-20 पैसों की घट-बढ़ का कोई प्रभाव नहीं होता और न ही इसका यह अभिप्राय है कि सीमित साधन होने पर, एक वस्तु पर न्यूनाधिक खर्च करने की आवश्यकता आ पड़ने पर व्यय के वितरण पर कोई अनिवार्य प्रभाव नहीं पड़ता चाहे सीधे प्रभावित होने वाली वस्तु की माँग की मात्रा में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

7. ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे आर्थिक विश्लेषण का स्वरूप स्पष्ट हो जाना चाहिए। इसमें कई आधार तत्वों की शृंखलाओं से परिणाम निकाले जाते हैं। मुख्य आधार तत्व अनुभव पर आधारित लगभग सार्वभौम तथ्य होते हैं जो ऐसे मानवीय कार्यकलापों में देखने को मिलते हैं जिनका कोई आर्थिक पहलू होता है। शेष आधारतत्व सीमित प्रकार के होते हैं जो उन परिस्थितियों अथवा उन विशेष प्रकार की परिस्थितियों के सामान्य स्वरूप पर आधारित होते हैं जिनकी व्याख्या के लिए सिद्धांतों की अपेक्षा की जाती है।

कभी कभी यह सोचा जाता है कि ऐसी संकल्पना अनिवार्यतः स्थैतिक होती हैं तथा संतुलन की अंतिम स्थिति के वर्णन से ही इसका संबंध होता है तथा इसके परिवर्तन हमारे विषय क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते। क्योंकि वास्तविक संसार में सदा संतुलन की स्थिति नहीं रहती है और इसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि व्याख्या करने के प्रयोजन से इस प्रकार के ज्ञान का अधिक महत्व नहीं होता। इस व्यापक धारणा की और अधिक परीक्षा करने की आवश्यकता है।

यह बात बिल्कुल सत्य है कि आर्थिक विश्लेषण की प्रारंभिक प्रस्थापनाएँ स्थैतिक संतुलन का वर्णन मात्र होती हैं। हम अपना अध्ययन, पूर्ण विश्रांति की स्थितियों से नहीं करेंगे जैसा कि स्थैतिकी में किया जाता है, और जिससे साम्यानुमान द्वारा, हमारे विषय की इस शाखा का नामकरण किया गया है। हम ऐसी स्थितियों से अपना अध्ययन आरंभ करेंगे जिनमें कार्यकलापों के विभिन्न 'प्रवाहों' में किसी प्रकार के परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं होती और यदि उनमें

[28] देखिए विकस्टीड, पूर्व उद्धृत, भाग II, अध्याय i और ii।

परिवर्तन होता भी है तो वह आवर्ती चक्र में होता है।[29] इस प्रकार हम एक साधारण बाजार की परिस्थितियों को ले सकते हैं जिसमें पूर्ति और माँग की आधारभूत परिस्थितियों में दिन प्रति-दिन परिवर्तन नहीं होता, इसके बाद हम यह पता लगा सकते हैं कि किन परिस्थितियों में इसमें खरीदी और बेची जाने वाली वस्तुओं की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होगा, यद्यपि विनिमय करने वाले दोनों पक्ष अपने सौदों में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र थे अथवा हम ऐसी स्थिति पर भी विचार कर सकते हैं जिसमें उत्पादन तो होता है किंतु जिसमें आधारभूत सामग्री—अर्थात् संबंधित व्यक्तियों के मूल्यांकन, उत्पादन की तकनीकी संभावनाएँ और कारकों की अंतिम पूर्ति आदि—अपरिवर्तित रहती है। इसके बाद हम यह पता लगा सकते हैं कि किन परिस्थितियों में उत्पादित वस्तुओं के प्रवाह की गति में परिवर्तन होने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती इत्यादि। इन संभावनाओं की सूची गिनाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अर्थशास्त्र की किसी भी बृहत् पाठ्य पुस्तक में, जैसे विकसेल के 'लेक्चर्स ऑन पोलिटिकल इकोनॉमी' या वेलरा की पुस्तक 'एलिमेंट्स' में विचाराधीन विषय से संबंधित उदाहरण मिल जाएँगे।

किंतु यह मान लेना गलत होगा कि हमारी जाँच केवल इन आवश्यक प्रारंभिक बातों तक ही सीमित है। एक बार जब हम नियत प्रवाहों की स्थिति की पूरी तरह जाँच कर लेते हैं और उनमें भेद करके यह समझ लेते हैं कि किन परिस्थितियों में प्रवाहों में परिवर्तन होने की प्रवृत्ति होती है तब हम अपनी खोज को आगे बढ़ा सकते हैं और इन परिवर्तनों पर विचार कर सकते हैं।

29 प्रोफ़ेसर साउटर ने अपनी पुस्तक "प्रोलेगेओमिना टू रेलेटिविटी इकोनॉमिक्स" पृष्ठ 11-13 में स्थैतिकी और गतिकी के परस्पर संबंधों के बारे में रोचक टिप्पणी की है। उससे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने यह मान लिया है कि जो लोग इस संकल्पना से कार्य करते हैं वे इस बात को भूल जाते हैं कि स्थैतिक सन्तुलन की दशा में भी कोई आवर्ती परिवर्तन संभव हो सकता है। मेरा विनम्र निवेदन है कि यह एक मिथ्या धारणा है। इस प्रकार के परिवर्तनों का निश्चित रूप से ध्यान रखा गया है। प्रोफ़ेसर शुम्पीटर ने अपनी पुस्तक "थीओरि आफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट" के पहले अध्याय में स्थैतिक समाज का जो वर्णन किया है उसमें उन्होंने कहीं पर यह मान्यता नहीं की कि अनाज की कटाई सारे वर्ष होती रहती है। प्रोफ़ेसर हेक ने भी अपने लेख *Intertemporale Gleichgewicht System, Weltwirtschaftliches Archiv*, जिल्द 28, में पृष्ठ 33-76 पर इस प्रकार के अंतरावधि संतुलन की इस संकल्पना की विशेष जटिलताओं की सूक्ष्म परीक्षा की है।

हम ऐसा दो प्रकार से कर सकते हैं। पहला तरीका यह है कि आधार सामग्री में कुछ भिन्नता मानकर हम संतुलन की परिस्थितियों की तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार हम यह मान्यता कर सकते हैं कि कोई कर लगाया गया है या तकनीकी विधि में कोई परिवर्तन हो गया है या लोगों की रुचि बदल गई है आदि। ऐसी स्थिति में हम यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न कर सकते हैं कि एक संतुलन स्थिति और दूसरी संतुलन स्थिति में कितना अंतर है। तथाकथित संस्थापित विश्लेषण में, जो संतुलन की अंतिम स्थिति का पूर्ण विवरण देने में असमर्थ है, इस प्रकार के अंतरों की विभिन्न प्रकार की उपयोगी तुलनाएँ देखने को मिलती हैं। हमारे सिद्धांतों के इस भाग को कई बार 'तुलनात्मक स्थैतिकी' कहा जाता है।[30]

परंतु हम इससे भी आगे जा सकते हैं। नियत परिवर्तनों की मान्यता के आधार पर हम न केवल संतुलन की दो अंतिम परिस्थितियों की तुलना कर सकते हैं बल्कि हम यह भी पता लगाने का प्रयत्न कर सकते हैं कि अगर विसंतुलन की स्थिति नियत हो तो उस समय अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों में वास्तव में किस-किस प्रकार के परिवर्तन होंगे। वस्तुतः मार्शल के 'अवधि' विश्लेषण का यही महत्व है। मुद्रा और बैंकिंग के सिद्धांत का अधिकांश महत्वपूर्ण भाग भी इसी श्रेणी में आता है। इस सबसे हम कहीं पर भी यह मान्यता नहीं करते कि अंतिम संतुलन आवश्यक है। हाँ, हम यह मान्यता करते हैं कि अर्थ व्यवस्था के विभिन्न भागों में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ काम करती हैं जो कुछ सीमित संदर्भों में संतुलन को पुनः स्थापित करने में लगी होती हैं। किंतु हम यह मान्यता नहीं करते कि इन प्रवृत्तियों के सम्मिलित प्रभाव से अवश्यमेव संतुलन स्थापित हो जाएगा। ऐसी आधार सामग्री की प्रारंभिक संस्थिति की कल्पना करना बड़ा सुगम है, जिसकी सकल प्रवृत्ति संतुलन स्थापित करने की ओर नहीं होती परंतु जिसमें संचयी घटबढ़ होने की प्रवृत्ति होती है।[31] इस सबमें, जैसा कि आर्थिक विश्लेषण की प्रक्रिया से परिचित किसी भी व्यक्ति को ज्ञात होगा, यह महत्वपूर्ण होता है कि स्थैतिक आधारों का हमें ज्ञान होना

30 मेरे विचार में इस पद का प्रयोग सबसे पहले डा० शाम्ज ने किया है। देखिए उनकी पुस्तक '*Komparative Statik (Zeitschrift für Nationalökonomie*' भाग II, पृष्ठ 27-61। किंतु जैसा कि ऊपर कहा गया है इस प्रक्रिया का उद्भव अर्थशास्त्र संस्थापकों के युग में ही हो गया था।

31 इस संबंध में डा० रोज़ंस्टाइन रोडन का 'दि रोल ऑफ टाइम इन इकोनॉमिक थीओरि' (इकोनॉमिका, न्यू सिरीज़, खंड i, पृष्ठ 77) नामक प्रसिद्ध लेख देखिए।

चाहिए।[32] हम सन्तुलन में होने वाले छोटे-छोटे अन्तरों की तुलना करके अथवा संतुलनकारी विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रभावों की तुलना करके परिवर्तन की जाँच करते हैं। इनके अतिरिक्त और कौन-सा तरीका अपनाया जा सकता है यह बताना कठिन है। किंतु यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि हम स्थैतिक समस्याओं का अध्ययन केवल स्थैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए नहीं करते परंतु इसलिए भी करते हैं कि हम उनका उपयोग परिवर्तन की व्याख्या के लिए कर सकें। स्थैतिक अर्थशास्त्र की कुछ प्रस्थापनाएँ ऐसी होती हैं जिनका अपने आपमें विशेष महत्व होता है। किंतु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उनका प्रमुख महत्व गत्यात्मक अर्थशास्त्र की घटनाओं की व्याख्या करने में ही निहित है। हम विराम के नियमों का अध्ययन इसीलिए करते हैं ताकि हम परिवर्तन (गति) के नियमों को समझ सकें।

32 मैंने मार्शल के प्रति इस संबंध में जो रवैया दिखाया है प्रोफेसर साउटर ने उसको बिल्कुल गलत समझा है। निश्चय ही मेरी व्याख्या की त्रुटियों के कारण ऐसा भ्रम हुआ है। एक स्थान पर मैंने यहाँ तक कह दिया था कि मैं स्थैतिक स्थिति को, सैद्धांतिक उपकरण के रूप में, स्थैतिकी विधि से श्रेष्ठ समझता हूँ (देखिए मेरा लेख 'ऑन सर्टेन एंबिग्यूटी इन दी कन्सेपशन ऑफ स्टेशनरी इक्विलिब्रियम', इकोनॉमिक जर्नल, खंड xi, पृष्ठ 194)। किंतु इस कथन से मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि मैं स्थैतिक संतुलन को स्वतः एक साध्य मानता हूँ और गत्यात्मक जाँच को, जिस अर्थ में इसकी चर्चा की गई है और जिसमें मार्शल को विशेष रूप से रुचि थी, मैं व्यर्थ समझता हूँ।

प्रोफ़ेसर साऊटर ने यहाँ मार्शल के पांडित्य के बारे में जो दावा किया है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। कई बातों में हम बड़ी कठिनाई से उस स्थिति तक पहुँचने का यत्न कर रहे हैं जिसे मार्शल 30 वर्ष पहले ही पार कर चुके थे। जैसा कि मैं पहले ही बल देकर कह चुका हूँ, मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूँ कि स्थैतिक जाँच का अस्तित्व कारण यह है कि उनसे गत्यात्मक परिवर्तनों का स्पष्टीकरण होता है। मेरे जिन वाक्यों पर प्रोफ़ेसर साऊटर ने घोर आपत्ति की थी उनका केवल इतना ही तात्पर्य था कि यदि हमें गत्यात्मक जाँच करनी है तो हम इस काम को उस स्थिति में अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे जब हमें स्थैतिक संतुलन की सभी विशेषताओं की पूरी जानकारी हो। केवल आंशिक संतुलन की स्थितियों की जाँच करने से प्राप्त जानकारी के सहारे गत्यात्मक जाँच इतनी अच्छी तरह नहीं हो सकती। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस ढंग से कथन करना गलत होगा मानो मार्शल पूर्ण अन्योन्याश्रिता की जटिलताओं से परिचित नहीं थे। यद्यपि मैं यह सोचता हूँ कि उन्होंने कहीं-कहीं पर ऐसी बातों की उपेक्षा कर दी है जिनका बाद की खोजों में पता चला है तथा मैं इस बात से सहमत होने को तैयार हूँ कि बहुत से परिवर्तनों का अध्ययन करने

परंतु अब यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या हम इससे भी आगे नहीं जा सकते ? क्या अब तक वर्णित गत्यात्मक कार्यकलाप, आधार सामग्री में हुए नियत परिवर्तनों के प्रभावों का अध्ययन करने से संबंधित होते हैं या वे नियत विसंतुलन के परिणामों के अध्ययन से संबंधित होते हैं ? क्या हम इन सब बातों से परे जाकर आधार सामग्री के परिवर्तनों की ही व्याख्या नहीं कर सकते ? इससे ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिनकी अलग से किसी दूसरे अध्याय में चर्चा करनी सुगम होगी।

के लिए हमें मार्शल की तरह अन्योन्याश्रिता की सभी प्रकार की दूरस्थ संभावनाओं से सारांश निकालना पड़ता है। परंतु साथ में मेरा यह भी निवेदन है कि यह तर्क भी युक्तिसंगत है कि सभी कठिनाइयों को स्पष्ट रूप से पहचान लेने और उनका भली भाँति निरूपण करने के पश्चात् ही ऐसा किया जा सकता है। सीधे गत्यात्मक समस्याओं पर पहुँचने, तथा पूर्ण स्थैतिक आधारों को केवल पाठक की सहज प्रवृत्ति पर छोड़ देने से ऐसा उतनी अच्छी तरह नहीं किया जा सकता। यदि मार्शल अपनी प्रक्रिया की सारी मान्यताओं को दृढ़ता से व्यक्त कर देते और उन्हें पाठकों पर पढ़ने वाला अनावश्यक बोझ न समझते तो अर्थशास्त्र की आज जो प्रगति हुई है उससे कहीं अधिक प्रगति हो जाती। उक्त कथन से निश्चय ही मेरा अभिप्राय मार्शल की प्रतिष्ठा को कम करना नहीं है। क्योंकि सब बुद्धिमान व्यक्तियों को उनके प्रति आदर का भाव होना चाहिए। हमें नए सिरे से बहुत कुछ सीखना पड़ा क्योंकि मार्शल ने अपनी प्रक्रिया की मान्यताओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया। निस्संदेह इस विषय पर भी लोगों का अलग-अलग मत हो सकता है। हमारी सहानुभूति इस इच्छा से आसानी से हो सकती है कि संसारी काम-काज में लगे ऐसे सक्षम व्यक्तियों को बात समझ में आ जाए जो सक्षम होते हुए भी, विशुद्ध विश्लेषण की विधि का सुतथ्य रूप से अनुसरण करने के संबंध में अधीर होते हैं। कम से कम अध्यापकों को तो मार्शल का बड़ा कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि उन्होंने एक ऐसा ग्रंथ लिखा है जो अर्थशास्त्र के प्रारंभिक विद्यार्थियों को सरल गणित से पूर्णतया प्रभावित होने से रोकता है। किंतु केन्ज़ के इस कथन से भी असहमत होना कठिन है जिसमें उन्होंने यह कहा है कि बड़े खेद की बात है कि मार्शल ने 'पेपर्स ऑन दि प्यूर थीओरि ऑफ़ इंटरनेशनल एंड डोमेस्टिक वेल्यूज' की तरह के और निबंध प्रकाशित नहीं किए। क्या प्रोफेसर साऊटर इससे वास्तव में असहमत होंगे ?

अध्याय 5

अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण और वास्तविकता

1. वैज्ञानिक सामान्यीकरणों की यह विशेषता होती है कि उनका संबंध वास्तविकता से होता है। वे चाहे सोपाधिक भाषा में व्यक्त किए गए हों अथवा निरुपाधिक भाषा में, उनमें और शुद्ध तर्कशास्त्र तथा गणित की प्रस्थापनाओं में इस बात से भेद किया जा सकता है कि किसी न किसी अर्थ में उनका संबंध ऐसी स्थिति से होता है जिसका अस्तित्व होता है अथवा जिसका अस्तित्व हो सकता है। वे शुद्धतया औपचारिक संबंधों के प्रति निर्देश नहीं करते। वे केवल औपचारिक संबंधों तक सीमित नहीं होते।

इस बारे में यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र की प्रस्थापनाएँ अन्य सभी विज्ञानों की प्रस्थापनाओं के समकक्ष होती हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं ये प्रस्थापनाएँ सरल मान्यताओं से निकाली जाती हैं जो सामान्य अनुभव के मामूली तथ्यों पर आधारित होती हैं। यदि ये आधार वाक्य वास्तविकता से संबंधित होते हैं तो इनसे निकाले गए परिणाम भी अवश्य वास्तविकता से संबंधित होंगे।

अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्थशास्त्र के आलोचकों द्वारा प्रायः व्यक्त किया जाने वाला यह मत मिथ्या धारणा पर आधारित है कि, अर्थशास्त्र औपचारिक अनुमान करने की पद्धति मात्र है और इसका वास्तविकता से कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता। हाँ, यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि जिन तथ्यों पर आर्थिक निगमन आधारित होते हैं उनके संबंध में हमारा ज्ञान कई महत्वपूर्ण बातों से ऐसे तथ्यों के हमारे ज्ञान से भिन्न होता है जिन पर प्राकृतिक विज्ञानों के निगमन आधारित होते हैं। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि इस कारण से अर्थशास्त्र की प्रणालियाँ प्राकृतिक विज्ञानों की प्रणालियों से भिन्न होती हैं, यद्यपि उसकी तार्किक संगति के परीक्षण भिन्न नहीं होते। किंतु इससे यह अर्थ बिल्कुल नहीं निकलता कि उसके सामान्यीकरण केवल औपचारिक स्वरूप के होते हैं और वे स्वेच्छतया निर्धारित परिभाषाओं पर आधारित विद्वानों द्वारा बनाए गए निगमन होते हैं। वास्तव में इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक वास्तविकता से संबंधित होने का प्रश्न है, प्राकृतिक विज्ञानों के सामान्यीकरणों की तुलना में अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों के बारे में शंका करने की कम गुंजाइश है। जैसा कि हम पहले देख चुके

हैं, अर्थशास्त्र में हमारे मूलभूत सामान्यीकरणों के अंतिम घटकों का ज्ञान उनके निकट आने पर होता है। प्राकृतिक विज्ञानों में केवल अनुमान द्वारा ही इनका ज्ञान होता है। वैयक्तिक अधिमान की वास्तविकता में उतना संदेह नहीं किया जा सकता जितना कि इलेक्ट्रॉन की मान्यता की वास्तविकता पर संदेह हो सकता है।[1] यह सच है कि हम परिभाषाओं से बहुत से निष्कर्ष निकालते हैं। किंतु यह सत्य नहीं कि ये परिभाषाएँ बिल्कुल मनगढ़ंत होती हैं।

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि अर्थशास्त्री को, चाहे वह कितना ही विशुद्ध अर्थशास्त्री क्यों न हो, केवल शुद्ध निगमनों से संबंधित व्यक्ति मानना भारी भूल है। यह सत्य है कि उसका अधिकांश काम इस प्रकार का होता है कि उसमें विस्तृत अनुमान लगाने पड़ते हैं, किंतु यह मानना बिल्कुल गलत होगा कि उसका काम यही होता है या मुख्यतया यही होता है। अर्थशास्त्री का मुख्य काम वास्तविकता की व्याख्या करना ही होता है। खोज का काम केवल दिए हुए आधार वाक्यों की व्याख्या करना मात्र नहीं होता, बल्कि उन तथ्यों का पता लगाना भी होता है जो उन आधार वाक्यों का आधार होते हैं। सामान्य अनुभव के ऐसे तत्वों का पता लगाने की प्रक्रिया, जो हमारे निगमनिक तर्कप्रवाह के लिए आधार सामग्री प्रदान करते हैं, उसी तरह अर्थशास्त्रीय खोज कहलाएगी जिस प्रकार पुराने आधार वाक्यों से नये अनुमान लगाने की प्रक्रिया अर्थशास्त्रीय खोज कहलाती है। जिस रूप में हम मुख्य सिद्धांत को जानते हैं, उस रूप में उसका विकास, हाल ही में, सरल आधार वाक्यों से निकाले गये निगमनों के उत्तरोत्तर विस्तार से हुआ है, परंतु वह महान खोज, जिसे मेंगर की क्रांति भी कहा जाता है और जिससे इस प्रगति काल का सूत्रपात हुआ था, इन आधार-वाक्यों की खोज ही थी। जिस अन्य आधारभूत सामग्री की हम चर्चा कर चुके हैं, उसकी भी यही स्थिति है। आर्थिक विश्लेषण की आधार सामग्री का प्रत्यक्ष ज्ञान और चुनाव करना उसी प्रकार अर्थशास्त्र का विषय है जैसे कि आर्थिक विश्लेषण। वस्तुतः इनके कारण ही आर्थिक विश्लेषण को महत्व प्राप्त होता है।

2. साथ ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जो साध्य अब तक स्थापित किए जा चुके हैं वे बहुत ही सामान्य प्रकार के हैं। यदि कोई वस्तु दुर्लभ है तो हम यह जानते हैं कि इसका निबटारा कुछ नियमों के अनुसार ही होगा। यदि उसकी

[1] इस संबंध में संस्थापित चर्चा के लिए देखिए केरन्ज की पुस्तक "केरेक्टर एंड लॉजिकल मेथड ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी" दूसरा संस्करण, पृष्ठ 81-99 तथा हेक की पुस्तक "कलेक्टिविस्ट इकोनोमिक प्लेनिंग", पृष्ठ 8-13।

माँग-सूची एक निश्चित प्रकार की है तो हम यह जानते हैं कि पूर्ति में परिवर्तन होने से उसकी कीमतों में एक विशेष प्रकार का अंतर पड़ेगा। किंतु जैसा कि हम पहले[2] ही देख चुके हैं दुर्लभता की संकल्पना में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे हम यह संबंध किसी विशेष वस्तु से ही जोड़ें। हमारे निगमनों में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण यह कहना तर्कसंगत हो कि मछली का अचार एक आर्थिक वस्तु है और सड़ा हुआ मांस एक तुष्टिहीन वस्तु है। वे हमें मछली के अचार की माँग की तीव्रता तथा सड़े मांस की माँग की तीव्रता न होने के बारे में बिल्कुल नहीं बताते। शुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से ये वस्तुएँ एक ओर तो व्यक्तिगत मूल्यांकनों द्वारा प्रभावित होती हैं और दूसरी ओर दी हुई परिस्थिति के तकनीकी तथ्यों द्वारा प्रभावित होती हैं। व्यक्तिगत मूल्य और तकनीकी तथ्य ये दोनों ही बातें आर्थिक एकरूपता के क्षेत्र के बाहर की वस्तुएँ हैं। आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से इन बातों को स्ट्रीगल के शब्दों में आर्थिक चर्चा के संसार का अविवेकी तत्व कहा जा सकता है।[3]

किंतु क्या इन सीमाओं से परे जाना वांछनीय नहीं होगा? क्या हमें यह इच्छा नहीं करनी चाहिए कि हम इस स्थिति में होते कि हम मूल्यांकनों के मापों को संख्यात्मक मूल्य दे सकते और माँग और पूर्ति के मात्रात्मक नियम स्थापित कर सकते। इससे किंचित भिन्न रूप में कुछ ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं जिनका उत्तर हमने पिछले अध्याय के अंत में नहीं दिया था।

निस्संदेह ऐसी जानकारी हमारे लिए लाभदायक होगी। किंतु क्षण भर सोचने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि हम यहाँ पर एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं जिसमें यह मानने का कोई कारण नहीं कि वहाँ हमें एकरूपताओं का पता चल सकेगा। किसी भी समय जो अंतिम मूल्यांकन होते हैं उन्हें स्थापित करने वाले कारण विजातीय प्रकार के होते हैं। इसलिए यह मानने का कोई आधार नहीं है कि ऐसे कारणों के परिणामी प्रभावों में ऐसी महत्वपूर्ण एकरूपता दिखाई दे जो विभिन्न कालावधियों और विभिन्न स्थानों में पाई जाए। इसमें संदेह नहीं कि एक अर्थ में यह तर्क दिया जा सकता है कि विश्व का प्रत्येक यादृच्छिक नमूना विशेष कारणों का परिणाम होता है किंतु ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है कि यादृच्छिक नमूने के किसी यादृच्छिक अध्ययन से महत्वपूर्ण सामान्यीकरण निकाले जा सकते हैं। विज्ञानों में ऐसी प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती। फिर भी इस प्रत्याशा में कि आर्थिक विश्लेषण के औपचारिक आधार तत्वों को स्थायी और

2 देखिए पहले, दूसरा अध्याय, अनुभाग 1, 2, 3।

3 स्ट्रीगल, पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 18।

स्थिर मूल्य का महत्वपूर्ण रूप दिया जा सकता है यही अथवा इसी प्रकार की मान्यता निहित होती है।[4]

एक सरल से उदाहरण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगी। हम हेरिंग मछली की माँग को लेते हैं। मान लीजिए एक आदेश के अनुसार हेरिंग मछली की जो कीमत निर्धारित की जाती है वह उसकी बाज़ार में प्रचलित कीमत से कम होती है। मान लीजिए कि हम यह कहने की स्थिति में हैं कि ब्लैक (1907-1908) के अनुसंधानों के अनुसार सामान्य हेरिंग (क्लूपिया हेरंगस) की माँग की मूल्य-सापेक्षता 1·3 है; और मूल्य निश्चित करने वाले वर्तमान आदेश के कारण पूर्ति की तुलना में 20 लाख बेरल की अतिरिक्त माँग हो सकती है। इस प्रकार की बातें कह सकना कितना सुखद है। प्रकृति विज्ञानियों की तुलना में सामान्यतया हमें हीनभाव का अनुभव करना पड़ता है। अगर हम उस प्रकार की बातें कह सकते तो यह हीन भाव मिटाया जा सकता है। ऐसी बातों से बड़े व्यापारी प्रभावित हो सकते हैं तथा सामान्य जनता को ऐसी बातों से आसानी से समझाया जा सकता है।

परंतु क्या हम कभी इस मनोवांछित स्थिति तक पहुँच सकते हैं। मान लीजिए कि 1907-1908 में ब्लैक इस बात का पता लगाने में सफल हो चुका था कि इस वर्ष किसी वस्तु की कीमत में निर्धारित परिवर्तन होने पर उसकी माँग मूल्य-सापेक्षता 1·3 थी। इस प्रकार की स्थूल गणना करना वस्तुतः बहुत मुश्किल नहीं है और कुछ प्रयोजनों के लिए इनकी पर्याप्त उपयोगिता हो सकती है। परंतु हम किस आधार पर यह मान सकते हैं कि वह कोई स्थिर नियम की खोज कर रहे थे? इसमें संदेह नहीं कि हेरिंग मछली से हमारी कुछ शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं जिनका हम काफ़ी हद तक सही-सही वर्णन कर सकते हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि केवल उसी प्रकार के खाद्य पदार्थ से उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। हेरिंग की माँग केवल इस आवश्यकता से नहीं व्युत्पन्न होती। यह वस्तुतः स्वतंत्र दिखाई देने वाले अनेक परिवर्तनशील कारणों का परिणाम फलतः होता है। माँग फैशन पर भी निर्भर हो सकती है। यहाँ फैशन का तात्पर्य 'ईट ब्रिटिश हेरिंग्स आंदोलन' के अस्थाई परिणामों तक ही सीमित नहीं है। बाज़ार में प्रवेश करने-वाले व्यक्तियों के धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने के कारण भी हेरिंग की माँग

4 'स्थायी और स्थिर मूल्य' विशेषण ध्यान देने योग्य हैं। इस निष्कर्ष को अत्यंत कठोर कहकर रद्द करने से पहले इस प्रकार की जाँच के स्पष्ट महत्व के बारे में नीचे दी गई कैफियत की पूरी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिए।

में भारी अंतर पड़ सकता है। इसकी माँग दूसरे प्रकार के भोजन की उपलब्धि पर भी निर्भर होती है। इसी प्रकार इसकी माँग जनसंख्या और उसकी विशेषताओं पर भी निर्भर होती है। समुदाय के अंदर आय के वितरण और मुद्रा की मात्रा परिवर्तनों का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। यातायात के परिवर्तनों से भी उस क्षेत्र में परिवर्तन हो सकता है, जिस क्षेत्र में उसकी माँग होती है। भोजन पकाने की कला में नई खोजों से भी उसकी सापेक्षिक वांछनीयता में परिवर्तन आ सकता है। अतः क्या किसी युक्ति-युक्त आधार पर यह मानना संभव है कि किसी विशेष समय और स्थान पर किसी मछली बाजार में देखी गई बातों से निकाले गए कारणों (गुणांकों) का आर्थिक इतिहास के रूप में ही महत्व होता है, अन्य कोई स्थायी महत्व नहीं होता ?

अब निस्संदेह अनेक उपायों से इन अवलोकनों का क्षेत्र अनेक अवधियों तक बढ़ाया जा सकता है। हेरिंग के बाजार को कुछ दिनों तक देखने के बजाय कुछ वर्षों में इसकी कीमतों में होनेवाले परिवर्तनों और माँग में होने वाले परिवर्तनों के आँकड़े इकट्ठे किए जा सकते हैं और मौसमी फेर-बदल , जनसंख्या के परिवर्तन आदि को ध्यान में रखकर इन आंकड़ों में विवेकसंगत परिवर्तन करके इन आँकड़ों का उपयोग ऐसे अंक को निकालने के लिए किया जा सकता है जो उस समस्त अवधि में उसकी औसत मूल्य-सापेक्षता का द्योतक हो। कुछ सीमाओं के अंदर ऐसी संगणनाओं की अपनी उपयोगिता होती है। इनकी सहायता से इतिहास की उस कालावधि में कार्यशील कुछ प्रवृत्तियों का सुविधाजनक ढंग से वर्णन किया जा सकता है और जैसा कि हम आगे देखेंगे इनसे थोड़ा-बहुत यह संकेत मिल सकता है कि निकट भविष्य में क्या हो सकता है। यदि हमें आर्थिक विश्लेषण के अधिक सूक्ष्म उपकरणों का पूर्ण प्रयोग करना है तो मोटे तौर पर विशेष मंडियों में माँग-मूल्य सापेक्षता की स्थूल जानकारी होना वास्तव में हमारे लिए आवश्यक होता है। किंतु इन्हें अटल नियम नहीं माना जा सकता। चाहे वे विगत बातों का कितना भी सही वर्णन क्यों न करते हों। परंतु इनमें कोई ऐसी प्रकल्पना नहीं की गई है कि ये भविष्य का भी ठीक-ठीक वर्णन करेंगे। इनसे यही पता चलता है कि विगत काल में वैसी स्थिति थी। भविष्य में भी थोड़ी-सी अवधि तक ऐसी स्थिति बनी रह सकती है। चूँकि भूतकाल में वैसी स्थिति थी इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि वे स्थितियाँ सजातीय कारणों का परिणाम थीं, और यह भी नहीं माना जा सकता कि भविष्य में जो परिवर्तन होंगे वे उन्हीं कारणों से होंगे जो भूतकाल में प्रवृत्त थे। यदि हम हेरिंग मछली के व्यापार में सहायक सिद्ध होना चाहते हैं तो हमें तुच्छ ब्लैक की खोजों पर स्वप्न में भी विश्वास नहीं करना चाहिए जो कि उसने 1907-08 में की थीं । हमें सारी बातों पर अधिक आधुनिक खोजों के आधार पर फिर से विचार

करना होगा। इस प्रकार की जाँच चाहे कितनी भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो किंतु यह दावा करना न्यायसंगत नहीं है कि उनसे निकाले गए निष्कर्ष उसी स्वरूप के होते हैं जिस प्रकार कि प्रकृति विज्ञानों के तथाकथित 'सांख्यिकीय नियम' होते हैं। यहाँ पर उनके रीतिविधान स्वरूप के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे यह नहीं समझना चाहिए कि हम उनके व्यावहारिक महत्व को घटा रहे हैं।[5]

परंतु यह कहा जा सकता है कि ऐसी जाँच के परिणामों में तथा जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है, इन आधार तत्वों में जिन पर अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण आधारित होते हैं, जो अंतर होता है वह प्रकार का अंतर न होकर क्या केवल मात्रा का अंतर नहीं होता ?

यह दिखाया जा चुका है कि यदि उद्देश्यों के सोपान न होते और यदि सभी विभिन्न उद्देश्यों का एक ही समान महत्व होता तो आचरण के विषय में कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता और मूल्य सिद्धांत के प्रारंभिक नियम भी कहीं पर लागू नहीं होते। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि ऐसा नहीं होगा। केवल यह संभावना की जाती है कि ऐसी प्रस्थापनाओं को लागू करने-वाली परिस्थितियाँ बनी रहेंगी। ठीक इसी तरीके से विश्लेषण द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि ऐसी परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जिनमें माँग वक्र का झुकाव धनात्मक हो सकता है। फिर भी, यदि अधिकतर ऐसा होता हो तो निगमनिक सिद्धांत के सर्वाधिक मान्य सामान्यीकरण भी कहीं पर लागू नहीं होंगे। इसी प्रकार यह भी केवल संभावना ही है कि ऐसा नहीं होता। तो फिर भला मान्यता में और उस मान्यता में कि हेरिंग की माँग मूल्य-सापेक्षता 1·3 है, कौन-सा प्रकारात्मक अंतर होता है ?

यह तर्क काफ़ी प्रबल दिखाई देता है। यह बात मुक्त रूप से स्वीकार की स जाकती है कि इस अर्थ में यह अंतर प्रकारात्मक न हो कर केवल मात्रात्मक होता है। किंतु निश्चय ही इसका यह उत्तर भी दिया जा सकता है कि मात्रा का यह अंतर इतना अधिक होता है कि हम उसे प्रकार भेद भी मान सकते हैं। यह हो सकता है कि मूल्यांकन इतने विचित्र प्रकार के हों कि आचरण को निर्धा-रित करना कठिन हो। किंतु ऐसा होना इतना अधिक असंभव होता है कि हम उसकी संभाव्यता की उपेक्षा कर सकते हैं। यह इतना असंभव नहीं होता है कि माँग फलन धनात्मक न हो सकता हो, परंतु फिर भी ऐसी प्रबल संभाव्यता होती है कि ऐसा एक नियम के रूप में नहीं होता, अपितु अपवाद के रूप में होता है।

5 ऊपर जिन समस्याओं के बारे में चर्चा की गई है उनके बारे में बड़ी रुचिकर बातें हेल्बरस्टेडटर की पुस्तक *'Die Problematik des wirtschaftlichen Prinzips'* में कही गई हैं।

इसके विपरीत जब हम विशेष वस्तुओं के मूल्यांकनों और उनसे निकाली गई माँग मूल्य सापेक्षता पर विचार करते हैं तो, पहले बताए गए कारणों से निश्चित रूप से इस बात की प्रबल संभावना होती है कि उसमें समरूपता नहीं होगी। यहाँ पर वस्तुतः हमें ऐतिहासिक सापेक्षता का एक उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। हम अपने अधिमानों को एक क्रम में लगा सकते हैं। यह तथ्य किसी व्यक्ति द्वारा किसी क्षण में बताए गए वास्तविक अधिमान क्रम की अपेक्षा इतना अधिक व्यापक तथ्य है कि इसको कम से कम हमारे विषय की चर्चा में विभिन्न स्वरूप का मानना निश्चित रूप से युक्तिसंगत ठहराया जा सकता है और यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि भविष्य में इन क्षणिक मूल्यों को निश्चित करने के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाएँगे तथापि चर्चा में संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से यह अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि उनकी सीमाओं का ध्यान रखा जाए। यह अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता कि जिस रूप में हम विज्ञान को जानते हैं इसके आधारों अर्थात्-स्थूल गुणात्मक आधारों से उनके औपचारिक साम्य पर बल दिया जाए। कदाचित् प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में यह एक और रीतिविधान संबंधी अंतर है। प्राकृतिक विज्ञानों में गुणात्मक संबंधों को मात्रात्मक संबंधों में बदलना सरल और अवश्यंभावी होता है। सामाजिक विज्ञानों में, उन कारणों से जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है, कुछ मामलों में तो ऐसा करना बिल्कुल असंभव होता है और ऐसा करना खतरे और कठिनाई से खाली नहीं होता। अब तक जो कुछ हो चुका है उससे यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों की समरूपताओं पर बल देने की अपेक्षा उनके अंतर पर बल देने से कम हानि की संभावना हो सकती है।[6]

3. यदि माँग और पूर्ति की फलनों जैसी प्रारंभिक संकल्पनाओं के निश्चित मात्रात्मक मूल्य निर्धारित करने के प्रयत्नों के संबंध में यह बात सच है तो फिर अधिक जटिल घटनाओं जैसे कीमतों की घट-बढ़, लागतों का वितरण, व्यवसाय-चक्रों आदि की गतिविधियों के संबंध में मूर्त नियम बनाने के प्रयत्नों पर यह बात और भी अधिक लागू होगी। पिछले दस वर्षों में 'संस्थावाद', 'मात्रात्मक अर्थशास्त्र' 'गत्यात्मक अर्थशास्त्र' आदि नामों[7] के अंतर्गत इस प्रकार

6 इस अनुभाग में लिखी गई बातों के बारे में डा० माकलुप से की गई वार्ताओं के लिए उनका आभारी हूँ।

7 नीचे 'संस्थावाद' के संबंध में जो हुई चर्चा की गई है उसके लिए प्रोफेसर वेज़लि मिकेल का निबंध 'दि प्रासपेक्ट आफ इकोनॉमिक्स', देखिए जो टगवेल द्वारा संपादित कृति 'ट्रेंड आफ इकोनॉमिक्स' में दिया गया है। इस 'सम्प्रदाय' की सामान्य स्थिति के लिए मारगेंसटर्न का लेख

बहुत-सा काम हुआ है परंतु फिर भी अधिकांश अनुसंधान-कार्य शुरू से ही व्यर्थ सिद्ध हुआ है और यदि वह अनुसंधान कार्य न किया जाता तो कोई अंतर नहीं पड़ता। संभाव्यता सिद्धांत, जिस पर आधुनिक गणितीय सांख्यिकी आधारित है, ऐसी दशाओं में औसत निकालना न्यायसंगत नहीं ठहराता जो स्पष्ट रूप से ऐसी विश्वसनीय नहीं होती कि यह माना जा सके कि उनमें विभिन्न प्रकार के सजातीय कारण काम कर रहे हैं। फिर भी इस प्रकार के कार्यों में यही सामान्य प्रक्रिया अपनाई जाती है। 'मात्रात्मक नियमों' की खोज के लिए बिल्कुल विभिन्न स्वरूप के प्रभावों के अधीन रहनेवाली प्रवृत्तियों के सहसंबंध की छानबीन की जाती है। समय और स्थान की दृष्टि से सर्वथा विजातीय परिस्थितियों में घटित होने वाली घटनाओं के औसत निकाले जाते हैं और यह आशा की जाती है कि इनके परिणाम पर्याप्त महत्वपूर्ण होंगे। उदाहरण के लिए प्रोफेसर वेज़लि मिकेल की पुस्तक 'बिजनेस साइकिल'[8] में, जिसमें दी गई शानदार आधार सामग्री के संग्रह के लिए अर्थशास्त्री सदैव उनके अनुगृहीत रहेंगे, अठारहवीं शताब्दी से लेकर आज तक विभिन्न देशों में व्यवसाय के उतार-चढ़ावों का एक विस्तृत और मूल्यवान विवरण देने के सभी व्यवसाय चक्रों की अवधि का एक औसत निकाला गया है और 166 व्यवसाय-चक्रों के वारंवारता-वंटन के आधार पर डेविस पद्धति से उनका लघुगणकीय सामान्य चक्र तैयार किया गया है। इस प्रकार की प्रक्रिया का क्या अर्थ हो सकता है? ये आँकड़े ऐसी स्थितियों के होते हैं जो समय, स्थान, और व्यवसाय में लगी संस्थाओं की दृष्टि से एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। यदि उन को इकट्ठा करने में कोई महत्व है तो वह इस बात में हो सकता है कि उनमें जो अंतर होता है उसका अध्ययन किया जाए। फिर भी प्रोफेसर मिकेल जो परंपरानिष्ठ विश्लेषण की विधि और उसके परिणामों को महत्वहीन कहने में कभी नहीं थकते, प्रकट रूप में यह सोचते हैं कि उन सब आँकड़ों को एक स्थान पर इकट्ठा करके और उनकी वारंवारता-वंटन को एक अत्यंत जटिल वक्र के रूप में दिखाकर वह किसी महत्वपूर्ण वस्तु का निर्माण कर रहे हैं—अर्थात् ऐसी वस्तु का निर्माण कर रहे हैं जो उनके प्रसिद्ध

Bemerkungen über *die Problematik der Amerikanischen Institutionalisten* in the *Saggi di Storia e Teoria Economica in onore e recordo di Giuseppe Prato,* Turin,1931; Fetter, art, America, *Wirtschaftstheorie der Gegenwart.* भाग 1, पृष्ठ 31-60 देखिए। 'ट्रेंड आफ इकोनॉमिक्स' की स्वर्गीय प्रोफेसर एलाविन यंग द्वारा लिखी गई समीक्षा जो 'इकोनॉमिक प्रोबलम्स न्यु एंड ओल्ड' में पृष्ठ 232-260 पर छपी है भी देखिए।

8 बिजनेस साईकिल, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 419।

ग्रंथ[9] के आधे पृष्ठ पर दी गई कुछ सरल रेखाओं और वक्रों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। निश्चय ही उन्होंने 'मात्रात्मक अर्थशास्त्र' के रीतिविधान के बारे में बहुत ही कटु समीक्षा प्रस्तुत की है। संभवतया कोई भी आलोचक इससे अधिक कटु आलोचना नहीं कर सकता था।

इन भव्य प्रायोजनाओं की अर्थहीनता के बारे में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यद्यपि हाल ही में ये बहुत लोकप्रिय हो गई हैं फिर भी ये नई नहीं है और जो आंदोलन लगातार व्यावहारिक तर्कों का आह्वान करता रहा है उसे व्यवाहारिकता की कसौटी पर ही कसना न्यायोचित होगा। इस बात को लगभग सौ वर्ष ही हुए होंगे जबकि रिचर्ड जोन्स ने लंदन[10] के किंग्स कालेज में अपने उद्घाटन भाषण में रिकार्डो के अर्थशास्त्र की 'औपचारिक अमूर्तताओं' के विरुद्ध विरोध का झंडा खड़ा किया था। उन्होंने उस समय जो तर्क दिए थे उनकी यदि और व्याख्या की जाए तो ये कमोवेश उन तर्कों से मिलते-जुलते दिखाई देंगे जो कि 'आगमन पद्धति' के अनुयायी उस समय से आज तक दे रहे हैं। समय बीतता गया और अब वे ही विद्रोही अत्यंत सम्मानित विशेषज्ञ प्राधिकारी माने जाने लगे हैं। वे उच्च पदों पर आसीन हैं उनको केसर से सम्मानित पदवियाँ मिली हैं, अनुसंधान संस्थाओं के निदेशकों का कार्य सँभाले हुए हैं— इसके पूर्व एक इतिहासवादी संप्रदाय था और अब संस्थानिक अर्थशास्त्री है। एक या दो विशिष्ट स्थानों को छोड़कर बेधड़क यह कहा जा सकता है कि युद्ध

9 इस बारे में देखिए मारगेंनस्टर्न, '*International vergleichende Konjunkturforschung* (*Zeitschrift-für die Gesammte Staatswissenschaft* भाग *Lxxxiii* पृष्ठ 261)। अपनी पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रोफेसर मिकेल ने डा० मारगेनस्टर्न द्वारा उठाई गई आपत्तियों की एक फुटनोट में विस्तृत चर्चा की है परंतु जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह कहने के अतिरिक्त कि चीन के बारे में उनके कथन केवल समुद्र-तटीय नगरों के हैं, उन्होंने कोई नई बात नहीं कही है। उन्होंने इस बात की पुनरावृत्ति-भर की है। अवलोकनों की केंद्रीय प्रवृत्ति के इर्दगिर्द उनको वितरित करना सैद्धांतिक रुचि की बात होती है।" बिजनेस साइकल्ज, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 420।'

10 रिचर्ड जोन्स, संगृहीत कृतियाँ, पृष्ठ 21-22। ऐसी तुलना श्री जोन्स के प्रति न्यायसंगत नहीं होगी। हो सकता है रिकार्डियन अर्थव्यवस्था की आलोचना के लिए उनके पास कोई बहुत सबल तर्क रहे हों। आधुनिक 'मात्रात्मक अर्थशास्त्र' का सच्चा पुरोवर्ती तो सर जोसिहा चाईल्ड था जिसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कम ब्याज दरों और अत्यधिक अमीरी का सहवर्तन इस बात का द्योतक है कि इनमें से पहला दूसरे का कारण है।

की समाप्ति तक जर्मनी के विश्वविद्यालयों से संबंधित क्षेत्रों में इस प्रकार के विचार बड़ा जोर पकड़े हुए थे और हाल के कुछ वर्षों में यद्यपि उनका प्राधान्य नहीं है फिर भी अमरीका में बहुत व्यापक क्षेत्र में उन्हें मान्यता दी जाती है। फिर भी इनके प्रयत्नों से अभी तक एक भी 'नियम' अथवा स्थायी मान्यता वाला एक भी मात्रात्मक सामान्यीकरण नहीं बना है। इन्होंने केवल कुछ दिलचस्प आँकड़े भर दिए हैं और कुछ विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों के बारे में बहुत-से उपयोगी विशेष निबंध लिखे हैं। किंतु उन्होंने कोई 'मूर्त नियम' अर्थात् 'आर्थिक आचरण' के बारे में कोई सारवान एकरूपता की खोज नहीं की है। आर्थिक जाँच में आधुनिक सांख्यिकीय तकनीकों का जितना रुचिकर प्रयोग किया गया है वह सबका सब संस्थानिक अर्थशास्त्रियों द्वारा नहीं अपितु ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया गया है जो स्वयं परंपरागत सैद्धांतिक विश्लेषण की जटिलताओं को भलीभाँति जानते थे और सौ वर्ष के बाद इतिहास की सबसे बड़ी मंदी के समय इन सब लोगों की खोज बेकार सिद्ध हुई हैं और वे कोई भी सहायताप्रद टीका प्रस्तुत करने में असमर्थ सिद्ध हुए। उन्होंने जिन प्रवृत्तियों का पता लगाया था वे उस समय नहीं पाई गईं और उनका प्रसार विकृत रूप में पाया गया।[11] इसी बीच कुछ अकेले काम करनेवाले विचारकों ने तिरस्कृत निगमनिक सिद्धांत के उपकरणों का सहारा लेकर तेज़ी और मंदी के सिद्धांत के बारे में हमारी जानकारी को यहाँ तक पहुँचा दिया है कि हम उसकी सहायता से पिछले कुछ वर्षों की महत्वपूर्ण आर्थिक घटनाओं की सामान्य रूप से व्याख्या कर सकते हैं और यह असंभव प्रतीत नहीं होता कि अगले कुछ वर्षों में मंदी की पहेली को पूरी तरह सुलझाया जा सकेगा।

4. परंतु तब हम अधिक विस्तृत प्रकार के वास्तविक अध्ययनों के बारे में क्या कह सकते हैं ? यह जानने के पश्चात कि दुर्लभता सर्वत्र होती है, उत्पादन कारक अनेक होते हैं, भविष्य के बारे में पूरी जानकारी नहीं हो सकती और सैद्धांतिक अभ्युपगम प्रतिबंधित होते हैं। क्या हमें ऐसे अर्थशास्त्री को क्षमा नहीं कर सकते जो वास्तविकता से संबंध नहीं बनाए रखता ?

इसका उत्तर निश्चित रूप से नकारात्मक ही होगा। यह नकारात्मक

11 जर्मनी के ऐतिहासिक संप्रदाय की बदनामी का सबसे बड़ा कारण यह है कि इसके अनुयायी युद्ध और युद्धोत्तर काल में होनेवाली मुद्रा संबंधी हलचलों को नहीं समझ सके। 'मात्रात्मक अर्थशास्त्र' के द्वारा न महान मंदी को समझा जा सका था न उसका पूर्वानुमान लगाया जा सका था। यह असंभव नहीं है कि इस विफलता के बाद भी और इसी प्रकार की विफलताएँ हों। इससे अधिक किसी और पूर्ण या स्पष्ट भंडाफोड़ (अनावरण) की कल्पना करना कठिन है।

उत्तर उन सभी अर्थशास्त्रियों के व्यवहार में, निहित दिखाई देता है जो एडम स्मिथ और कैंटीलन के समय से अर्थशास्त्र के विकास में बड़ा योग दे रहे हैं। तथाकथित परंपरागत या रूढ़िवादी अर्थशास्त्रियों ने कभी भी वास्तविक अध्ययन पर आपत्ति नहीं की है जैसा कि मेंगर ने वर्षों पहले जब (Methodenstreit) संप्रदाय उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था, यह कहा था कि विश्लेषणवादी संप्रदाय कभी भी इन विवादों में आक्रमणकारी नहीं रहा है।[12] अर्थशास्त्र उन सामाजिक विज्ञानों में से नहीं है जो कार्य को पूरा करने से पहले रीति की चर्चा करता रहता है। यदि इतिहासवादी संप्रदाय न होता तो कुछ विशेष प्रस्थापनाओं के स्वरूप से संबंधित रीति को छोड़कर रीति संबंधी किसी प्रकार का वाद-विवाद न उठता। परंपरानिष्ठ अर्थशास्त्रियों की प्रक्रिया मुख्यतया उदार रही है। सदा दूसरी ओर के लोग ही आक्षेप करते रहे हैं या अन्य प्रकार की रीति का बहिष्कार करने का प्रयत्न करते रहे हैं। विश्लेषणवादी सदा "वास्तविक" अध्ययनों का महत्व स्वीकार करते रहे हैं और उन्होंने स्वयं जांच करने की तकनीकों के विकास में काफी योग दिया है। वास्तव में यह बात सभी लोग स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकें उन लोगों द्वारा नहीं लिखी गई हैं जो विभिन्न 'विद्रोही' वर्ग के सदस्य थे और जो विचार करने के सामान्य नियमों को अर्थशास्त्र में प्रयोग करने के संबंध में आपत्ति करते थे, बल्कि ऐसी पुस्तकें उन लोगों की कटु आलोचना की शिकार थीं। व्यावहारिक अर्थशास्त्र के इतिहास में हमारे लिए शमालर, बेबलन या हेमिल्टन के काम की अपेक्षा जीवन्स, मेंगर या बाऊली के काम का अधिक महत्व है और यह कोई संयोग की बात नहीं है। वास्तविक जाँच वही लोग सफलतापूर्वक कर सकते हैं जो विश्लेषणात्मक सिद्धांतों को पूरी तरह समझते हैं और जिन्हें इस बात का पता होता है कि इस प्रकार की क्रियाओं से सामान्यतया किन परिणामों की आशा की जा सकती है और किन परिणामों की नहीं।

अब प्रश्न पैदा होता है कि इस संबंध में किन परिणामों की आशा की जा सकती है। इन्हें हम तीन शीर्षकों के अंतर्गत रख सकते हैं।

सबसे पहली और स्पष्ट बात यह है कि भिन्न प्रकार की सैद्धांतिक संकल्पनाओं को किसी दी हुई स्थिति पर लागू करने के संबंध में रोक लगाने की व्यवस्था दी जाए। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं किसी विशेष सिद्धांत की प्रामाणिकता उसमें की गई सामान्य मान्यताओं की तार्किक व्युत्पत्ति पर निर्भर होती है। किंतु इसका किसी विशेष स्थिति पर लागू होना इस बात पर निर्भर होता है कि इसमें की गई मान्यताएँ किस सीमा तक उस स्थिति में काम करनेवाली शक्तियों

[12] *Die Irrthümer des Historismus*, भूमिका, पृष्ठ 3 और 4।

का प्रतिनिधित्व करती हैं। दुर्लभता के मूर्त रूप विभिन्न प्रकार के तथा परिवर्तनशील हो सकते हैं और जब तक उनका वर्णन करने के लिए प्रयोग किए गए शब्दों पर निरंतर रोक नहीं लगाई जाती तब तक उस क्षेत्र के बारे में जिस पर विशेष सिद्धांत लागू होता है, मिथ्याधारणा होने का भय सदैव बना रहता है। सिद्धांत की शब्दावली और व्यवहार की शब्दावली यद्यपि देखने में एक जैसी होती है, तो भी वस्तुतः ये दोनों अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित हो सकती हैं।

एक सरल से उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। शुद्ध मुद्रा सिद्धांत के अनुसार यदि संचलन में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है और दूसरी बातें पूर्ववत् रहती हैं तो ऐसी स्थिति में मुद्रा का मूल्य गिर जाएगा। यह साध्य इस विज्ञान के अत्यंत प्रारंभिक अनुभूत तथ्यों से निकाला जा सकता है और इसकी सत्यता के प्रमाण के लिए किसी और निगमन परीक्षा की अपेक्षा नहीं है। किंतु इस साध्य को किसी स्थिति पर लागू कर सकना इस बात को ठीक-ठीक समझने पर निर्भर करता है कि किन वस्तुओं को मुद्रा माना जाए और यह ऐसी बात है जिसका पता तथ्यों को फिर से देखने पर ही हो सकता है। यह हो सकता है कि किसी कालावधि में 'मुद्रा' शब्द के मूर्त महत्व में परिवर्तन हो गया हो। ऐसी स्थिति में यदि मूल शब्द को जैसे का तैसे रखते हुए हम उसके प्रकाश में किसी नई स्थिति की व्याख्या करना शुरू कर दें तो इससे भारी भ्रांति पैदा हो सकती है। हम यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह सिद्धांत दोषपूर्ण है। वास्तव में यह एक सर्वविदित बात है कि सिद्धांत के इतिहास में बार-बार ऐसा हुआ है। धातु-कोषवाद के बैंकिंग और विनिमय के सिद्धांत अन्य दृष्टियों से उनके विरोधियों के सिद्धांतों की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ होते हुए भी विशेषतया इसीलिए स्थायी रूप से स्वीकार नहीं हुए क्योंकि इसमें जो मुद्रा की संकल्पना की गई थी उसमें बैंक द्वारा किए गए उधारों को सम्मिलित करने के महत्व पर ध्यान नहीं दिया गया था। परिवर्तनशील तथ्यों[13] की लगातार छान-बीन करते रहने से ही ऐसी भ्रांतियों को दूर किया जा सकता है।

वास्तविक अध्ययन के पहले कार्य से घनिष्ठ रूप से संबंधित दूसरी बात यह है कि हम वास्तविक अध्ययन से उन गौण आधार तत्वों का पता लगा सकते हैं जिनके बारे में पिछले अध्याय में चर्चा की गई थी तथा बताया गया था कि उनका विश्लेषण की संरचना में क्या स्थान होता है। आर्थिक कार्यकलापों के विभिन्न क्षेत्रों का निरीक्षण करके हम अग्रेतर विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए

13 प्रोफेसर जेकोब वाइनर की पुस्तक 'केनेडियन बेलेंस आफ इंटरनेशनल इंडेटेडनेस' और प्रोफ़ेसर टॉसिग की पुस्तक 'इंटरनेशनल ट्रेड'——में इस प्रकार की जाँच के अच्छे उदाहरण दिए गए हैं।

उपयुक्त आधार सामग्री की विभिन्न प्रकार की संस्थिति की खोज कर सकते हैं।

हम इस बार भी मुद्रा सिद्धांत से एक और उदाहरण ले सकते हैं। नोट जारी करने वाले बैंकों की वास्तविक प्रक्रिया को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि बहुमूल्य धातुओं की आरक्षित राशि में निश्चित वृद्धि का मुद्रा की पूर्ति पर व्यापक अर्थ में जो प्रभाव पड़ेगा वह आरक्षित राशि रखने के संबंध में बनाए गए कानून और कार्यप्रणाली के स्वरूप पर निर्भर होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुद्रा सिद्धांत की पूरी तरह व्याख्या करते समय हमें इससे संबंधित विभिन्न संभाव्यताओं को ध्यान में रखकर वैकल्पिक मान्यताएँ करनी पड़ेंगी। यह स्पष्ट है कि ये संभाव्यताएँ अनिवार्य रूप से केवल उतनी ही नहीं होतीं, जितनी कि दूसरी बैंकों के स्वरूप पर सामान्य रूप से विचार करने पर दिखाई देती हैं। केवल तथ्यों के गंभीर अध्ययन से ही यह पता चल सकता है कि कौन-सी मान्यताएँ वास्तविक संसार में पाई जाएँगी और किन मान्यताओं को अपनाना सबसे सुविधाजनक रहेगा।

तीसरे, वास्तविक अध्ययन से हम केवल विशेष सिद्धांतों के प्रयोग का तथा विशेष स्थितियों में उनको उपयुक्त बनाने वाली मान्यताओं का ही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते; अपितु उन क्षेत्रों का भी पता चला सकते हैं जहाँ पर विशुद्ध सिद्धांत का फिर से निरूपण करने अथवा उसका विस्तार करने की आवश्यकता होती है। वास्तविक अध्ययन से नई समस्याओं का पता चलता है।

कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकी है। ऐसी बातों का सर्वोत्तम उदाहरण व्यापार के उन उतार-चढ़ावों में मिलता है जो व्यापार-चक्र के नाम से विदित हैं। प्रारंभिक संतुलन सिद्धांत, जैसा कि भली भाँति ज्ञात है, तेजी और मंदी की कोई व्याख्या नहीं करता। स्थैतिक स्थिति होने पर अर्थव्यवस्था के संबंधों की भी यह व्याख्या करता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, यदि इसकी मान्यताओं में थोड़ा-बहुत विस्तार किया जाए तो इसके द्वारा विभिन्न आधार सामग्री के परिणामस्वरूप होने वाले विभिन्न संबंधों के अंतर का वर्णन किया जा सकता है। किंतु अन्य विस्तार किए बिना इससे अर्थव्यवस्था में निहित ऐसी प्रवृत्तियों की व्याख्या नहीं की जा सकती जिनके कारण व्यनुपाती विकास होता है। इसके द्वारा कुल पूर्ति और कुल माँग के बीच की असंगति की व्याख्या नहीं की जा सकती। यहाँ पर माँग और पूर्ति शब्द उसी अर्थ में प्रयोग किए गए हैं जिस अर्थ में ये सुप्रसिद्ध बाजार नियम में प्रयुक्त[14] किए गए हैं। फिर भी निस्संदेह ऐसी असंगतियाँ पाई जाती हैं और इसलिए केवल ऐसे सिद्धांत

14 इस संबंध में देखिए हेक की पुस्तक 'मानेटरी थीओरि ऐंड दी ट्रेड साइ-किल' अध्याय 1 और 2 तथा अन्यत्र।

के सहारे वास्तविकता की व्याख्या करने के प्रयास से अनिवार्यतः ऐसी घटनाएँ बच जाएँगी जो उसके सामान्यीकरणों के अंतर्गत नहीं आतीं।

यहाँ पर हमें स्पष्ट उदाहरण मिलता है जिसमें कि अनुभवाश्रित अध्ययन से हमें कतिपय सामान्यीकरणों की अपर्याप्तता का स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है और कदाचित सिद्धांत के संबंध में किए गए वास्तविक अध्ययनों का मुख्य कार्य इस प्रकार की त्रुटियों को प्रकट करना ही है।[15] जो सैद्धांतिक अर्थशास्त्री अपने सिद्धांतों के आशयों को सुरक्षित करना चाहता है उसे चाहिए कि जिन सामान्यीकरणों को वह बना चुका है उनका प्रयोग वह विशेष परिस्थितियों की व्याख्या करने के लिए निरंतर करता रहे और देखे कि उन परिस्थितियों में वे सामान्यीकरण सही पाए जाते हैं कि नहीं। विशेष उदाहरणों की परीक्षा द्वारा ही वर्तमान सिद्धांतों की त्रुटियों का पता लगाया जा सकता है।

किंतु इस कथन का तात्पर्य यह बिलकुल नहीं है कि इस प्रकार प्रस्तुत की गई समस्याओं का हल भी इस प्रकार की अपवादात्मक अनेक घटनाओं का अवलोकन करने से ही निकाला जा सकता है। अवलोकनों का यह उद्देश्य नहीं होता। विभिन्न 'आगमनात्मक विद्रोहों' के समग्र इतिहास से यही पता चलता है कि इस आशा पर आधारित सभी अध्ययन पूर्णरूपेण असफल सिद्ध हुए हैं। व्यापार-चक्र सिद्धांत के संबंध में यह बात विशेष रूप से सत्य है। जब तक इस दिशा में काम करने वाले अनुसंधानकर्ता काल के आधार पर अधिकाधिक घटनाओं का वर्णन करते रहे तथा सहसंबंधों को प्रभावित करने वाले गुणांकों अर्थात् मिले-जुले कारणों का संग्रह करते रहे तब तक कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं दिखाई दी। किंतु जब कुछ ऐसे आदमी आगे आए जो इस काम को बिल्कुल अलग ढंग से उस स्थान से शुरू करने को तैयार हुए जहाँ पर कि प्रारंभिक सैद्धांतिक विश्लेषण इस को छोड़ता है तथा इसमें और प्रारंभिक गुणात्मक प्रकार की मान्यताओं की जिनकी हम पहले परीक्षा कर चुके हैं, पुनःस्थापना करके, तेजी-मंदी की व्याख्या प्रस्तुत की, जो उस विश्लेषण की मान्यताओं से संगत होती हैं, तब कहीं जाकर कुछ प्रगति हुई। अध्ययन की इन दो शाखाओं के बीच परस्पर संबंध के बारे में इससे बढ़िया उदाहरण नहीं मिल सकता। वास्तविक अध्ययनों से हमें उन समस्याओं का पता चलता है जिनको हमें हल करना है। जब समस्या का कोई हल प्रस्तुत किया जाता है तब इसकी सहायता से इस बात की जाँच की जा सकती है कि वह किस सीमा तक लागू होता है। सिद्धांतों के विस्तार के लिए जो मान्यताएँ की जानी चाहिए उनका इससे संकेत मिलता है। किंतु केवल

15 व्यवहार के संबंध में इसके एक और महत्वपूर्ण कार्य का उल्लेख अगले अध्याय में किया जाएगा।

सिद्धांत से ही समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। इस संबंध को उलटने का कोई भी प्रयत्न करना अनिवार्यतया प्रयोजनहीन अध्ययन होगा और इकट्ठी की गई सामग्री केवल रिकार्ड करने के काम आएगी।

दूसरे यहाँ हम फिर उसी बात पर आ जाते हैं जहाँ से कि हमने चर्चा की थी —ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि इस प्रकार ज्ञात अवशिष्ट बातों की व्याख्या के लिए जो सामान्यीकरण बनाए जाएँगे वे सामान्य प्रकार के ही होंगे। पहले बताए गए कारणों से शुद्ध विश्लेपण के आधारभूत तत्वों को स्थायित्व देने और विशेष महत्व देने की आशा करना व्यर्थ है। शुद्ध सिद्धांत को मूर्त स्थितियों पर आजमा कर और अवशिष्ट कठिनाइयों को फिर से शुद्ध सिद्धांत के हवाले करके हम विश्लेषण के उपकरणों में लगातार सुधार और विस्तार करने की आशा कर सकते हैं। किंतु यह आशा नहीं की जा सकती कि ऐसे अध्ययन से हम यह बता सकें कि कौन सी वस्तुएँ अवश्य ही आर्थिक वस्तुएँ होंगी और विभिन्न स्थितियों में उनका ठीक-ठीक मूल्य क्या होगा। ऐसा कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि हम अर्थशास्त्र की किसी वास्तविक समस्या को हल करने की आशा छोड़ देते हैं। ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि हम जानते हैं कि हमारे विषय-क्षेत्र की सीमाओं के अंदर कौन-सी वस्तुएँ आती हैं और कौन-सी वस्तुएँ नहीं आतीं। यह कहना कि स्थिति ऐसी नहीं होती केवल कूट-वैज्ञानिक द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया कथन मात्र होगा।

5. परंतु यह स्वीकार करने का कि अर्थशास्त्र के नियम सामान्य प्रकृति के होते हैं, यह अर्थ नहीं होता कि वे जिन अनिवार्य संबंधों का वर्णन करते हैं हम उनकी वास्तविकता से इनकार करते हैं या हम यह मान लेते हैं कि आर्थिक घटनाओं का निर्वाचन करने और पूर्वानुमान लगाने में उनका कोई मूल्य नहीं होता। इसके विरुद्ध, इन सामान्यीकरणों की प्रकृति और क्षेत्र का सावधानी से सीमांकन कर लेने के बाद हम और भी अधिक विश्वास के साथ यह दावा कर सकते हैं कि उस क्षेत्र में अनिवार्य संबंध पूर्णतया पाए जाते हैं।

अर्थशास्त्र के नियम ऐसे संबंधों का वर्णन करते हैं जो अनिवार्य रूप से होते हैं। यदि किसी स्थिति में वे तथ्य हों जिनको आर्थिक नियम में आधार सामग्री माना गया है तो उस स्थिति में आवश्यक रूप से वे ही परिणाम दिखाई देंगे जो नियम के अनुसार होने चाहिए। इस अर्थ में आर्थिक नियम अन्य वैज्ञानिक नियमों के समान ही होते हैं और उनके समान इनको भी रोका नहीं जा सकता। यदि किसी स्थिति में एक विशेष प्रकार के तथ्य हों तो हम पूरे निश्चय के साथ यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इससे हम जिन अन्य तथ्यों का वर्णन कर सकते हैं वे भी वर्तमान होंगे। जिन लोगों ने पिछले अध्याय में दी हुई प्रस्थापनाओं के आशयों को समझ लिया है उनको इसका कारण ढूँढ़ने में

देर नहीं लगेगी। यदि दी हुई स्थिति एक विशेष ढंग की है तो उसमें वे अन्य बातें भी पाई जाएँगी जो उस ढंग की स्थिति में होती हैं क्योंकि जिस ढंग की स्थिति की मूलतः कल्पना की गई थी उससे उन अन्य बातों का अनुमान लगाया जा सकता है। जटिल रूप से मिश्रित तथ्यों से ऐसे अनिवार्य निष्कर्षों को निकालने के लिए विश्लेषणात्मक रीति एक तरीका मात्र है, जिनके प्रतिरूप वास्तविक संसार की उतनी स्पष्टता से नहीं दिखाई देते जितनी स्पष्टता से मूल आधार तत्वों के प्रतिरूप दिखाई देते हैं। निश्चित मान्यताओं के सभी अभिप्रेत अर्थों को इसकी सहायता से निकाला जा सकता है। यदि आर्थिक नियमों में की गई मान्यताएँ तथा माने गए तथ्य किसी वास्तविक स्थिति में पाए जाते हैं तो नियमों के निष्कर्ष भी अनिवार्य तथा अपरिहार्य रूप में पाए जाएँगे।

यदि हम आरेखीय विश्लेषण की प्रक्रिया पर विचार करें तो ये सब बातें बिल्कुल स्पष्ट हो जाएँगी। मान लीजिए उदाहरण के लिए हम छोटे से कराधान का कीमतों पर होनेवाला प्रभाव दिखाना चाहते हैं। इसके लिए हम माँग मूल्य-सापेक्षता के बारे में कुछ मान्यताएँ कर लेते हैं। इसी प्रकार लागत फलन के बारे में कुछ कल्पनाएँ कर लेते हैं और फिर इनको अपने सामान्य आरेख में दिखाते हैं जिससे हम एकदम कीमतों पर पड़ने वाले प्रभाव को पढ़ सकते हैं।[16] ये सब बातें मूल मान्यताओं में भी निहित होती हैं। आरेख द्वारा केवल ये छिपे हुए आशय और स्पष्ट हो जाते हैं।

आर्थिक विश्लेषण की इस अपरिहार्यता के कारण ही इसकी सहायता से फलानुमान लगाया जा सकता है। पहले ही इस बात पर पर्याप्त बल दिया जा चुका है कि अर्थशास्त्र के पास यह बताने का कोई तरीका नहीं है कि किसी विशेष समय में किसी आधार सामग्री की रचना कैसी होगी। मूल्यांकनों में होनेवाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान इसके द्वारा नहीं लगाया जा सकता। परंतु यदि यह मालूम हो कि विशेष स्थिति में आधार सामग्री क्या है तो इसके द्वारा उस स्थिति के निहित अर्थों के बारे में अपरिहार्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और यदि इस आधार सामग्री में कोई परिवर्तन नहीं होता तो ये निष्कर्ष वास्तविक स्थिति में पाए जाएँगे। ऐसा अवश्य होगा क्योंकि मूल आधार सामग्री में ये निहित होते हैं।

यहाँ पर हम अनुभवाश्रित जाँच का एक और प्रयोजन देख सकते हैं। इससे उन बदलते हुए तथ्यों का पता चलता है जिसके सहारे किसी स्थिति के संबंध में पूर्वानुमान किया जा सकता है। जैसा कि हम देख चुके हैं यह संभव नहीं कि इस प्रकार की जाँच से उनमें होनेवाले परिवर्तनों के नियम की खोज की जा सके

16 देखिए डालटन, पब्लिक फाइनेंस, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 73।

क्योंकि आधार सामग्री को प्रभावित करने वाले कारण सजातीय नहीं होते। परंतु इस प्रकार की जांच से हमें ऐसी सूचना प्राप्त हो सकती है जो किसी विशेष समय संगत हो। इससे हमें विभिन्न क्रियात्मक शक्तियों की सापेक्ष महत्ता का थोड़ा बहुत ज्ञान हो सकता है। इनके आधार पर भविष्य में होनेवाले परिवर्तन की संभव दिशाओं के बारे में प्रबुद्ध अनुमान लगाया जा सकता है और निस्संदेह व्यावहारिक अध्ययन का यह एक मुख्य उपयोग है। इसका उद्देश्य ऐसे क्षेत्र में अनुभवाश्रित नियमों की तलाश करना नहीं है जहाँ कि उनकी कोई आशा नहीं की जा सकती अपितु इनका उद्देश्य समय-समय पर ऐसी परिवर्तनशील आधार सामग्री के बारे में जानकारी देना है जिसके आधार पर किसी निश्चित स्थिति में पूर्वानुमान किया जा सकता है। यह कभी भी औपचारिक विश्लेषण का स्थान नहीं ले सकता। परंतु इससे इस बात का संकेत मिल सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों में कौन-सा औपचारिक विश्लेषण उपयुक्त होगा और उस समय यह औपचारिक आधारभूत संकलनाओं के लिए कुछ सामग्री प्रदान कर सकता है।

निस्संदेह यदि अन्य वस्तुओं में कोई भी परिवर्तन हो जाता है तब जिन निष्कर्षों का अनुमान लगाया गया है वे अनिवार्य रूप से नहीं पाए जाएँगे। इस प्रकार के फलानुमानों की चर्चा करते समय इस प्रारंभिक स्वयंसिद्ध बात का, जो किसी भी वैज्ञानिक पूर्वानुमान में अनिवार्यतया निहित होती है, विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। जिस राजनीतिज्ञ ने 'यदि अन्य बातें पूर्ववत् हों' की उक्ति का तिरस्कार किया था उसके अनेक और उत्साही अनुयायी अर्थशास्त्र के आलोचकों में पाए जाते हैं। यांत्रिकी के किसी नियम को सिद्ध करने के लिए किए गए प्रयोग में यदि भूकंप के कारण बाधा हो जाए तो कोई भी समझदार व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि यांत्रिकी के नियम गलत हैं। फिर भी बहुत से साधारण लोग और अनेक ढोंगी अर्थशास्त्री भी निरंतर इससे भी क्षीण आधार पर सुस्थापित साध्यों की आलोचना करते रहते हैं।[17]

[17] उदाहरण के लिए देखिए हाल ही के वर्षों में सामने आनेवाले 'द्रव्य परिमाण सिद्धांत के अनेक खंडन'। इन सब में टॉरेन्स ने टुक के बारे में जो विचार व्यक्त किए हैं उनका उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। वे लिखते हैं कि "कीमतों के इतिहास को एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन माना जा सकता है। श्री टुक ने हार्नर और रिकार्डो के अनुयायी के रूप में अपना कार्य आरंभ किया था और इन व्यक्तियों के नाम के कारण उन्हें भी प्रसिद्धि मिल गई थी। परंतु सामयिक तथ्यों को इकट्ठे करने की सामर्थ्य उनमें अधिक थी। उनमें प्रत्यक्ष ज्ञान और तार्किक शक्ति कम थी। तथ्यों को इकट्ठा करते रहने के कारण उनसे दुस्तर भूलें हुई हैं।

किसी ऐसे देश में वस्तुओं के आयात पर संरक्षण टैरिफ लगाया जाता है जिसकी उत्पादन की परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि यदि अन्य बातों में कोई परिवर्तन न हो तो ऐसा संस्करण टैरिफ लगाने से कीमत बढ़ जाएगी। कुछ बाह्य कारणों से जैसे तकनीकी प्रगति, कच्चे पदार्थों की कीमत के कम होने, मज़दूरी में कमी होने या ऐसे ही अन्य कारणों से लागतें कम हो जाती हैं और कीमतों में कोई वृद्धि नहीं होती। जनसाधारण और संस्थानिक अर्थशास्त्रियों की नज़र में अर्थशास्त्र के सामान्यीकरण रद्द हो जाते हैं। पूर्ति और माँग के नियम निलंबित हो जाते हैं। विज्ञान के ऐसे झूठे दावों का जिसमें तथ्यों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता, स्पष्ट रूप से पता चल जाता है इत्यादि। फिर भी क्या कभी किसी ने दूसरे वैज्ञानिकों से यह कहा है कि वे अनियंत्रित इतिहास अथवा स्थिति की पूरी घटनाओं का पूर्वानुमान लगाएँ।

इसमें संदेह नहीं कि घटनाएँ अनियंत्रित रूप से होती हैं।[18] इस कारण

वे इस बात की कल्पना नहीं कर सके कि एक सैद्धांतिक नियम, यद्यपि उन सब परिस्थितियों में अनिवार्य रूप से लागू होता है जहाँ वे ही आधार वाक्य पाए जाते हैं जिनसे वह नियम निकाला जाता है, तथापि जिन परिस्थितियों में वे आधार-वाक्य नहीं पाए जाते उनमें वह नियम उचित प्रतिबंधों सहित तथा सुधार करके ही लागू किया जा सकता है। इस कारण वे एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित साध्यों को समझने में भारी गलती कर गए हैं और उन्होंने इस बेतुकी बात को इतने ऊँचे विद्वान का कथन बताया कि द्रव्य के परिमाण में परिवर्तन होने से सभी वस्तुओं के नकद मूल्यों में समानुपाती परिवर्तन होते हैं, जबकि वस्तुओं के परस्पर मूल्यों में असमान अनुपात में परिवर्तन हो रहे होते हैं। इस असमान्य मिथ्या धारणा पर आधारित तर्कों से अनिवार्य रूप से असामान्य निष्कर्ष निकाले गए हैं। इस बात पर अपना संतोष कर लेने पर कि एडम स्मिथ ने इस सार्वदेशिक और सही सिद्धांत का निरूपण किया है कि मुद्रा की क्रय-शक्ति में परिवर्तन होने से सभी वस्तुओं के मूल्यों में समानुपाती परिवर्तन होता है। जब वे बाज़ार में भिन्न-भिन्न समयों पर इस बात की सत्यता की जाँच करने के लिए निकले तो उन्हें इस बात का एक भी उदाहरण नहीं मिला जहाँ द्रव्य के विस्तार अथवा आंकुचन के कारण वस्तुओं की कीमतों में समानुपाती वृद्धि या कमी हुई हो तो उन्होंने इस प्रकार तर्क-विरुद्ध रूप से माने गए आधार वाक्यों से पूर्णतया तार्किक अनुमान द्वारा यह बृहद् खोज की कि "चल मुद्रा की वृद्धि से कीमतों की वृद्धि नहीं होती" दि प्रिंसिपल्स एंड आपरेशन ऑफ़ सर राबर्ट पील्स एक्ट ऑफ 1844, एक्सप्लेंड एंड डिफेंडेड (पहला संस्करण पृष्ठ 75)

18 आर्थिक आयोजन का तथाकथित लाभ अर्थात् यह कि इससे भविष्य के बारे में अधिक सुनिश्चतता पैदा हो जाती है—इस मान्यता पर निर्भर

निश्चित आधार सामग्री से संबंधित बातें इतनी विस्तृत होती हैं और उन पर अप्रत्याशित दिशाओं से इतना प्रभाव पड़ता रहता है कि उनके बारे में पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन हो जाता है चाहे इसमें कितनी भी सावधानी क्यों न बरती जाए। अनेक स्थितियों में आधार सामग्री के विशेष वर्ग में होने वाले छोटे-छोटे परिवर्तन स्वतंत्र रूप से और साथ-साथ होने वाले अन्य परिवर्तनों द्वारा इस प्रकार प्रति-संतुलित हो सकते हैं कि फलानुमान के लिए इन क्रियाशील प्रवृत्तियों की जानकारी बहुत कम महत्वपूर्ण होती है। किन्तु कुछ ऐसे बड़े परिवर्तन भी होते हैं जिनका व्यय और उत्पादन पर एक साथ इतना व्यापक प्रभाव पड़ता है कि उनके अभिप्रेत अर्थ की जानकारी दृढ़ संभाव्यता का अनुमान लगाने के लिए आधारभूत महत्व की होती है। मुद्रा संबंधी घटनाचक्र का अनुमान लगाने के लिए यह बात विशेष रूप से लागू होती है। इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि युद्ध के दौरान और उसके तत्काल बाद होने वाली अव्यवस्था में द्रव्य परिमाण सिद्धांत का प्रारंभिक ज्ञान फलानुमान लगाने के लिए बड़ा महत्वपूर्ण था। युद्ध के बाद जिन सटोरियों ने इस विश्वास से मार्क्स खरीदे थे कि वह अपने आप पुनः पुराने मूल्य पर आ जाएगा उन्हें यदि द्रव्य परिमाण सिद्धांत का इतना भी ज्ञान होता जितना सर विलियम पेटी को था तो उनको पता चल जाता कि वे बहुत हास्यास्पद आचरण कर रहे थे। इस प्रकार शुद्ध विश्लेषणात्मक कारणों से यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है कि जब व्यापार में एक बार किसी बड़ी तेजी के आने के चिह्न दिखाई दे जाते हैं तब उसके बाद मंदी और गिरावट का आना भी बिल्कुल निश्चित होता है, यद्यपि यह कब आएगी और कितनी देर तक रहेगी इन बातों का पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि ये उन चिह्नों के प्रकट होने के बाद मनुष्य के

होता है कि आयोजन के दौरान वर्तमान नियंत्रण शक्तियाँ, जैसे व्यक्तिगत खरीददारों और बचतकारों का आचरण भी, आयोजकों के नियंत्रण में आ जाता है। इससे यह पहेली उठ खड़ी होती है कि या तो आयोजकों के पास उस समुदाय के, जिसकी वे सेवा करना चाहते हैं, उद्देश्यों का अनुमान लगाने के लिए कोई उपकरण नहीं होता या यदि वे उपकरण को बहाल कर लेते हैं तो उनके पास आयोजन का कोई मुख्य प्रयोजन नहीं रहता निस्संदेह तब कोई समस्या नहीं पैदा होती जब वह इन उद्देश्यों का निर्वचन करने के लिए अपने को समर्थ समझता है या—और यह बात अधिक संभव है—यदि वह जिन उद्देश्यों को उचित समझता है वह उनके अतिरिक्त और किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करना चाहता। विचित्र बात यह है कि प्रायः ऐसा होता रहता है। एक भावी 'आयोजक" वास्तव में एक भावी तानाशाह होता है।

आचरण पर निर्भर होते हैं। इसी प्रकार श्रम बाजार के क्षेत्र में भी यह बात बिल्कुल निश्चित होती है कि यदि अन्य बातें पूर्ववत् बनी रहें तो किसी विशेष प्रकार की वेतन नीति से बेरोज़गारी फैल सकती है। यह जानकारी होने से कि 'अन्य बातों में' कैसे परिवर्तन लाए जाएँ, ताकि उक्त परिणाम न हों, निश्चित नीतियों के वास्तविक परिणामों के विषय में पूर्ण विश्वास के साथ अनुमान लगाना बहुत संभव होता है। इन बातों का व्यवहार में कई बार सत्यापन किया जा चुका है। आज कोई अंधा व्यक्ति ही होगा जो इन चीज़ों को नहीं देखना चाहता, वही इन बातों से इन्कार करेगा। यदि कुछ परिस्थितियाँ विद्यमान हों, तो नई उलझनों की अनुपस्थिति में, उनसे कुछ अनिवार्य परिणाम निकलेंगे ही।

6. फिर भी, अर्थशास्त्र के नियमों की अपनी सीमाएँ होती हैं और यदि हम उनका बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयोग करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हमें इन सीमाओं का ठीक-ठीक पता हो। जो कुछ पहले कहा जा चुका है उसके प्रकाश में इनका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन नहीं।

एक अर्थशास्त्री के अध्ययनक्षेत्र में पाए जानेवाले अयुक्तिक तत्व वैयक्तिक मूल्यांकन के कारण होते हैं। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, मूल्यांकनों के सापेक्षिक मानों की संभाव्य गतियों को निर्धारित करने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं होता[19] और इसीलिए हम समस्त विश्लेषण में मूल्यांकन के मान को निश्चित मान लेते हैं। इन निश्चित मान्यताओं से जो निष्कर्ष निकलते हैं केवल वे ही अनिवार्य होते हैं। केवल इसी क्षेत्र में कुछ नियम या व्यवस्था पाई जाती है।

अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अर्थशास्त्र के नियमों का सापेक्षिक मूल्यांकनों के मानों की गति से कोई संबंध नहीं होता और आर्थिक कार्यकारण संबंध केवल उनके मूल आशयों में पाए जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मूल्यांकनों के परिवर्तनों पर कोई विचार नहीं करना चाहिए। निस्संदेह मूल्यांकनों के परिवर्तनों का अध्ययन सैद्धांतिक अर्थशास्त्र का मुख्य विषय रहा है। इसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि एक अर्थशास्त्री के नाते हम व्यक्तिगत मूल्यांकन के परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में नहीं जा सकते। निश्चित तकनीकी परि-

19 यहाँ पर यह जान लेना चाहिए कि इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि माँग-वक्र की संभाव्य गति को निर्धारित करने का कोई साधन नहीं है। यह जानना आवश्यक है कि माँग-वक्र की कल्पना अधिक आधारभूत अनधिमान प्रणाली से निकाली गई है। हमारी यह प्रस्थापना इस दूसरे अर्थ से संबंधित है।

स्थितियों और सापेक्षिक मूल्यांकनों से पैदा होने वाले संबंधों की व्याख्या हम आर्थिक नियम की शब्दावली में कर सकते हैं। इस आधार सामग्री के परिवर्तनों से पैदा होनेवाले परिवर्तनों की भी हम व्याख्या कर सकते हैं। किंतु हम आधार सामग्री में ही होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या नहीं कर सकते। विभिन्न प्रकार के इन परिवर्तनों में भेद करने के लिए आस्ट्रियन अर्थशास्त्री अंतर्जात और बहिर्जात परिवर्तनों में भेद करते हैं।[20] पहले प्रकार के परिवर्तन दी हुई मान्यताओं के तानेबाने में होते हैं और दूसरे प्रकार के परिवर्तन बाहर से आते हैं।

यदि हम एक बार फिर द्रव्य सिद्धांत के निहितार्थों पर विचार करें तो हमें पता लग जाएगा कि फलानुमान की समस्या के लिए यह अंतर कितना संगत होता है। मुद्रा की माँग के बारे में कुछ मान्यताएँ दी होने पर हम आग्रहपूर्वक यह कह सकते हैं कि किसी भी मुद्रा की मात्रा में वृद्धि से उसका बाह्य मूल्य गिर जाएगा। यह एक अंतर्जात परिवर्तन है। यह निष्कर्ष मूल मान्यताओं से निकलता है और जब तक वे मान्यताएँ सही रहती हैं यह निष्कर्ष स्पष्टतया अपरिहार्य होता है। परंतु जैसा कि हाल के कुछ वर्षों में प्रायः कहा जा चुका है कि जब भी हम न्यायसंगत रूप से यह नहीं कह सकते कि यदि विनिमय दर गिरती है तो मुद्रा स्फीति अवश्य होगी, हम यह जानते हैं कि बहुधा ऐसा होता है। हम यह भी जानते हैं कि सरकारें प्रायः मूर्ख और भीरु होती हैं और मुद्रा के कार्यों के बारे में बड़े पैमाने पर गलत धारणाएँ फैली हुई हैं। किंतु विनिमय दरों की गिरावट और नोट छापने का आदेश देने में कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता। कार्य-कारण श्रृंखला में एक नए व्यक्तिगत कार्य से बाधा पड़ जाती है परंतु नोट जारी करने और मुद्रा के बाह्य मूल्य में कमी होने के बीच यह कल्पना की जाती है कि आर्थिक निर्णय करने वाले विभिन्न संबंधित व्यक्तियों के काम करने की जिस प्रवृति की मान्यता की गई है उसमें परिवर्तन नहीं होता। मानो यही होता है कि विनिमय-दरों का सूचकांक नीचे स्तर पर चला जाता है।

इस प्रकार के भेद का एक और जटिल उदाहरण क्षतिपूर्ति वाद-विवाद में मिलता है। मान लीजिए यह दिखाया जा सकता कि जर्मन वस्तुओं की विदेशी माँग अत्यधिक मूल्य निरपेक्ष थी, और कम से कम अल्पावधि में विदेशों को आवश्यक रूप से भेजे जाने वाले द्रव्य का भार उसके घरेलू करों के भार से बढ़ जाता है तब ऐसी स्थिति में यह तर्क दिया जा सकता है कि वर्तमान संकट की स्थिति प्रत्यक्ष रूप से शुद्ध आर्थिक कारकों के कारण पैदा हुई है। अर्थात् आतंक छा

20 देखिए विशेषतया स्ट्रीगल का लेख *Aenderungen in den Daten der Wirtschaft* (*Jahrbücher für Nationalökonomie und Statistik*, खंड cxxviii, पृष्ठ 641–662।

जाने से पहले जो विभिन्न जटिलताएँ थीं वे केवल विश्व की माँग और पूर्ति की निश्चित परिस्थितियों में निहित रुकावटों के कारण थीं।[21] परंतु मान लीजिए यह दिखाया जा सकता हो कि वर्तमान कठिनाई का मुख्य कारण वित्तीय आतंक था, जिसके पीछे यह आशंका थी कि मूल कर-भार की मात्रा बढ़ने से राजनीतिक विद्रोह हो जाएगा, तब यह नहीं कहा जा सकता कि इसके सब कारण आर्थिक थे। कर-भार से होनेवाली राजनीतिक प्रतिक्रिया से बाधा उत्पन्न हो जाती है। विदेश को द्रव्य भेजने से उत्पन्न आतंक बहिर्जात कारणों से पैदा होता है।[22]

अब इस बात में संदेह नहीं कि इस प्रकार का अंतर करना सदा सरल नहीं होता। कुछ मामलों में पारश्रमिक की दरों और काम करने वाले लोगों की संख्या और गुणों की वृद्धि में किसी प्रकार का फलनीय संबंध हो सकता है। ऐसे संबंध को क्या समझा जाए? जहाँ तक इसकी प्रतिक्रिया का संबंध है यह अंतर्जात होता है। परंतु जहाँ तक बाजार माँग के विन्यास का संबंध है यह बहिर्जात होता है। बाज़ार में नए लोग नए मूल्यांकनों के साथ आते रहते हैं। इसी प्रकार जैसा कि प्रोफेसर नाइट ने कहा है, इस बात से स्थिति और भी जटिल हो जाती है कि कुछ समुदायों में कुछ व्यक्तियों को आधार सामग्री में परिवर्तन करने के लिए निश्चित वित्तीय प्रोत्साहन प्राप्त होते हैं। साधनों को अनुसंधानों द्वारा और आर्थिक कार्यकलापों में लगे हुए व्यक्तियों को समझा-बुझा कर तकनीकी धंधों में लगाया जाता रहता है। ऐसे परिवर्तनों में अंतर करना बड़ा

21 डा० माकलुप के लेख *Preisbewegung (Zeitschrift für Natinoalôkonomie,* खंड I, पृष्ठ 555-561) में इस सीमाकारी उदाहरण पर चर्चा की गई है।

22 प्रोफेसर साऊटर लिखते हैं कि उन्हें समझ में नहीं आता कि वह उन लोगों को क्या कहें जो इस प्रकार के भेद करने में आनंद का अनुभव करते हैं (पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 939)। परंतु रीति विधान संबंधी कारणों के अतिरिक्त सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार का भेद करने के अनेक ठोस कारण हैं। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि प्रोफेसर साऊटर को ऐसे मामलों के बारे में किसी सरकार को सलाह देने के लिए कहा जाता तो वह एक सीमा पर आर्थिक कारणों का पता लगाने के बाद यह कहते "परंतु निश्चय ही इसमें एक राजनीतिक समस्या है। क्या लोग इतना भार सहन कर सकेंगे?" और यह कैंटीलन की भाँति यह भी कहते "परंतु यह मेरा काम नहीं है।" या एक सच्चे हेगलवादी की भाँति, सभी क्षेत्रों में अपना दखल मान कर वह यह भी सलाह दे सकते थे कि राजनीतिक दृष्टि से कौन-सी बात संभव है और कौन-सी संभव नहीं। परंतु वह दोनों में अंतर अवश्य करते। वस्तुतः उन्होंने इनको क्या नाम दिया है इसके बारे में हम बाद में मित्रतापूर्वक चर्चा करेंगे।

कठिन है। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि यह प्रणाली निर्विवाद नहीं है। फिर भी आर्थिक क्षेत्र के अधिकांश भाग में यह वर्गीकरण पर्याप्त बोध्य है और स्पष्ट विचार-विमर्श के लिए निश्चित रूप से सहायक है। जब तक मामले और अधिक स्पष्ट नहीं हो जाते तब तक इस भेद को बनाए रखना आवश्यक है।

इसी प्रकार यह भी स्वीकार करना चाहिए कि व्यावहारिक समस्याओं की चर्चा में कुछ प्रकार के बहिर्जात परिवर्तन भी बहुधा अंतर्ग्रस्त होते हैं, जिनका स्पष्ट रूप से आर्थिक कार्यकरण-शृंखला के परिवर्तनों के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। मुद्रा संबंधी समस्याओं के क्षेत्र में यह ख़तरा कि, विनिमय दरों के गिरने से उस क्षेत्र के मुद्रा अधिकारी स्फीति की नीति का अनुसरण कर सकते हैं, निश्चय ही संबंधित चर्चा का एक प्रासंगिक विषय रहेगा। इसी प्रकार टैरिफ नीति के क्षेत्र में संरक्षण टैरिफ लगाने से यह प्रवृति होती है कि घरेलू उत्पादकों के कुछ विशेष हितों में एकाधिकारी समुदाय बन जाते हैं। किसी भी व्यावहारिक प्रशासक को यह संभाव्यता नज़र अंदाज़ नहीं करनी चाहिए। ऐसे मामलों में और इस प्रकार के अन्य अनेक मामलों में मनोवैज्ञानिक संभाव्यताओं की उपच्छाया बनी रहती है जिनको विशुद्धतया व्यावहारिक कारणों से ध्यान में रखना बड़ा सुविधाजनक रहता है।[23]

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार की समस्याओं के लिए बहुत साधारण अंतर्दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है हालांकि यह देखकर हैरानी होती है कि बहुत

23 पहले संस्करण की भाँति यहाँ पर भी मैं इस उल्लेख में प्रयुक्त वास्तविक शब्दों की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। मैं अनुमान लगाने में अत्यधिक सतर्कता के प्रयोजन से नहीं बल्कि अपने कथन को अधिक सही बनाने की दृष्टि से इस बात पर बल दे रहा हूँ। मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूँ कि व्यावहारिक समस्याओं पर विचार करते समय अर्थशास्त्रियों को आधार सामग्री में होने वाले उन परिवर्तनों की संभाव्यताओं पर विचार नहीं करना चाहिए जिनके उत्पन्न करने वाले कारण अर्थशास्त्र के क्षेत्र की सीमाओं से बाहर होते हैं। मेरा विश्वास है कि सामाजिक समस्याओं के संबंध में अनुमान लगाने का यह ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर अर्थशास्त्री अन्य लोगों से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। निश्चय ही यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें उन्होंने अब तक अन्य लोगों से बहुत अधिक काम किया है। इस संबंध में एक प्रजातांत्रिक देश में सीमा-शुल्क आयोग के संभव स्वरूप पर या उत्पादक उपक्रमों के नौकरशाही प्रशासन के लिए आवश्यक बातों पर विभिन्न चर्चाओं के बारे में सोचना ही यह बताने के लिए काफी होगा कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि इस क्षेत्र के सामान्यीकरण और शुद्ध अर्थशास्त्र के क्षेत्र के नियमों के बीच अंतर को स्वीकार करना वांछनीय होगा।

से लोगों में यह भी नहीं होती। इसमें भी संदेह नहीं कि अनेक अंतग्रस्त संभाव्यताएँ भी वस्तुतः निश्चितताएँ ही होती हैं। व्यावहारिक राजनीति के कामचलाऊ सिद्धांत के रूप में किसी बुद्धिमान व्यक्ति को इनसे आपत्ति नहीं हो सकती। फिर भी इस प्रकार के वाद-विवाद में पड़ने वाले सभी व्यक्ति बुद्धिमान नहीं होते। यह वांछनीय है कि जो अर्थशास्त्री यह चाहता है कि अर्थशास्त्र के सुझाव उपयोगी हों उसे अन्य सजातीय विज्ञानों के अनुशासन की भी पूरी जानकारी होनी चाहिए और उनकी सहायता लेने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह भी अत्यधिक वांछनीय है कि उन सामान्यीकरणों में जो उस अर्थ में आर्थिक होते हैं जिस अर्थ में हमने इस शब्द का यहाँ प्रयोग किया है, और उन सामान्यीकरणों में जो सामाजिक उपच्छाया लिए होते हैं और जिनकी उतनी संभावना नहीं होती भेद करना आवश्यक है। अर्थशास्त्रियों को अपनी निश्चतता के क्षेत्र को बढ़ाकर दिखाने की अपेक्षा घटाकर दिखाने से कोई हानि नहीं है। वास्तव में केवल ऐसा करने पर ही वह शक्ति आती है जिससे शेष बातों के बारे में अबाध रूप से विश्वास दिलाया जा सकता है।

7. इस सबका उस प्रश्न से गहरा संबंध है जिसे हमने पिछले अध्याय के अंत में अधूरा छोड़ दिया था। क्या हम अपने सामान्यीकरणों का इतना विस्तार नहीं कर सकते कि उनमें आधार सामग्री संबंधी परिवर्तन भी सम्मिलित किए जा सकें? हम देख चुके हैं कि गत्यात्मक अर्थशास्त्र की—अर्थात् दी हुई परिस्थितियों में होनेवाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप समंजन करनेवाले तंत्र के कार्यचालन का एक कालावधि में विश्लेषण—किस अर्थ में संकलपना करना संभव होता है? क्या हम अपने तकनीक का इतना विस्तार नहीं कर सकते कि हम उन निश्चित परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगा सकें। संक्षेप में क्या हम आर्थिक विकास का कोई संपूर्ण सिद्धांत नहीं बना सकते ?

यदि पिछला विश्लेषण सही है तब इसकी संभावना बहुत संदिग्ध है। यदि हम सभी संभव वस्तुओं की माँग-मूल्य सापेक्षता और सभी कारकों की पूर्ति मूल्य-सापेक्षता हमेशा के लिए निश्चित कर सकें और यह मान सकें कि ये गुणांक, अर्थात् प्रभाव उत्पादन करने वाले ये सब तत्व स्थिर होते हैं तो हम संभवतया एक ऐसी बृहद गणना की कल्पना कर सकते हैं जिसकी सहायता से एक अर्थशास्त्री उसी तरह यह बता सकता है कि आर्थिक दुनिया में किसी भी क्षण कैसी घटना होगी, जिस तरह लाप्लेस के सिद्धांत के अनुसार यह बताया जा सकता है कि भविष्य में किसी भी क्षण सौर जगत की क्या स्थिति होगी। परंतु जैसा कि हम देख चुके हैं विशेष स्थितियों के तत्काल पड़ने वाले प्रभावों का निर्णय करने के लिए चाहे ऐसी गणनाएँ कितनी भी लाभदायक क्यों न हों इनको स्थायी मान्यता देने का कोई आधार नहीं है। हमारा अर्थशास्त्रीय लाप्लेस इस माने में असफल

सिद्ध होगा क्योंकि अर्थशास्त्र में इस प्रकार का कोई स्थिरांक नहीं होता। हमें तो क्षण-क्षण पर अपने विभिन्न गुरुत्वाकर्षण नियमों की फिर से खोज करनी पड़ती है।

परंतु क्या अधिक औपचारिक अर्थ में आधार सामग्री में होने वाले मोटे-मोटे परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगा सकना बिल्कुल संभव नहीं है? हम विशेष रुचियों और विशेष वस्तुओं के बीच परस्पर संबंधों का भले ही पहले से अनुमान न लगा सकते हों किंतु यदि हम बहिर्जात परिवर्तन की संकल्पना में ऊपर बताए गए परिवर्तनों, उदाहरणार्थ आय के परिवर्तनों, के कारण लोगों की प्रतिक्रिया नई खोजों आदि को शामिल कर लें तो क्या हम तब भी संभावित विकास की मोटी रूपरेखा का अनुमान नहीं लगा सकते जिससे कि कुछ लाभ हो सके?

अब इसमें कोई संदेह नहीं कि जहाँ पर जनसंख्या के परिवर्तन का संबंध है यह कल्पना करना संभव है कि यह मुद्रा प्रोत्साहनों से घट-बढ़ सकती है। हम भी अर्थशास्त्र संस्थापकों की भांति एक अंतिम संतुलन की कल्पना कर सकते हैं जिसमें श्रमिकों के भविष्य में मिलने वाले पारिश्रमिक का वर्तमान कम मूल्य उनके पालन पोषण तथा प्रशिक्षण की लागत की वर्तमान कम राशि के बराबर होता है। यह संदिग्ध है कि क्या दासों के स्वामियों के समुदायों के अतिरिक्त अन्य समाजों के लिए इस प्रकार के विशेष फलनीय संबंध की कल्पना से कोई लाभ हो सकता है? हमें याद रखना चाहिए कि इस मामले को छोड़कर अन्य मामलों में हम वैसी कल्पना करने के अधिकारी नहीं हैं जैसी एक समय अर्थशास्त्र संस्थापकों ने की थी अर्थात् जिन लागतों को लाभों के बराबर माना जाता है वे वस्तुनिष्ठ होती हैं। दासों के समाज के बाहर संतुलन की दर वह होगी जिस पर श्रमिकों की नियत पूर्ति बनाए रखने की प्रेरणा मिले। संतुलन दर वह नहीं होगी जिस पर ऐसे श्रमिकों को जीवित रखना संभव हो। फिर भी ऐसी मान्यता की जा सकती है चाहे इसका कुछ भी महत्व क्यों न हो।

परंतु अभी हमने अंतिम संतुलन की एक स्थिति का औपचारिक शब्दों में उल्लेख मात्र किया है। हमने कोई भी ऐसी बात नहीं कही जिससे हम श्रमिकों की पूर्ति की अंतिम स्थिति में होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगा सकें। लोगों के विचारों में इस संबंध में परिवर्तन होते रहते हैं कि परिवार के सदस्यों की संख्या कितनी होनी चाहिए। लोगों की इस संबंध में भी विभिन्न राय हो सकती है कि कितने गुलाम रखे जाएँ। ये बातें हमारे पूर्वानुमानों के तकनीक की परिधि से बाहर की बातें हैं। यदि परिवार के सदस्यों की संख्या के बारे में वर्तमान प्रभाव कुछ सहस्राब्दियों तक और प्रभावी रहे तो संभव है यूरोप की जनसंख्या घटकर कुछ लाख ही रह जाए। कौन कह सकता है कि ऐसे प्रभाव बने रहेंगे या नए धर्मों, कर्तव्यों की नई संकल्पनाओं और अच्छे जीवन की आवश्य-

कताओं की नई संकल्पनाओं के कारण वे प्रभाव समाप्त हो जाएँगे ? हम सब अपना-अपना अनुमान लगा सकते हैं। किंतु निश्चय ही आर्थिक विश्लेषण का इससे कोई संबंध नहीं हो सकता।

जब हम तकनीकी परिवर्तन तथा आविष्कारों के क्षेत्र पर विचार करते हैं तब भी इस स्थिति में कोई सुधार नहीं होता। प्रोफेसर शुंपीटर ने इस बात पर बल दिया है कि यहाँ पर भी संतुलनकारी समंजनों की कल्पना करना कठिन है। शायद किसी विशेष युक्ति से ऐसा किया जा सकता हो। किंतु आगामी परिवर्तनों के स्वरूप का अनुमान लगाने में इनसे क्या सहायता मिलेगी ? और ऐसा अनुमान लगाना विकास के सिद्धांत के लिए अर्थात् ऐसे अर्थ में जिसमें हम इस शब्द का अब प्रयोग कर रहे हैं, आवश्यक होता है। विश्लेषण का कौन-सा तकनीक ऐसे अविष्कारों के प्रभाव का पूर्वानुमान लगा सकता था जिनसे एक ओर तो रेलें सामने आईं और दूसरी ओर अंतर्दहन इंजन ? यदि हम यह सोचते हों कि तकनीक का ज्ञान होने पर हम उससे संबद्ध आर्थिक संबंधों के प्रकारों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं (यह बात वास्तव में विवादास्पद है) तो भी हम तकनीक का कैसे पूर्वानुमान लगा सकते हैं ? क्योंकि ऊपर दिए गए उदाहरण से यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाती है अतः इस बात में कोई सचाई नहीं है कि यह प्रवृति एक ही दिशा में होती है। यदि हम यह मानते हैं कि हमारी प्रणाली की दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है तो हमें इसके लिए अंतिम अनियततत्ववाद की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार जब हम कानूनी ढाँचे के परिवर्तनों के प्रश्न को लेते हैं जिसके भीतर हम जिन समंजनों का अध्ययन करते हैं वे काम करते हैं तो वही स्थिति दिखाई देती है। एक महत्वपूर्ण अर्थ में राजनीति विज्ञान की विषयवस्तु अर्थशास्त्र की हमारी परिभाषा के क्षेत्र के अंतर्गत समझी जा सकती है। शासन-प्रणाली संपत्ति-संबंध आदि चुनाव के परिणाम समझे जा सकते हैं। यह वांछनीय है कि अधिक विख्यात विश्लेषण की रीतियों से मिलती-जुलती रीतियों की सहायता से इस संकल्पना की और खोज की जाए। परंतु हम पहले ही कैसे बता सकते हैं कि कौन-सा चुनाव किया जाएगा ? हम राजनीतिक अनधिमान तंत्र की मुख्य बातों का कैसे पूर्वानुमान लगा सकते हैं ?

यह भली भाँति विदित है कि राजनैतिक स्वरूपों के विकास का निर्वचन इस प्रकार किया गया है कि वह आर्थिक शक्ति के वितरण और 'आर्थिक हितों' के परस्पर प्रभाव का परिणाम होता है। और इस बात से इन्कार करना मूर्खता होगी कि कुछ सीमाओं के भीतर इस प्रकार की व्याख्याएँ की जा सकती हैं जो बोधगम्य तो होती ही हैं परंतु सूक्ष्म परीक्षा करने पर यह पता चलता है कि जिन सीमाओं के भीतर इस प्रकार की बातें संभव होती हैं वे प्रायः उससे

कहीं संकुचित होती हैं जितना कि उन्हें बहुधा माना जाता है।

शायद हम विशेष राजनीतिक परिवर्तनों की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं कि उनमें उत्पादकों के विशेष वर्गों के 'हित' निहित होते हैं। हमें बाजार-व्यवस्था से कम से कम अल्पावधिक हित के स्थूल और बाह्य अभिसूचक अवश्य प्राप्त हो सकते हैं जिनकी वस्तुनिष्ठ परिभाषा की जा सकती है। परंतु इस प्रकार की अधिकतर महान व्याख्याओं की युक्तिसंगति इस मान्यता पर आधारित होती है कि बृहत्तर वर्ग के हितों की भी वस्तुनिष्ठ परिभाषा की जा सकती है। यह सच नहीं है। अतः आर्थिक विश्लेषण इस प्रकार की आर्थिक व्याख्याओं को औचित्य प्रदान नहीं करता अपितु इस से यह पता चलता है कि यह निश्चित रूप से झूठ है। इन सभी व्याख्याओं में जिन 'हितों' की संकल्पना की गई है वे वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ हैं। वह लोगों के विश्वासों और अनुभूतियों पर निर्भर होती है और अर्थशास्त्र में ऐसा कोई तकनीक नहीं है जिससे हम भावनाओं के परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगा सकें। हाँ, इन परिवर्तनों के होने के बाद हम इनके प्रभावों का अवश्य अंदाज़ा लगा सकते हैं। हम काल्पनिक परिवर्तनों के प्रभावों का पूर्वानुमान कर सकते हैं। हम उनके वैकल्पिक रूपों पर विचार कर सकते हैं और उनकी स्थिरता तथा परिवर्तन की प्रवृत्तियों की जाँच कर सकते हैं। परंतु जहाँ तक किसी ऐसे परिवर्तन की प्रक्रिया का पूर्वानुमान लगाने के संबंध में हमारी वास्तविक क्षमता का प्रश्न है, जो स्पष्ट रूप से आकस्मिकता अनुनय, अज्ञात शक्ति जैसे विजातीय तत्वों पर निर्भर होती है, तो हममें जरा भी विनम्रता होगी हम तुरन्त यह मान लेंगे कि उस दृष्टि से हमारे अनुमान बड़े स्थूल हैं।

इस प्रकार अंत में अर्थशास्त्र का अध्ययन, जो हमें अर्थशास्त्र के नियमों का क्षेत्र दिखाता है अर्थात् उन सिद्धांतों को स्पष्ट करता है जिसके अधीन मानव आचरण होते हैं, वह हमें उस क्षेत्र का भी दर्शन कराता है जिसमें इस प्रकार के सिद्धांत लागू नहीं होते। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि इस क्षेत्र में कोई नियम या सिद्धांत नहीं होते। हम इस संबंध में कोई परीक्षा नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थशास्त्र की दृष्टि से कुछ ऐसी बातें होती हैं जिन्हें अंतिम आधार सामग्री के रूप में हमें स्वीकार करना पड़ता है।

अध्याय 6

अर्थशास्त्र का महत्व

1. अब हम अपने अध्ययन के अंतिम चरण में प्रवेश करते हैं। हम अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु का सर्वेक्षण कर चुके हैं। हम इसके सामान्यीकरणों की प्रवृति और वास्तविकता की व्याख्या करने में उनके महत्व की परीक्षा कर चुके हैं। अंत में हम अपने आपसे यह पूछ सकते हैं कि इन सब बातों का सामाजिक जीवन और व्यवहार से क्या संबंध है? अर्थशास्त्र का हमारे व्यावहारिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

2. कभी-कभी यह सोचा जाता है कि आधुनिक अर्थशास्त्र के सिद्धांत में होने वाले कुछ विकास स्वयमेव कुछ ऐसे मानक प्रदान करते हैं जो व्यावहारिक राजनीति के लिए आधार बन सकते हैं। यह समझा जाता है कि ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण नियम वितरण को प्रभावित करने वाले सभी प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक कार्यकलापों के लिए एक कसौटी प्रस्तुत करता है। यह कहा जाता है कि यह नियम ऐसी प्रत्येक बात का समर्थन करता है जो अधिकाधिक सामान्यता लाने में सहायक हो और उसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव न पड़े। इसके विपरीत असमानता बढ़ाने वाली बातों को यह अनुचित बताता है। इन प्रस्थापनाओं को बड़े-बड़े विद्वान भी स्वीकार कर चुके हैं। लोक वित्त के सिद्धांतों के विषय में जो कुछ लिखा जाता है उसमें से अधिकतर बातों का आधार यही प्रस्थापनाएँ हैं।[1] प्रोफेसर केनन जैसे विद्वान ने फेबियन समाजवादियों के प्रति अर्थशास्त्रियों के रुख का औचित्य सिद्ध करने के लिए इन प्रस्थापनाओं का उपयोग किया है।[2]

व्यावहारिक अर्थशास्त्र की अनगिनत पुस्तकों में प्रस्थापनाओं का व्यापक समर्थन किया गया है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि अधिकतर अंग्रेज अर्थशास्त्री इनको स्वयंसिद्ध मानते हैं फिर भी मैं थोड़े-बहुत संकोच के साथ यह कहने

[1] देखिए उदाहरणार्थ एजवर्थ, 'दि प्योर थियोरी आफ टेक्सेशन' (पेपर्स रिलेटिंग टु पोलिटिकल इकानोमी, खंड 2, पृष्ठ 63 और तत्पश्चात।

[2] देखिए इकोनॉमिक्स एंड सोशियलिज्म (दि इकोनॉमिक आउट लुक, पृष्ठ 59-62)

का साहस कर सकता हूँ कि वास्तव में इन प्रस्थापनाओं के पीछे वैज्ञानिक अर्थशास्त्र का कोई भी सिद्धांत नहीं है और इंगलैंड के बाहर इनकी अधिकांशतया कोई मान्यता नहीं रही है।

इन प्रस्थापनाओं के समर्थन में जो तर्क दिये जाते हैं वे भली-भाँति विदित हैं परंतु यह दिखाने के लिए कि किस स्थान पर उनमें दोष हैं उनकी स्पष्ट रूप से पुनरावृत्ति करना लाभप्रद होगा। ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण के नियम का यह आशय है कि किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु की जितनी अधिक राशि होती है, उसके लिए, उस वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उतना ही कम महत्व होता है। इसलिए यह कहा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति की वास्तविक आय अधिक होती है तो आय की अतिरिक्त इकाइयों का उसके लिए कम महत्व होता है। अत: अमीर आदमी की आय का सीमांत तुष्टिगुण गरीब आदमी की आय के सीमांत तुष्टिगुण से कम होता है। इसलिए यदि धन का हस्तांतरण किया जाता है और इनका उत्पादन पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता तो इस प्रकार के हस्तांतरणों से कुछ तुष्टिगुण को बढ़ाया जा सकता है। अतएव ऐसे हस्तांतरण "आर्थिक दृष्टि से उचित होते हैं" इति सिद्धं।

प्रथम दृष्टि में यह तर्क बड़ा ही प्रबल दिखाई देता है परंतु सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि यह ऊपरी तौर से ही सही है। यह तर्क ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण की संकल्पना का विस्तार एक ऐसे क्षेत्र में करने पर आधारित है जहाँ पर इस नियम का विस्तार करना तर्कसंगत नहीं होता। यहाँ पर जिस रूप में 'ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण के नियम' का आश्रय लिया गया है वह किसी भी प्रकार आर्थिक वस्तुओं की संकल्पना से नहीं निकलता और इसमें ऐसी मान्यताएँ की गई हैं, जो चाहे सच हों या झूठ किसी भी तरह अवलोकन या अंतदर्शन द्वारा नहीं परखी जा सकतीं। यहाँ हम जिस प्रस्थापना की परीक्षा कर रहे हैं उसमें विभिन्न व्यक्तिगत अनुभवों की वैज्ञानिक तुलनीयता का तत्वमीमांसक प्रश्न निहित है। अत: इस पर और विचार करने की आवश्यकता है।

ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण नियम, जैसा कि हम देख चुके हैं, इस संकल्पना से निकाला गया कि साधन उन उद्देश्यों की तुलना में कम होते हैं जिनकी वे पूर्ति करते हैं। इसमें यह मान्यता की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए वस्तुएँ, उसकी आवश्यकता के अनुसार अपने-अपने महत्व की दृष्टि से एक क्रम में लगाई जा सकती हैं। जिस प्रकार वह उनको अधिमान देगा उसके मुताबिक हम कह सकते हैं कि उसके लिए वस्तु का एक प्रकार का प्रयोग दूसरे प्रकार के प्रयोग की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। इस आधार पर हम इस क्रम की तुलना, जिसमें एक

व्यक्ति कुछ विकल्पों को अधिमान देता है, उस क्रम से कर सकते हैं जिसमें दूसरा व्यक्ति उन विकल्पों को अधिमान देता है। इस प्रकार हम विनिमय के पूर्ण सिद्धांत की रचना कर सकते हैं।[3]

परंतु यह मानना कि जिस क्रम में एक व्यक्ति कई विकल्पों को रखेगा वह निर्धारित किया जा सकता है, और ऐसे व्यक्ति के अधिमान विन्यास को दूसरे व्यक्ति के विन्यास से तुलना करना एक बात है, परंतु यह मानना कि इस प्रकार के विन्यास के पीछे कुछ ऐसे परिमाण होते हैं जिनकी भी तुलना की जा सकती है, सर्वथा दूसरी बात है। आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में ऐसी मान्यता करने की जरूरत नहीं है। यह एक ऐसी किस्म की मान्यता है जो सापेक्षिक मूल्यांकन के वैयक्तिक मान की मान्यता से बिल्कुल भिन्न है। विनिमय सिद्धांत में यह मान्यता की जाती है कि 6 पैंस में खरीदी गई रोटी का जो महत्व मेरे लिए है उसकी तुलना बाज़ार में आने वाली अन्य चीज़ों पर खर्च किए गए दूसरे 6 पैंसों के महत्व से कर सकता हूँ और इसमें यह भी माना जाता है कि इस प्रकार व्यक्त मेरे अधिमान क्रम की तुलना बेकर के अधिमान क्रम से की जा सकती है परंतु इसमें यह मान्यता नहीं की जाती कि रोटी पर 6 पैंस खर्च करने से मुझे जो तुष्टि मिलती है उसकी तुलना किसी भी समय उस तुष्टि से करना आवश्यक है जो बेकर को 6 पैंस पाने पर होती है। यह तुलना सर्वथा भिन्न प्रकार की तुलना है। संतुलन सिद्धांत में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है और इस सिद्धांत की मान्यताओं में उसका कोई स्थान नहीं है। यह एक ऐसी तुलना है जो अनिवार्यतया किसी भी वास्तविक विज्ञान के क्षेत्र के बाहर की वस्तु होती है। यह कहना कि महत्व की दृष्टि से 'क' का अधिमान 'ख' के अधिमान से ऊँचा है, इस कथन से बिल्कुल भिन्न है कि 'क' 'य' के मुकाबले 'ल' को पसंद करता है और 'ख' 'य' और 'ल' को एक भिन्न क्रम में पसंद करता है। इसमें रूढ़िगत मूल्यांकन का तत्व निहित है। इसलिए यह मुख्यतया आदर्श मूलक है। इसका शुद्ध विज्ञान में कोई स्थान नहीं है।

यदि यह बात अब भी स्पष्ट है तो निम्नलिखित बातें निर्णायक होंगी। मान लीजिए 'क' की पसंद के बारे में कोई मतभेद पैदा हो जाता है। मान

3 इस सामान्यीकरण को पूरी तरह न समझ सकने के कारण इतनी मिथ्या धारणाएँ हुई हैं कि डा० हिक्स ने सुझाव दिया है कि इसका वर्तमान नाम बिल्कुल छोड़ दिया जाए और इसके स्थान पर इसका नाम 'स्थानापन्नता की बढ़ती हुई दर का नियम' रख दिया जाए। व्यक्तिगत रूप में मैं रूढ़ शब्दों को ही अच्छा समझता हूँ फिर भी स्पष्ट है कि इस सुझाव के पक्ष में बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

लीजिए मेरा यह विचार था कि किसी एक कीमत पर उसे 'ल' की अपेक्षा 'य' वस्तु अधिक पसंद थी और आय का यह ख्याल था कि उस कीमत पर उसे 'य' की अपेक्षा 'ल' वस्तु अधिक पसंद थी। हम अपने मतभेदों को विशुद्धतया वैज्ञानिक ढंग से सरलतापूर्वक सुलझा सकते हैं। या तो हम 'क' को स्वयं साफ़-साफ़ बताने को कह सकते हैं। अथवा यदि हम यह विश्वास नहीं करते कि 'उ' के द्वारा अंतदर्शन संभव हो सकता है तब हम उसे विचाराधीन उद्दीपन का प्रयोग कर के उसके व्यवहार का अवलोकन कर सकते हैं। दोनों में से किसी भी परीक्षा द्वारा हम अपने मतभेद को दूर कर सकते हैं।

परंतु मान लीजिए हमारा मतभेद 'क' को 1000 पौंड से होने वाली तुष्टि और 'ख' को उससे दुगुनी आय से होनेवाली तुष्टि के बारे में है। तब उनसे पूछने से कोई लाभ नहीं होगा। मान लीजिए उन दोनों में भी इस संबंध में मतभेद है। 'क' कह सकता है कि उसकी सीमांत तुष्टि 'ख' की सीमांत तुष्टि से अधिक है और 'ख' कह सकता है कि नहीं उसकी सीमांत तुष्टि 'क' की सीमांत तुष्टि से अधिक है। हमें यह मालूम करने के लिए कि यहाँ कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है, अंध व्यवहारवादी बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'क' और 'ख' की तुष्टियों के परिमाण की तुलना के लिए कोई साधन नहीं है। यदि हम उनके रुधिर प्रवाह की परीक्षा करके अनुमान लगाना चाहें तो वह रक्त की परीक्षा होगी, तुष्टियों की नहीं। अंतदर्शन द्वारा 'क' इस बात को नहीं आँक सकता कि 'ख' के मन में क्या हो रहा है और इसी प्रकार 'ख' यह नहीं आँक सकता कि 'क' के मन में क्या हो रहा है। विभिन्न लोगों की तुष्टियों की तुलना करने का कोई साधन नहीं है।

बेशक इधर हम दैनिक जीवन में निरंतर यह मान्यता करते हैं कि इनकी तुलना की जा सकती है परंतु विभिन्न समयों और विभिन्न स्थानों पर वास्तव में की गई ऐसी मान्यताओं की भिन्नता से यही सिद्ध होता है कि ये रूढ़ प्रकार की होती हैं। पाश्चात्य प्रजातांत्रिक प्रणाली में हम कुछ प्रयोजनों के लिए यह मान्यता कर लेते हैं कि एक ही जैसी परिस्थितियों के लोगों में समान तुष्टि प्राप्त कर सकने की क्षमता होती है। जिस प्रकार न्याय के प्रयोजन के लिए हम यह मान्यता करते हैं कि कानून के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों का समान परिस्थितियों में समान उत्तरदायित्व होता है उसी प्रकार लोक वित्त के प्रयोजन के लिए हम यह मान्यता करने के लिए तैयार हो जाते हैं कि अर्थलाभ में लगे हुए लोगों में एक जैसी परिस्थितियों में, समान आय से समान तुष्टि का अनुभव कर सकने की क्षमता होती है। यद्यपि इस प्रकार की मान्यता करना सुविधाजनक होता है फिर भी यह सिद्ध करने का कोई तरीका नहीं है कि यह मान्यता निश्चित

तथ्यों पर आधारित होती है। और वस्तुतः यदि किसी दूसरी सभ्यता में पला हुआ व्यक्ति हमसे यह कहे कि हमारी मान्यता अशुद्ध है और उसकी जाति या नसल के लोग हीन जाति (या नसल) के लोगों की अपेक्षा किसी निश्चित आय से दस गुणा अधिक तुष्टि का अनुभव कर सकने की क्षमता रखते हैं तो हम उसकी बातों का खंडन नहीं कर सकते। हम उसका मज़ाक उड़ा सकते हैं। हम क्रोध से आग-बबूला हो सकते हैं। हम कह सकते हैं कि उसका मूल्यांकन घृणास्पद है। उससे गृह युद्ध छिड़ सकता है, उससे दुःख बढ़ेगा, अनुचित विशेषाधिकारों की समस्या खड़ी हो जाएगी, इत्यादि इत्यादि। परंतु हम यह नहीं सिद्ध कर सकते कि उसका कथन वस्तुनिष्ठ रूप से गलत था। इसी प्रकार हम यह नहीं दिखा सकते कि हम ठीक हैं। चूँकि हम अपने दिलों में यह नहीं मानते कि समान साधनों से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को समान तुष्टि होती है, इसलिए यह दिखाते रहना कि इन बातों के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार है वास्तव में हमारी हिमाकत होगी। उनको केवल सामान्य सुविधा के आधार पर ही उचित बताया जा सकता है। दायित्वों के अंतिम मानकों की दुहाई देकर भी उनको उचित सिद्ध किया जा सकता है। किंतु किसी प्रकार के वास्तविक विज्ञान के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता।

इसलिए जिन प्रस्थापनाओं की हम परीक्षा कर रहे हैं उन पर ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण के नियम को लागू करना अनुचित होगा। अतएव इस पर आधारित तर्कों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि इस बात को स्वीकार कर लेने से व्यावहारिक अर्थशास्त्र की वर्तमान चर्चाओं में जिन बातों को वैज्ञानिक सामान्यीकरणों का दर्जा दिया गया है उनके दावों में पर्याप्त कमी हो जाती है। ह्रासमान सापेक्षिक तुष्टिगुण (अनधिमान वक्र का नीचे की ओर उत्तल होना) की संकल्पना से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि अमीरों से गरीबों में धन के हस्तांतरण करने से कुल तुष्टि बढ़ जाएगी। इससे यह पता नहीं चलता कि स्थिर राशि के प्रति व्यक्ति कर (मथौत) की अपेक्षा आरोही आयकर सामाजिक कल्याण के लिए कम अहितकर होता है। वास्तव में लोक-वित्त के सिद्धांत के उस सारे भाग में जिसका संबंध सामाजिक तुष्टि से होता है भिन्न महत्व की मान्यता की जानी चाहिए। नीतिशास्त्र के एक आधार तत्व के विकास के रूप में वह रुचिकर है परंतु वह शुद्ध सिद्धांत की किन्हीं वास्तविक मान्यताओं का परिणाम नहीं होता। यह अँग्रेज़ अर्थ-शास्त्रियों और उपयोगितावादी अर्थशास्त्रियों के ऐतिहासिक संपर्क का आक-स्मिक परिणाम मात्र है और अगर यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार कर ली जाए तो उससे उपयोगितावादी आधार तत्व, जिससे इसकी व्युत्पत्ति हुई है, और

विश्लेषणात्मक अर्थशास्त्र, जिससे इसको संबद्ध किया गया है, दोनों ही अच्छे रहेंगे और अधिक संप्रत्यायक मालूम होंगे।[4]

परंतु मान लीजिए ऐसा नहीं किया जाता। मान लीजिए हम लोग रूढ़ मान्यताओं के वास्तविक स्वरूप, विभिन्न अनुभवों की संमेयता, तुष्टि गामर्थ्य की समता आदि पर विश्वास कर लेते हैं। और यह भी मान लीजिए कि इस आधार पर आगे बढ़ते हुए हम यह सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि कुछ नीतियां सामाजिक तुष्टि को बढ़ाती हैं, तब भी यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा अनुचित होगा कि इन नीतियों का अवश्य अनुसरण करना चाहिए क्योंकि इस निष्कर्ष

4 देखिए डेविनपोर्ट वेल्यू एंड डिस्ट्रीब्यूशन, पृष्ठ 301 और 571; बेन्हम इकोनॉमिक वेलफेयर (इकोनॉमिका, जून 1930, पृष्ट 173-187), एम० सेंट ब्रॉन, *Theorie der Staatlichen Wirtschaftspolitik*, पृष्ठ 41-44। प्रोफेसर इरविंग फिशर की, जो 'सीमांत तुष्टिगुण' को मापने के लिए अपनी सांख्यिकीय रीति को औचित्य प्रदान करने के लिए चिंतित दिखाई देते हैं, अपनी प्रक्रिया के लिए इस कथन से बेहतर युक्ति नहीं दे सकते कि "इस संबंध में दार्शनिकों का संदेह ठीक या उचित मालूम होता है किंतु जीवन की समस्या किसी की प्रतीक्षा नहीं कर सकती या करती है। (इकोनॉमिक ऐसेज इन आनर ऑफ जान बेट्स क्लर्क, पृष्ठ 180)। मुझे यह प्रतीत नहीं होता कि व्यक्तियों के पारस्परिक सीमांत तुष्टिगुण को मापने की समस्या एक विकट समस्या नहीं है। परंतु चाहे यह विकट है या नहीं यह बात जरूर है कि प्रोफेसर फिशर ने अपनी समस्या को केवल रूढ़ मान्यता के सहारे हल किया है। यह मानने से कि रूढ़ मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार होता है, यह कहीं पर प्रतीत नहीं होता कि इससे व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है। यह बताने से कि तुष्टि का अनुभव करने की क्षमता मुझ में उतनी ही है जितनी मेरे पड़ौसी में है, मैं कभी विनीत डेमोक्रेट नहीं बन सकता। इससे मुझमें तिरस्कार का भाव व्याप्त हो जाता है। परंतु मैं इस कथन को मानने को तैयार हूँ कि इस प्रकार की मान्यता करना सुविधाजनक होता है। मैं इस तर्क को मानने को तैयार हूँ—वस्तुत: जातिवाद या सर्वहारावाद की किवदंतियों में विश्वास रखने वाले लोगों से भिन्न मेरा दृढ़ विश्वास है—कि आधुनिक परिस्थितियों में जिन समाजों की इससे विपरीत कोई अन्य धारणा है उनमें एक सहज अस्थिरता का पाया जाना अनिवार्य है। किंतु हम उन दिनों से बहुत आगे बढ़ आए हैं जब लोगों को इस बहाने प्रजातंत्र को स्वीकार करने के लिए कहा जाता था कि मूल्यांकन वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित होते हैं। मुझे डर है कि प्रोफेसर रेगनार फ्रिश की अत्यंत पटुता भरी पुस्तक 'मेथड्स फ़ार मेज़रिंग मार्जिनल यूटिलिटी' पर भी उक्त आलोचना लागू होती है।

से फिर से यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि इन अर्थों में तुष्टि की वृद्धि क्या सामाजिक दृष्टि से आवश्यक थी ?[5]

यदि रूढ़ मूल्यांकनों के तत्वों को अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों में मिलाकर उनका विस्तार कर लिया जाए तो भी उनमें कोई ऐसी बात नहीं है जो इस प्रश्न का निर्णय कर सके। जिन प्रस्थापनाओं में यह बात अंतर्ग्रस्त होती है कि "स्थिति क्या होनी चाहिए वे उन प्रस्थापनाओं से पूर्णतया भिन्न होती हैं जिनमें यह बात अंतर्ग्रस्त होती है "स्थिति क्या है"। परंतु इसकी हम आगे चर्चा करेंगे।[6]

3. मूल्य-पद्धति में निर्बाध संतुलन की कसौटी को 'आर्थिक औचित्य' की कसौटी बताने के प्रयत्न की भी इन्ही शब्दों में आलोचना की जा सकती है। संतुलन के शुद्ध सिद्धांत से हम यह समझ सकते हैं कि यदि विभिन्न आर्थिक कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों के मूल्यांकन और कानूनी तथा तकनीकी पर्यावरण निश्चित हों तो हम एक ऐसी संबंध पद्धति की कल्पना कर सकते हैं जिसमें परिवर्तन होने की प्रवृत्ति नहीं होगी। इससे हम यह बता सकते हैं कि यदि संबंधित व्यक्तियों के मूल्यांकन निश्चित हों तो संसाधनों के किस वितरण से माँग की सबसे अधिक तुष्टि होगी परंतु यह स्वतः कोई नीतिशास्त्रीय अनुशास्तियाँ नहीं प्रदान करता। यह दिखाना कि किन्हीं परिस्थितियों में माँग, कुछ वैकल्पिक परिस्थितियों की तुलना में, अधिक अच्छी तरह से पूरी की जा सकती है, यह सिद्ध नहीं करता कि ऐसी परिस्थितियाँ वांछनीय हैं। संतुलन सिद्धांत के इर्द-गिर्द अनुमोदनों की कोई उपच्छाया नहीं है। संतुलन तो केवल संतुलन ही है।

अब निस्संदेह संतुलन की संकल्पना का यह सार है कि यदि प्रारंभिक साधन निश्चित हों तो प्रत्येक व्यक्ति कुछ निर्बाध चुनाव करता है जो केवल भौतिक पर्यावरण और आर्थिक कार्यों में लगे हुए अन्य व्यक्तियों के चुनाव की ऐसी ही स्वतंत्रता के उपभोग द्वारा ही सीमित होते हैं। संतुलन की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपनी अधिमान रेखा पर किसी भी दूसरे बिंदु पर जाने के लिए स्वतंत्र होता है परंतु वह ऐसा नहीं करता क्योंकि अभ्युपगमित परिस्थितियों में किसी भी दूसरी स्थिति को कम तरजीह दी जाएगी। यदि राजनीतिक दर्शन के कुछ आदर्श निश्चित हों तो यह संकल्पना उन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक सामाजिक संस्थाओं के प्रकारों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाल सकती है।[7] किंतु हो

5 जहाँ तक मनोवैज्ञानिक सुखवाद एक व्यक्ति से आगे बढ़ जाता है, उसमें कोई अवैज्ञानिक मान्यता हो सकती है, किंतु यह स्वतः नीतिशास्त्रीय सुखवाद के लिए कभी भी आवश्यक औचित्य नहीं प्रदान कर सकता।

6 देखिए आगे, अनुभाग 4।

7 देखिए प्रोफेसर प्लांट के दो महत्वपूर्ण लेख, 'कोआर्डीनेशन एंड कांपटीशन इन ट्रांसपोर्ट' (जरनल आफ इंस्टीट्यूट आफ ट्रांसपोर्ट, खंड 13, पृष्ठ

सकता है कि चुनाव करने की स्वतंत्रता को अंतिम लक्ष्य न माना जाए। दूसरे सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना, जिनमें चुनाव की अधिकतम स्वतंत्रता मिल सके, वांछनीय न माना जाए। यह दिखाना कि कुछ परिस्थितियों में इस प्रकार की अधिकतम स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है यह नहीं सिद्ध करता कि इन परिस्थितियों को अवश्य लाना चाहिए।

यह भी हो सकता है कि कीमतों की पेशकशों में उद्देश्यों को निर्धारित करने की संभावना के बारे में स्पष्टतया कुछ अन्य सीमाएँ भी हों। ऐसी परिस्थितियाँ बनाने के लिए जिनमें संतुलनकारी प्रवृत्तियाँ पैदा हो सकें, एक ऐसा कानूनी ढाँचा होना आवश्यक है, जो मूल्यों से तो प्रभावित न हो फिर भी जो मूल्यों की पारस्परिक क्रिया को व्यवस्थित ढंग से प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हो।[8]

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक परिस्थितियों को दूर करना, संक्रामक रोगों से प्रतिरक्षा करना आदि ऐसे उद्देश्य हैं जिनको केवल एक व्यक्ति पूरा नहीं कर सकता। शहरों में यदि एक आदमी स्वच्छता के नियमों का पालन नहीं करता तो सारे लोग महामारी का शिकार हो सकते हैं। इस प्रकार के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उत्पादन कारकों का ऐसे ढंग से उपयोग करना पड़ेगा जो उस ढंग से पूरी तरह मेल नहीं खाता, जिसमें निश्चित वैयक्तिक साधन पूर्ण स्वतंत्रता से खर्च किए जाते हैं और यह स्पष्ट है कि समाज, नागरिकों के राजनीतिक निकाय के रूप में ऐसे उद्देश्य निर्धारित कर सकता है जो अपने व्यक्तियों के चुनाव की स्वतंत्रता में कहीं अधिक हस्तक्षेप करते हों। आर्थिक विश्लेपण में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो अपने आप इन उद्देश्यों को अच्छा या बुरा कहने के लिए कोई औचित्य प्रदान कर सके। आर्थिक विश्लेपण तो केवल यह बता सकता है कि विभिन्न प्रकार के चुने हुए उद्देश्यों के बारे में उत्पादन के साधनों के विभिन्न प्रयोगों का क्या प्रभाव होगा।

इस कारण से कुछ नीतियों को आर्थिक दृष्टि से 'किफायती' या 'ख़र्चीली' बताने की प्रवृति बड़ी भ्रामक होती है। किफायत की कसौटी, जो हमारी मूल परिभाषाओं से व्यक्त होती है वह यह है कि निश्चित उद्देश्यों को कम-से-कम साधनों से पूरा किया जाए। इसलिए यदि कोई नीति किन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यकता से अधिक दुर्लभ साधनों का प्रयोग करवाती है तो

127-136) और 'ट्रेंड्स इन बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन' (इकोनॉमिका, संख्या 35, पृष्ठ 45-62)

8 आर्थिक कार्यकलापों के कानूनी ढाँचे के महत्व के बारे में, जिसे डा० स्ट्रीगल अर्थव्यवस्था का 'संगठन' कहते हैं, डा० स्ट्रीगल की पूर्व उद्धृत पुस्तक बहुत ही ज्ञानवर्धक है। देखिए उनकी पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृ० 85-121।

निश्चय ही हम इसे 'खर्चीली' नीति कह सकते हैं। अगर साधनों का उपयोग करने के संबंध में वे उद्देश्य निश्चित हों, जिनसे नीति का मूल्यांकन होता है तो उन नीतियों को पूर्ण बोधगम्यता के साथ किफायती अथवा खर्चीली कहा जा सकता है।

परंतु उद्देश्यों को ही किफायती अथवा खर्चीली कहना बोधगम्य नहीं है। जैसाकि हम पहले ही देख चुके हैं कोई भी उद्देश्य आर्थिक नहीं होता।[9] निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने का ढंग ही 'किफ़ायती' या 'खर्चीला' हो सकता है। हम यह नहीं कह सकते कि कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करना फिजूल है इसलिए उनको प्राप्त करना 'खर्चीला' है। हम उद्देश्यों की प्राप्ति को तभी खर्चीला कह सकते हैं जब उन पर अनावश्यक रूप से अधिक साधन खर्च किए जाएँ।

अतः यदि युद्ध में अंतर्निहित सभी समस्याओं और कुर्बानियों को ध्यान में रखकर यह निर्णय किया जाता है कि युद्ध के जो प्रत्याशित परिणाम होंगे उनके लिए वह कुर्बानी की जानी चाहिए तो यह कहना ठीक नहीं होगा कि युद्ध छेड़ना अपव्यय करना है। हम इसे तभी अपव्यय कह सकते हैं जब इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यकता से अधिक कुर्बानी की जाए।

यही बात उन नीतियों पर लागू होती है जो विशेष रूप से आर्थिक मानी जाती हैं। यहाँ 'आर्थिक' शब्द का प्रयोग प्रचलित संभ्रांत अर्थ में ही किया गया है। यदि हम यह मान लें कि लोक नीति का उद्देश्य उन परिस्थितियों की रक्षा करना है जिनके अंतर्गत व्यक्तिगत माँगें, जो कीमतों के रूप में व्यक्त होती हैं, दी हुई परिस्थितियों में यथासंभव अधिक मात्रा में पूरी हो सकें तो, कुछ बहुत ही विशेष परिस्थितियों को छोड़कर जिनकी जानकारी नीति कार्यान्वित करने वालों को नहीं होती, उचित होगा कि गेहूँ पर लगाया जानेवाला संरक्षण टैरिफ़ अपव्ययी होगा क्योंकि यह उस उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होता है। शुद्ध रूप में तटस्थ विश्लेषण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। परंतु यदि जिस लक्ष्य को सामने रखा गया है वह इन उद्देश्यों से परे की वस्तु हो अर्थात् यदि उपभोक्ताओं द्वारा दी जाने वाली कीमतों पर आधारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह टैरिफ न लगाया हो अपितु इस उद्देश्य से भिन्न किसी और उद्देश्य के लिए हो जैसे अनाज की सप्लाई को युद्ध के खतरों से बचाने के लिए, तो केवल इसी कारण यह कहना उचित नहीं होगा कि यह टैरिफ अपव्यय करने-वाला है क्योंकि यह उपभोक्ताओं में दरिद्रता फैलाता है। ऐसी परिस्थितियों में इसको इस आधार पर ही अपव्यय करने वाला ठहराया जा सकता है कि इस

9 देखिए पीछे अध्याय 2, अनुभाग 2 और 3।

उद्देश्य की पूर्ति के लिए टैरिफ लगाने में साधनों का अनावश्यक रूप से त्याग करना पड़ता है।[10]

इस प्रसंग में हम न्यूनतम मजदूरी विनिमय की भी परीक्षा कर सकते हैं। सैद्धांतिक अर्थशास्त्र का यह सामान्यीकरण भली भाँति विदित है कि मजदूरी की ऐसी दर से जो संतुलन स्तर से ऊँची होती है, आवश्यक रूप से बेरोजगारी बढ़ेगी और इससे पूँजी के मूल्य में कमी हो जाएगी। आर्थिक संतुलन के सिद्धांत की यह एक बहुत ही प्रारंभिक व्युत्पत्ति है। इंगलैंड का युद्ध के बाद का इतिहास इसके सही होने की पुष्टि करता है।[11]

यह प्रचलित मत कि इन 'स्थैतिक' निगमनों की प्रामाणिकता, मजदूरी के दबाव द्वारा उत्पन्न होनेवाले 'गत्यात्मक' सुधारों की संभाव्यता से रद्द हो जाती है, इस तथ्य की अवहेलना पर आधारित है कि ये सुधार स्वयं एक प्रकार से पूँजी के अपव्यय को अभिव्यक्त करते हैं।[12]

परंतु ऐसी नीति को हम अवश्यमेव अपव्यय की नीति नहीं कहेंगे। यदि किसी समाज में ऐसी नीति का अनुसरण करने से सामान्यतया यह समझा जाता है कि किसी दर से कम वेतन न देने से जो लाभ होता है वह बेरोजगारी और अंतर्ग्रस्त अलाभों से होने वाली हानि से अधिक होता है तो इस नीति को अपव्यय की नीति नहीं कहा जा सकता है। एक निजी व्यक्ति के रूप में हम भले ही यह सोच सकते हैं कि अधिमानों की इस प्रकार की पद्धति में समानता को दूर करने के एक झूठे उद्देश्य के निमित्त वास्तविक समृद्धि के तत्वों की मूर्त वृद्धि का त्याग

10 देखिए वर्तमान लेखक द्वारा पढ़ा गया एक लेख 'दि केस आफ एग्रीकल्चर इन टैरिफ्स दि केस एक्जामिड' जिसका संपादन सर विलियम बेवरिज ने किया है।

11 देखिए हिक्स की पुस्तक 'दि थीओरि आफ वेजेज,' अध्याय 9 और 10। युद्धोत्तर काल के इतिहास के साक्ष्य के लिए देखिए डा० बेहनम का लेख 'वेजेज, प्राइसेज़ एंड अनएंपल्यायमेंट' (इकोनॉमिस्ट, जून 20, 1931)

12 यह बड़ी विचित्र बात है कि इसको अधिक सामान्य रूप से नहीं महसूस किया गया क्योंकि इस मत के प्रबल समर्थक ही सामान्यतया वैज्ञानिकन द्वारा होने वाली बेरोज़गारी की भर्त्सना करते हैं। निस्संदेह पूँजी को अधिक मजदूरी स्तर पर लाभप्रद हो सकने वाले रूपों में परिवर्तन करने की आवश्यकता ही सामाजिक पूँजी को संकुचित करने तथा ऐसी औद्योगिक संरचना के निर्माण के लिए उत्तरदायी है जिसमें समस्त श्रमजीवी जनसंख्या को पूरा रोज़गार नहीं मिल सकता। यदि संतुलन स्तर से ऊँचे वेतन दिए बिना वैज्ञानिकन किया जाता है तो उससे किसी प्रकार की स्थायी बेरोजगारी फैलने का भय नहीं हो सकता।

करना पड़ता है। हमें संदेह हो सकता है कि जो लोग ऐसे अधिमानों का समर्थन करते हैं उनमें कल्पना की कमी है। परंतु अर्थशास्त्र में कोई भी ऐसा वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं है जिसके आधार पर हम ऐसे निर्णय दे सकें। अर्थशास्त्र उद्देश्यों के चुनाव के बीच बिल्कुल तटस्थ है। अर्थशास्त्र मूल्यांकनों के अंतिम निर्णयों की प्रामाणिकता के बारे में सर्वथा मौन है।

4. व्यवहार में अनिवार्य रूप से लागू होने वाले सिद्धांतों की उपलब्धि में अर्थशास्त्र की इस प्रकार संकल्पित असमर्थता के कारण हाल के कुछ वर्षों में कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह तर्क दिया है कि इसकी सीमाओं को विस्तृत बना देना चाहिए जिससे कि इसमें आदर्शक विज्ञानों को भी शामिल किया जा सके। श्री हाट्रे और श्री जे० ए० हाब्सन ने यह तर्क दिया है कि अर्थशास्त्र को ऊपर बताए गए तरीके से न केवल मूल्यांकनों और नैतिक मानकों को निश्चित आधार सामग्री मानना चाहिए बल्कि उसे इन मूल्यांकनों और मानकों की अंतिम प्रामाणिकता के बारे में निर्णय भी देने चाहिए। हाट्रे का कथन है कि "अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र से अलग नहीं किया जा सकता है।[13]

दुर्भाग्य से इन दोनों विषयों को एक दूसरे के निकट रखे बिना किसी अन्य प्रकार संबद्ध करना तार्किक रूप से संभव नहीं है। अर्थशास्त्र का संबंध ऐसे तथ्यों से होता है जो अभिनिश्चित किए जा सकते हैं जबकि नीतिशास्त्र का संबंध मूल्यांकनों और दायित्वों से होता है। ज्ञान के दोनों क्षेत्रों का धरातल भिन्न-भिन्न है। वास्तविक और आदर्श विज्ञानों के सामान्यीकरणों के बीच एक ऐसी तार्किक खाई होती है जिसे कोई भी युक्ति नहीं पाट सकती और स्थान या समय में किसी सांनिध्य से उसे पार नहीं किया जा सकता। यह प्रस्थापना कि सुअर के मांस की कीमत मांग और पूर्ति के परिवर्तनों के साथ घटती-बढ़ती रहती है

13 देखिए हाट्रे 'दि इकोनॉमिक प्राब्लम' विशेषतया पृष्ठ 184 और 203-215 और हाब्सन 'वेल्थ एंड लाइफ' पृष्ठ 112-140। "मिस्टर हाट्रे आन दि स्कोप आफ इकोनोमिक्स" 'इकोनॉमिका, संख्या 20, पृष्ठ 172-178, नामक लेख में मैंने श्री हाट्रे के तर्कों की कुछ विस्तार में जाँच की थी किंतु उस लेख में मैंने 'कल्याणकारी अर्थशास्त्र' के दावों के बारे में कुछ बातें कहीं थीं जिनको अब मैं दूसरे ढंग से प्रस्तुत करना चाहता हूँ। दूसरे, उस समय मैं अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों में सूक्ष्मता के विचार का ठीक-ठीक स्वरूप नहीं समझ पाया था, इसलिए अपने तर्कों में मैंने अर्थशास्त्र के आलोचकों को एक बिल्कुल अनावश्यक रियायत दे दी है। फिर भी मुख्य आलोच्य विषय के बारे में मुझे कोई परिवर्तन नहीं करना है और इसके बाद के वर्णन में मैंने इस लेख के अंतिम पैराग्राफों में से एक या दो वाक्य लिए हैं।

सुअर के मांस और मनुष्य के आवेगों के संबंध की ऐसी संकल्पना पर आधारित है जिसको अंततोगत्वा अंतर्दर्शन और अवलोकन द्वारा सत्यापित किया जा सकता है। हम लोगों से पूछ सकते हैं कि क्या वे सुअर का मांस खरीदने को तैयार हैं और वे विभिन्न कीमतों पर कितना खरीदने को तैयार हैं ? या हम यह देख सकते हैं कि जब उनके पास रुपए होते हैं और जब वे मांस के बाजार में होते हैं तो वे कैसा आचरण करते हैं ?[14]

परंतु यह प्रस्थापना कि सुअर के मांस को महत्व देना गलत है, यद्यपि उस सिद्धांत ने अनेक जातियों के आचरण पर गहरा प्रभाव डाला है, एक ऐसी प्रस्थापना है जिसका इस तरीके से कतई सत्यापन नहीं किया जा सकता। वे प्रस्थापनाएँ जिनमें यह बात अंतर्ग्रस्त होती है कि स्थिति कैसी होनी चाहिए उन प्रस्थापनाओं से भिन्न हैं जिनमें प्रश्न यह होता है कि स्थिति क्या है। और यह बात समझ में नहीं आती कि इनको अलग न रखने से या उनके मुख्य अंतर को न समझने से कौनसा लाभ संभव हो सकता है।[15]

इस सब का यह तात्पर्य नहीं है कि अर्थशास्त्रियों को विभिन्न मूल्यांकनों को आधार तत्व के रूप में मानकर और इस मान्यता के आधार पर कि वे ठीक हैं, इस बात की जांच नहीं करनी चाहिए कि कोई काम करने के लिए दिए गए

14 इस सबके बारे में मेरे विचार में मेक्स वेबर की व्याख्या बिल्कुल स्पष्ट है। वस्तुतः मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेक्स वेबर के रीतिविधान में इस भाग पर कैसे संदेह करना संभव हो सकता है (देखिए *Der Sinn der 'Wertfreiheit' der Soziologischen und ökonomischen Wissenschaften. Gesammelte Aufsätze zur Wissenschaftslehre*, pp. 451-502.

15 श्री जे. ए. हाब्सन ने श्री हाट्रे के संबंध में मेरे एक आलोचनात्मक पैरे पर, जिसमें कुछ ऐसी ही बातें कही गई थीं, टिप्पणी करते हुए कहा है कि "यह तो आर्थिक मूल्यों और मानवीय मूल्यों के बीच किसी अनुभवाश्रित जीवन-प्रणाली को या संबंध को स्वीकार न करने के बराबर है"(हाब्सन,पूर्व उद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 129)"यह ठीक है परंतु इतने सारे व्यक्तियों में से केवल श्री हाब्सन ही क्यों शिकायत करते हैं ? मेरी प्रक्रिया द्वारा अर्थशास्त्र में से केवल वे सब बातें निकल जाती हैं जिनको श्री हाब्सन लगातार अवैध रूप से प्रविष्ट बातें कहते रहे हैं अर्थात् मेरी प्रक्रिया से अर्थशास्त्र में से वे आर्थिक मान्यताएँ निकल जाती हैं कि बाजार के मूल्यांकन नीतिशास्त्र की दृष्टि से भी समादृत होते हैं।" मैं यह महसूस करता हूँ कि कि यदि अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के बारे में ऊपर बताए गए दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया जाता है तो अर्थशास्त्र की प्रक्रिया के बारे में श्री हाब्सन द्वारा की गई अधिकतर आलोचना विफल हो जाती है।

विशेष सुझावों के बारे में क्या निर्णय दिए जाएँ। इसके विपरीत, जैसाकि हम देखेंगे, अर्थशास्त्र की उपयोगिता इस बात में है कि यह विभिन्न प्रकार के अंतिम मूल्यांकनों के महत्व और संगति पर प्रकाश डालता है। व्यावहारिक अर्थशास्त्र में इस प्रकार की प्रस्थापनाएँ हैं "यदि आप अमुक बात करना चाहते हैं तो आपको अमुक काम अवश्य करना पड़ेगा।" "यदि आप अमुक बात को अंतिम भलाई मानते हैं तब अमुक बात करना स्पष्ट रूप से असंगत होगा।" यहाँ पर जिस अंतर पर बल दिया गया है उसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि जिन वस्तुओं का अस्तित्व है या अस्तित्व हो सकता है उनकी मूल्यांकन संबंधी मान्यताओं का प्रमाण वैज्ञानिक रूप से सत्यापित नहीं किया जा सकता जिस प्रकार कि उन मान्यताओं का प्रमाण सत्यापित किया जा सकता है जिनका अस्तित्व होता है।

न ही इस सबका यह तात्पर्य है कि अर्थशास्त्रियों को नीतिशास्त्र संबंधी प्रश्नों से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए चूँकि, वनस्पति शास्त्र का सौंदर्यशास्त्र से कोई संबंध नहीं होता इसलिए यह तर्क नहीं किया जा सकता कि वनस्पति-विद् को बगीचे के विन्यास के संबंध में अपना कोई मत नहीं रखना चाहिए। परंतु इसके विपरीत हम चाहते हैं कि अर्थशास्त्रियों ने इन विषयों का बहुत समय तक और व्यापक रूप में मनन किया हो क्योंकि इसी प्रकार से वे उन समस्याओं के निश्चित उद्देश्यों के अभिप्रेत अर्थों को समझ सकेंगे जो उनके सामने सुलझाने के प्रयोजन से रखी जाती हैं। हम भले ही जे. एस. मिल की इस उक्ति से सहमत न हों कि "जो आदमी और कुछ नहीं जानता वह कभी अच्छा अर्थ-शास्त्री नहीं हो सकता", परंतु हमें कम-से-कम यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐसा आदमी उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना कि वह अन्यथा होता। हमारी रीति संबंधी स्वयंसिद्धियों में बाहर की बातों को जानने का कोई निषेध नहीं है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि इन दो किस्म के सामान्यीकरणों में किसी प्रकार का तार्किक संबंध नहीं है और एक के निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए दूसरे विषय का आश्रय लेना आवश्यक नहीं है।

रीति विधान संबंधी सभी प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसी प्रक्रिया के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक कारण भी है। राजनीतिक संघर्ष के नियमहीन वातावरण में या तो उद्देश्यों के बारे में या उनकी प्राप्ति के साधनों के बारे में मतभेद हो सकता है। जहाँ तक उद्देश्य संबंधी मतभेद का प्रश्न है न तो अर्थशास्त्र और न ही कोई अन्य विज्ञान उनका कोई हल प्रदान कर सकता है। यदि हममें उद्देश्यों के बारे में मतभेद है तो उसमें या तो 'मैं रहूँगा' या 'तुम रहोगे' की बात होगी या 'जीओ' और 'जीने दो' की बात होगी। ये दोनों बातें मतभरा के महत्व

या हमारे शत्रुओं की तुलनात्मक शक्ति पर निर्भर करेंगी। परंतु यदि हमारा मतभेद साधनों के बारे में हो तो तब वैज्ञानिक विश्लेषण हमारे मतभेदों को दूर करने में सहायक हो सकता है। यदि हम ब्याज लेने की नैतिकता के बारे में मतभेद रखते हों (और पूरी तरह समझते हों कि हम क्या बात कर रहे हैं) तब तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है।[16] परंतु यदि हम ब्याज की दर के घटने बढ़ने से पड़नेवाले वास्तविक प्रभावों के बारे में मतभेद रखते हों तब आर्थिक विश्लेषण द्वारा हम अपना झगड़ा निबटा सकते हैं। यदि श्री हाट्रे को एक ऐसी समिति का सचिव बना कर एक कमरे में बन्द करदें जिसमें सूदखोरी के नैतिक प्रश्न का निर्णय करने के लिए बैंथम, गौतम बुद्ध, लेनिन और अमरीका के इस्पात निगम के प्रधान नियुक्त किए गए हैं तो ऐसी स्थिति में श्री हाट्रे के लिए ऐसी रिपोर्ट देना संभव न होगा जिस पर सब लोग सहमत हों। अब इसी समिति को यह पता लगाने का काम दे दीजिए कि बट्टे की दरों का सरकार द्वारा विनिमयन करने से वस्तुनिष्ठ रूप से क्या परिणाम हुआ है। इसके लिए कोई सर्वसम्मत राय का पता लगाना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर की बात नहीं होगी या कम-से-कम बहुमत रिपोर्ट तो अवश्य तैयार की जा सकती है, जिसमें संभवतया लेनिन ने कोई विमति टिप्पण दिया हो यथाशक्य अधिक सहमति प्राप्त करने के लिए ऐसे विश्व में, जिसमें हटाए जा सकनेवाले मतभेद सामान्य रूप से पाए जाते हैं, निश्चित रूप से परीक्षण के उन क्षेत्रों का सावधानी से सीमांकन करना अच्छा रहेगा जहाँ ऐसी सहमति हो सकती है और जहाँ ऐसी सहमति की आशा नहीं की जा सकती है। अर्थात् विज्ञान के तटस्थ क्षेत्र को नीतिशास्त्र और राजनीति के अधिक विवादास्पद क्षेत्रों से स्पष्ट रूप से सीमांकित कर देना अच्छा रहेगा।[17]

16 देखिए आगे, अनुभाग 5

17 वस्तुतः वैज्ञानिक अर्थशास्त्र के प्रादुर्भाव के पश्चात् परंपरानिष्ठ अर्थशास्त्रियों की निस्संदेह यही प्रथा रही है। उदाहरण के लिए देखिए कैंटिलन, *Essai sur la Nature du Commerce* (हिग्स संस्करण, पृष्ठ 85)। "यह प्रश्न भी मेरे विषय के बाहर का है कि क्या किसी देश के लिए लाखों निर्धन और भूखे व्यक्तियों का होना श्रेयस्कर होगा या थोड़ी-सी समृद्ध जनसंख्या का होना श्रेयस्कर होगा।" देखिए रिकार्डो के नोट्स ऑन माल्थस पृष्ठ 188, एम. से. ने ठीक ही कहा है कि अर्थशास्त्री का काम सलाह देना नहीं है—वह आपको यह बता सकता है कि आप कैसे अमीर बन सकते हैं, परंतु वह आपको यह सलाह नहीं दे सकता कि आप अकर्मण्यता के स्थान पर स्मृति को तरजीह दें या समृद्धि के स्थान पर अकर्मण्यता को तरजीह दें। निस्संदेह उन अर्थशास्त्रियों में जो सुखवाद की कल्पना को हृदय में रखकर काम करते रहे हैं कभी-कभी

5. फिर अर्थशास्त्र का क्या महत्व रह जाता है? हम देख चुके हैं कि अर्थशास्त्र के सामान्यीकरणों के ढांचे में कोई ऐसे मानक नहीं होते जो व्यवहार में अनिवार्य रूप से लागू होते हैं। यह विभिन्न उद्देश्यों की वांछनीयता पर विचार करने में असमर्थ है। यह नीतिशास्त्र से मूलतः भिन्न है। तब इसका किस बात में महत्व रह जाता है?

निश्चय ही इसका केवल इतना ही महत्व है कि जब हम उद्देश्यों के बीच चुनाव करते हैं तो यह हमें चुने गए उद्देश्य के सभी पहलुओं से पूर्णतया सचेत करा देता है। जब हमारे सामने यह समस्या होती है कि इस वस्तु को चुनें या उस वस्तु को, तब हमें अंतिम निर्णय के लिए अर्थशास्त्री की ओर नहीं देखना चाहिए। अर्थशास्त्र में ऐसी कोई बात नहीं जो हमें ऐसे चुनाव के उत्तरदायित्व से मुक्त कर सके। किसी भी विज्ञान में ऐसी वस्तु नहीं होती जो चुनाव की अंतिम समस्या के विषय में निर्णय करने में सहायक हो सके। परंतु पूर्ण युक्ति-संगति की दृष्टि से हमें पता होना चाहिए कि हम किस चीज़ का चुनाव कर रहे हैं। इसके लिए हमें इसके विकल्पों का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि चुनाव की युक्तिसंगति का यही अर्थ है कि हम जिन विकल्पों को अस्वीकार करते हैं उनकी हमें पूरी-पूरी जानकारी हो और इसी प्रसंग में ही अर्थशास्त्र का व्यावहारिक महत्व दिखाई देता है। अर्थशास्त्र हमारे द्वारा चुने जाने वाले भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की हमें पूरी जानकारी कराता है। हम जिस काम को करने का इरादा करते हैं, अर्थशास्त्र उसकी पूरी जानकारी हमें प्रदान कर सकता है।

इन दोनों प्रस्थापनाओं के विषय में अवश्य संभ्रांति रही है। परंतु यह उस हद तक नहीं हुई है जितना कि सामान्यतया समझा जाता है। पूर्वा-ग्रह संबंधी बहुत से आरोप इसलिए लगाए जाते हैं क्योंकि हम लोग आर्थिक विश्लेपण द्वारा सामने लाए गए अनेक तथ्यों को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। यह प्रस्थापना कि संतुलन बिंदु से अधिक वास्त-विक वेतन देने पर बेरोज़गारी बढ़ जाएगी सैद्धांतिक अर्थशास्त्र का एक अत्यंत प्रारंभिक और पूर्णतया तटस्थ निष्कर्ष है परंतु यदि कुछ वर्गों के लोगों में इसकी चर्चा की जाए तो वे या तो यह आरोप लगाएँगे कि कहने-वाले व्यक्ति का उसमें कोई कपटपूर्ण स्वार्थ है या यह आरोप लगाएँगे कि वह गरीबों और अभागों के विरुद्ध बहुत पूर्वाग्रही है। इसी प्रकार आजकल यह सामान्य बात कहना भी कठिन है कि आयात पर सामान्य सीमा-शुल्क लगाने से हमारे निर्यात किए जानेवाले माल की माँग विदेशों में घटने की संभावना है। ऐसा करने वाला देशद्रोह के आरोप से नहीं बच सकता।

यह हमें ऐसे उद्देश्यों को चुनने में सहायता कर सकता है जो एक दूसरे से संगत हों।[18]

एक दो उदाहरणों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगी। हम ऐसे मामले से शुरूआत करेंगे जिसमें चुनाव की एक क्रिया के अभिप्रेत अर्थों को स्पष्ट किया गया हो। हम एक बार फिर उसी उदाहरण को लेंगे जिस पर पहले विचार किया जा चुका है—अर्थात् संरक्षण टैरिफ़ लगाना। हम पहले ही देख चुके हैं कि वैज्ञानिक अर्थशास्त्र में कोई भी ऐसी बात नहीं जो ऐसी नीति को अच्छा या बुरा कह सके। हम यह फैसला कर चुके हैं कि यदि सभी कुर्बानियों को ध्यान में रखकर ऐसी नीति अपनाने का निश्चय किया जाता है तो हमारे पास इसे आर्थिक दृष्टि से खर्चीली ठहराने का कोई आधार नहीं है। सामूहिक रूप से काम करने वाले नागरिकों के किसी निकाय द्वारा देश की रक्षा या देहातों के संरक्षण आदि जैसे उद्देश्यों के लिए सोच-समझ कर किए गए निर्णय उपभोक्ताओं के रूप में किए जाने वाले उनके अपने अनेक निर्णयों के विपरीत होने पर भी खर्चीले या असंगत नहीं कहे जाएँगे बशर्ते कि यह कार्य परिणामों की पूर्ण जानकारी के साथ किया गया हो। परंतु जब तक नागरिकों को इस बात का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा कि वे जो कदम उठा रहे हैं उसका क्या वास्तविक प्रभाव पड़ेगा तब तक यह स्थिति नहीं होगी। और आजकल के विस्तृत समाज में केवल जटिल आर्थिक विश्लेषण द्वारा ही इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि बहुत से शिक्षित लोगों से यह पूछा जाए कि कृषि को संरक्षण देने के बारे में उनकी क्या राय है तो वे भी केवल इतना ही सोचेंगे कि इससे संरक्षित उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वे केवल यह देखेंगे कि ऐसे उपायों से उस उद्योग को लाभ पहुँचने की संभावना है, और इस लिए उनका यह तर्क होगा कि ऐसे उपाय अच्छे हैं। परंतु वास्तव में, जैसाकि अर्थशास्त्र का प्रथम वर्ष का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है, यहीं से समस्या उत्पन्न होती है। इन सीमा-शुल्कों की और प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए एक विश्लेषणात्मक तकनीक की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि

18 यहाँ यह स्पष्ट कर देना वांछनीय होगा कि यह संगति केवल उनकी प्राप्ति के बारे में है, स्वयं उद्देश्यों के बारे में नहीं। एक उद्देश्य की प्राप्ति दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति से या तो मूल्यांकन के धरातल पर या वास्तविक संभाव्यता के धरातल पर असंगत होती है। जैसे एक ही समय में दो स्वामियों की नौकरी करना नैतिक दृष्टि से असंगत कहा जाएगा क्योंकि एक ही समय या स्थान पर दोनों का साथ-साथ रहना वास्तविक रूप में संभव नहीं हो सकता। सामाजिक नीति में इस दूसरी किस्म की असंगतियों को वैज्ञानिक अर्थशास्त्र की सहायता से दूर किया जा सकता है।

जिन देशों में अर्थशास्त्र की शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा नहीं है उनमें लगातार अधिकाधिक संरक्षण टैरिफ लगाने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

और न ही यह समझना चाहिए कि इस विश्लेषण की उपयोगिता एक सीमा-शुल्क लगाने जैसे इक्के-दुक्के कार्यों के संबंध में लिए गए निर्णयों तक ही सीमित है। इसकी सहायता से हम जटिल नीति के संबंध में निर्णय कर सकते हैं। यह हमें इस बात को हृदयंगम करने में सहायता देता है कि कौनसे उद्देश्य एक दूसरे के संगत होते हैं और कौनसे संगत नहीं होते, और यह संगति किन परिस्थितियों पर निर्भर है। नीति को तर्कसंगत बनाने के लिए यहीं पर इस प्रकार की तकनीक का ज्ञान अपरिहार्य हो जाता है। यह भी संभव हो सकता है कि किसी विशेष सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वैयक्तिक मूल्यांकनों की अवहेलना करके और आर्थिक विश्लेषण से अधिक सहायता लिए बिना ही तर्कसंगत रूप से विचार किया जा सके। आवश्यक खाद्यान्नों की पूर्ति को बनाए रखने के लिए अनुदान देने का उदाहरण इसी प्रकार का है। परंतु इस प्रकार के उपकरणों के बिना अधिक विस्तृत नीतियों को सफल बनाने की कल्पना नहीं की जा सकती है।[19]

हम मुद्रा नीति के क्षेत्र से एक उदाहरण ले सकते हैं। मुद्रा सिद्धांत के प्रथम सिद्धांतों से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि जब विश्व में विभिन्न मुद्रा-क्षेत्रों में विभिन्न गति से परिस्थितियाँ बदल रही हों तब एक ही साथ स्थिर कीमतें और स्थिर विनिमय दरें बनाए रखना असंभव होता है।[20]

19 जो लोग प्रायः यह कहते रहते हैं कि सामाजिक जीवन इतना जटिल है कि उसको आर्थिक विश्लेषण द्वारा नहीं आँका जा सकता है उनके लिए ऊपर लिखी गई बातों में पर्याप्त उत्तर मिल जाना चाहिए। क्योंकि सामाजिक जीवन बहुत जटिल होता है इसलिए उसमें एक भाग को भी समझने के लिए आर्थिक विश्लेषण बहुत आवश्यक हो जाता है। जो लोग सबसे अधिक कहते हैं कि जीवन जटिल है और मानवीय आचरण का तार्किक विश्लेषण नहीं किया जा सकता सामान्यतया उन्हीं लोगों का बौद्धिक तथा भावानात्मक गठन इस प्रकार का होता है कि वे अपर्याप्त सिद्धांतों के आधार पर जटिल बातों की व्याख्या करते हैं। जिस व्यक्ति ने वास्तव में मानवीय कार्यों के मूल में अयुक्तिक बातों को देखा है वह कभी इस बात से भयभीत नहीं हो सकता कि इनको तर्क द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

20 देखिए केन्ज़ "ए ट्रेक्ट आन मानेटरी रिफार्म", पृष्ठ 154-155 तथा डी० एच० राबर्टसन का एक और दिलचस्प लेख "हाऊ डू वी वांट गोल्ड टू बिहेव" जो इंटरनेशनल गोल्ड प्राब्लम में पृष्ठ 18-46 पर पुनर्मुद्रित हुआ है।

ये दोनों उद्देश्य—इस मामले में ये उद्देश्य स्पष्टतया नीति के अन्य मुख्य मानकों के अधीन हैं—तर्क की दृष्टि से एक दूसरे से असंगत हैं। आप इनमें से एक के लिए प्रयास कर सकते हैं या दूसरे के लिए ही—यह निश्चित नहीं है कि कीमतों को स्थायी रूप से स्थिर रखा जा सकता है या नहीं अथवा यह नीति संतुलन के लिए सामान्यतया अच्छी सिद्ध होगी या नहीं—परंतु आप युक्ति-संगत रीति से कभी भी दोनों के लिए प्रयास नहीं कर सकते। यदि आप ऐसा करते हैं तो आप अवश्य ही विफल होंगे। सभी अर्थशास्त्रियों को ये निष्कर्ष भली भाँति विदित हैं। फिर भी विश्लेषणात्मक उपकरणों के बिना हममें से कितने कम लोग विवेच्य उद्देश्यों की असंगति को समझ पाएँगे।

और यह भी एक छोटा-सा उदाहरण है। आर्थिक विश्लेषण के बिना दो वैकल्पिक समाज व्यवस्थाओं के बीच उपयुक्त चुनाव करना भी संभव नहीं है। हम पहले ही देख चुके हैं कि यदि हम किसी ऐसे समाज को लेते हैं जो आय की असमानता को अपने आप में एक बुराई मानकर भी असमानता बनी रहने देता है और उसकी एक ऐसे समतावादी समाज से तुलना करते हैं जिसने सब चीजों को छोड़कर समता को एक विशेष उद्देश्य बना रखा है तो हम इस प्रकार की तरजीह को खर्चीला नहीं कह सकते। परंतु जब तक यह चुनाव उन सभी कुर्बानियों को पूर्णतया ध्यान में रखकर नहीं किया जाता है जो उस नीति के अनुसरण में करनी पड़ेंगी तब तक इसे युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता है। और हम तब तक ऐसा नहीं कर सकते जब तक न केवल हम पूँजीवादी व्यवस्था की विशेष प्रकृति को ही समझ लेते हैं बल्कि हम उस समाज की भी विशेष परि-स्थितियों और सीमाओं को नहीं समझ लेते जिसकी स्थापना वैकल्पिक रूप में की जा सकती है। जब तक हमें यही नहीं पता चल जाता कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्या और कितना त्याग करना पड़ेगा तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमने इसको सोच-समझ कर चुना है। और इस प्रकार विकल्पों की तुलना करने के इस उच्चतम कार्य में, केवल आधुनिक आर्थिक विश्लेषण के उपकरणों की पूर्ण जानकारी ही, बुद्धिमत्तापूर्वक चुनाव करने की क्षमता प्रदान कर सकती है।

किंतु यदि यह बात है तो फिर अर्थशास्त्र के लिए उच्च स्थान का दावा करने की क्या जरूरत है? क्या यह हमारे समय की सबसे बड़ी समस्या नहीं है कि हम पूरी तरह यह नहीं जान पाते कि हम क्या कर रहे हैं? क्या हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ केवल इसी कारण से तो नहीं पैदा होतीं कि हम ऐसे उद्देश्यों को चुन लेते हैं जो एक दूसरे से मेल नहीं खाते। ऐसा इसलिए नहीं होता कि हम कोई गतिरोध पैदा करने चाहते हैं बल्कि इसलिए होता है कि हम उनकी

असंगति को नहीं समझ पाते । हो सकता है कि अंतिम उद्देश्यों के बारे में आधुनिक समाज में कुछ ऐसे मतभेद हों जिनके कारण थोड़ा-बहुत संघर्ष अनिवार्य हो जाता है । परंतु यह स्पष्ट है कि हमारी बहुत-सी कठिनाइयाँ इस कारण से पैदा नहीं होतीं बल्कि वे इस लिए पैदा होती हैं कि हम अपने उद्देश्यों का ठीक से समन्वय नहीं कर पाते । उपभोक्ताओं के रूप में हम सस्ती से सस्ती वस्तु लेना चाहते हैं । उत्पादकों के रूप में हम पूँजी को सुरक्षित करना चाहते हैं । हम निजी खरीददार और बचत करनेवाले व्यक्ति के रूप में उत्पादन कारकों को एक प्रकार से बाँटना चाहते हैं परंतु एक सार्वजनिक नागरिक की हैसियत से हम ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं जिससे उत्पादन कारकों का उक्त प्रकार से बँटवारा नहीं किया जाता । हम एक साथ ही सस्ती मुद्रा और कम कीमतों तथा कम-से-कम आयात और अधिक-से-अधिक व्यापार की इच्छा करते हैं ।[21]

नीति निर्धारित करनेवाली समाज की सभी विभिन्न संस्थाओं में यद्यपि एक जैसे व्यक्ति होते हैं फिर भी वे संस्थाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिमान निर्धारित करती हैं । हर स्थान पर हमारे सामने कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं—ऐसा मुख्यतया इस कारण नहीं होता कि राजनीतिक संस्थाओं के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में मतभेद होता है अपितु इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति का मानो खंडित व्यक्तित्व होता है ।[22]

ऐसी स्थिति को सुलझाने के लिए अर्थशास्त्र ज्ञान प्रदान करता है । यह हमें नीति की वैकल्पिक संभावनाओं के गंभीर आशयों की कल्पना करने में सहायता देता है । यह विकल्पों के बीच चुनाव करने की आवश्यकता को टालने में न तो हमारी सहायता करता है और न यह ऐसा कर सकता है । परंतु यह हमारे विभिन्न चुनावों में ताल-मेल बिठाने में हमारी बड़ी सहायता करता है । यह मनुष्य के कार्य करने की अंतिम सीमाओं को दूर नहीं कर सकता परंतु इसके कारण इन सीमाओं के अंदर संगत कार्य करना संभव हो जाता है । यह आधुनिक संसार के निवासियों के अनंत-अंतर्संबंधों और संबंधों के दिग्दर्शन के लिए ज्ञान चक्षु रूपी उपकरण का विस्तार करता है । यह हमें अपने कार्यों में युक्ति-संगति लाने की तकनीक प्रदान करता है ।

21 देखिए एम. एस. ब्राउन ।

22 इस तरीके से आर्थिक विश्लेषण कुछ ऐसी घटनाओं के और उदाहरण प्रस्तुत करता है जिनकी ओर लोक विधि संबंधी पुस्तकों में प्रभुसत्ता के सिद्धांतों की चर्चा में हाल में ध्यान आकर्षित किया गया है, देखिए "फ्रिगिस, चर्चेज इन दि माडर्न स्टेट"; मैटलेड, इंट्रोडक्शन टू गीरके पोलिटिकल थ्योरीज आफ दि मिडिल एजेज; लास्की, "दि प्राबलम आफ सावरेनटी, एथारिटी इन दि माडर्न स्टेट ।"

अत: वास्तव में ऐसा कहा जा सकता है कि इस और अर्थ में अर्थशास्त्र मानव समाज में युक्तिसंगति की मान्यता करता है। इसमें यह मिथ्या कल्पना नहीं की जाती, जैसाकि इस पर प्राय: आरोप लगाया जाता है, कि मनुष्य के कार्य अनिवार्यतया इस अर्थ में युक्तिसंगत होते हैं अर्थात् जिन उद्देश्यों का अनुसरण किया जाता है वे परस्पर विरोधी नहीं होते। इसके सामान्यीकरणों में ऐसी कोई बात नहीं होती जिससे अनिवार्य रूप से यह अभिप्रेत अर्थ निकले कि अंतिम मूल्यांकनों का निर्धारण पूर्ण विचार विमर्ष के साथ होता है।

इसमें ऐसी किसी मान्यता पर निर्भर नहीं किया जाता कि व्यक्ति सदैव तर्कबुद्धि के अनुसार काम करते हैं परंतु अपने व्यावहारिक अस्तित्व कारण के लिए यह इस मान्यता पर निर्भर करता है कि यह वांछनीय है कि मनुष्य तर्कबुद्धि के अनुसार कार्य करें। यह अवश्य ऐसी मान्यता करता है कि आवश्यकताओं की सीमाओं के अंदर रहते हुए यह वांछनीय है कि मनुष्य ऐसे उद्देश्यों को चुने जो एक दूसरे से ताल-मेल खाते हों।

और इस प्रकार अंततोगत्वा अर्थशास्त्र, यदि अपने अस्तित्व के लिए नहीं तो कम-से-कम अपने महत्व के लिए तो अवश्य इस अंतिम मूल्यांकन पर निर्भर करता है कि युक्तिसंगति और पूरी जानकारी के साथ चुनाव करने की क्षमता वांछनीय होती है। यदि अयुक्तिक आचरण करना, बाहरी उत्प्रेरकों की अंध-शक्ति के सामने हथियार डाल देना और प्रतिक्षण आवेगवश होकर असमंजित काम करते जाना अभीष्ट हो तब सचमुच ही अर्थशास्त्र का कोई अस्तित्व कारण नहीं रह जाता। भ्रातृहत्या के संघर्षों से रक्तरंजित तथा बौद्धिक नेता बनने योग्य व्यक्तियों द्वारा कल्पनातीत रूप से किए गए विश्वासघातों से पूर्ण हमारी पीढ़ी की सबसे दुखांत घटना यह है कि ऐसे लोग पैदा हो गए हैं जो इस चरम नास्ति का अर्थात् इस प्रकार के चुनाव की कष्टप्रद आवश्यकताओं से जान-बूझ कर पलायन करने का प्रतिपादन करने लगे हैं। ऐसे व्यक्तियों से तर्क करना व्यर्थ है। बुद्धिमान के विरुद्ध विद्रोह अनिवार्यतया जीवन के प्रति विद्रोह है। परंतु उन सब लोगों के लिए जो अब भी अधिक अस्ति मूल्यों का प्रतिज्ञान करते हैं ज्ञान की ऐसी शाखा का, जो अन्य ज्ञान की शाखाओं की अपेक्षा सामाजिक व्यवस्था में तर्कना-बुद्धि का प्रतीक है और उसका संरक्षण करती है, आनेवाले चिंता-भरे दिनों में अवश्य ही विशेष एवं उँचा महत्व होना चाहिए क्योंकि ज्ञान की यह शाखा जिस बात का समर्थन करती है उसे ऐसी बातों से खतरा पहुँच सकता है।

पारिभाषिक शब्द-सूची (हिन्दी-अँग्रेजी)

अंतरण संकट	Transfer crisis
अनधिमान वक्र	Indifference curve
अनार्थिक	Non-economic
अनुत्पादक	Unproductive
अपूर्ण प्रतियोगिता	Imperfect competition
अर्थ मानक	homo occonomicus=economic man
अर्थशास्त्र का लाप्लेस	Economic laplace
अर्थशास्त्रीय नियम	Economic laws
आंतरिक अंतरपणन क्रियाएँ	Internal arbitrage operations
आधारतत्व	Postulate
आर्थिक इतिहास	Economic History
आर्थिक कार्यकलाप	Economic activity
आर्थिक कारक	Economic factor
आर्थिक घटना-चक्र	Economic phenomena
आर्थिक तुष्टि	Economic satisfaction
आर्थिक मात्राएँ	Economic quantities
आर्थिक विश्लेषण	Economic Analysis
आर्थिक विषय	Economic subject
आर्थिक सहायता	Subsidy
आर्थिक सांख्यिकी	Economic Statistics
इतिहासवादी संप्रदाय	Historical School
उत्पादन सिद्धांत	Theory of production
एकाधिकारी	Monopolist
कर-भार	Tax burden
कार्य-कारण शृंखला	Chain of causation

काल-विश्लेषण	Period analysis
काल-श्रेणियाँ	Time series
गत्यात्मक अर्थशास्त्र	Economic dynamics
गुणांक	Coefficient
चर	Variables
तर्कनापरक आचरण	Rational conduct
तुष्टिगुणवाद	Utilitarinisim
दुर्लभता संबंध	Scarcity relationship
द्रव्य परिमाण सिद्धांत	Quantity Theory
धनात्मक नति	Positive inclination
धातुकोषवादी संप्रदाय	Currency school
नकद पूंजी	Liquid capital
निःशुल्क वस्तुएँ	Free goods
निगमन	Deductions
पूर्ण प्रतियोगिता	Perfect competition
प्रेक्ष्य आधार सामग्री	Observable data
फलन	Function
बाज़ार संबंधी नियम	Law of markets
भौतिक कल्याण	Material welfare
मंदी	Depression
मज़दूरी सिद्धांत	Theory of wages
मवीत	Poll tax
माँग और पूर्ति के मात्रात्मक नियम	Quantitative laws of demand and supply
माँग मूल्य सापेक्षता	Elasticity of demand
मात्रात्मक अर्थशास्त्र	Quantitative Economics
मुक्त बाज़ार	Free markets
मुद्रा का परिमाण	Volume of money
मुद्रा परिचलन वेग	Velocity of circulation
मुद्रा सिद्धांत	Monetary theory
मूल्य निरपेक्ष	Inelastic

मूल्यवादी अर्थशास्त्र	Value economics
मूल्य सिद्धांत	Theory of value
मूल्यांकन मान	Scales of valuation
मूल्यों की घट-बढ़	Price fluctuations
मौसमी घट-बढ़	Seasonal movements
यादृच्छिक प्रति चयन	Random sample
रीतिविधान	Methodology
लागतों का प्रसार	Cost dispersions
वास्तविक विज्ञान	Positive science
वितरण सिद्धांत	Theory of distribution
वित्तीय प्रेरणा	Financial incentives
विनिमय अर्थव्यवस्था	Exchange economy
विश्वं नकद आय	World money income
विषय-वस्तु	Subject-matter
व्यापार चक्र	Trade cycle
व्यावहारिक अर्थशास्त्र	Applied Economics
शुद्ध सिद्धांत	Pure theory
शूकर-दर्शन	Pig-philosophy
श्रमजीवी जनसंख्या	Working population
श्रम-विभाजन	Division of labour
श्रम-समय	Labour-time
संतुलन	Equilibrium
संरक्षणात्मक टैरिफ	Protective Tariffs
संस्थापक अर्थशास्त्री	Classical economists
संस्थावादी	Institutionalists
समुच्चय	Aggregate
सहसंबंध	Correlation
सांख्यिकीय नियम	Statistical laws
सापेक्षिक मूल्यांकन	Relative valuations
सामग्री, दित्ता	Data
सामान्यीकरण	Generalisations

सूचकांक	Index
स्थानीकरण	Localisation
स्थिर संतुलन	Stationary equilibrium
स्फीति	Inflation
ह्रासमान प्रतिफल नियम	Law of Diminishing Returns
ह्रासमान सीमांत तुष्टिगुण नियम	Law of Diminishing Marginal Utility